मानस का कथा-शिल्प

श्रीधरसिंह एम० ए०

आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी

प्रकाशक–
सम्पूर्णानन्द एम० ए०
आनन्द पुस्तक भवन
पहड़िया, वाराणसी।

प्रथम सस्करण
१९५९
मूल्य—४·५० रु०

मुद्रक–
वैजनाथ प्रसाद
कल्पना प्रेस
रामकटोरा रोड, वाराणस

सर्वदेवमय पिता शिवशंकरसिंह जी

और

सर्वतपमयी माता तपेश्वरी देवी

के श्री चरणों में

श्रद्धा का विनम्र पुष्प

भूमिका

रामचरित मानस की कथा में जो बात सबसे अधिक उजागर है, वह है राम का परब्रह्मत्व। अध्यात्म रामायण के राम भी परब्रह्म परमेश्वर हैं और भागवत के भगवान कृष्ण भी परब्रह्म हैं, परन्तु राम और कृष्ण का परब्रह्मत्व उन पुराण ग्रन्थों में उतना स्पष्ट और उजागर नहीं है जितना रामचरित मानस में राम का है। यद्यपि मानस के उपक्रम में भगवान शंकर को इसकी चिन्ता सता रही है कि भगवान राम गुप्त रूप से अवतरित हुए हैं और मेरे उनके दर्शनार्थ जाने से उनके इस गुप्त अवतार की बात सर्वसाधारण को विदित हो जायगी,[1] परन्तु मानस की कथा पढ़ने से शंकर भगवान की यह चिन्ता व्यर्थ जान पड़ती है; क्योंकि राम ने न तो गुप्त रीति से अवतार ही लिया और न उन्होंने उसे गुप्त रखने का कोई प्रयत्न ही किया। कौशल्या जी को राम ने जन्म के समय चतुर्भुज रूप में ही दर्शन दिया था।[2] कौशल्या के प्रार्थना करने पर कि—'कीजै शिशु लीला', राम शिशु-रूप में परिणत हुए थे। यह तो गुप्त अवतार की विधि नहीं है। राम के स्पष्ट करने पर भी जब कौशल्या अपने अज्ञान के कारण राम को परब्रह्म मानने में असमर्थ रहती हैं और उन्हें अपना पुत्र मानती हैं, तब राम एक बार फिर अपना विराट रूप प्रदर्शित कर उन्हें अपना वास्तविक जगत-पिता का रूप दिखाते हैं।[3]

प्रश्न हो सकता है कि राम ने अपना वास्तविक रूप केवल कौशल्या पर ही तो प्रकट किया था, अन्य पर नहीं, अस्तु, उनके गुप्त रूप में अवतार ग्रहण करने की बात ठीक ही है। इसमें कोई व्यतिक्रम मानना उचित नहीं है। यह

१—हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दरसन होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ॥बालकांड, ४८ क॥

२—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी॥

३—मानस, बालकांड, २००–२०२।

ठीक है कि राम ने अपना वास्तविक स्वरूप कौशल्या के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं दिखाया, परन्तु अन्तःप्रेरणा देकर उन्होंने प्राय सबको अपने वास्तविक स्वरूप से अवगत करा दिया। राम-जन्म के साथ ही महाराज दशरथ को ऐसी अन्तःप्रेरणा हुई कि उन्होंने जान लिया कि—

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥

दशरथ को ही नहीं, महामुनि वसिष्ठ को भी कुछ ऐसी ही अन्तःप्रेरणा हुई और नामकरण के अवसर पर उन्होंने कह भी दिया कि—

जो आनद सिंधु सुखरासी। सींकर तें त्रैलोक्य सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा॥

यह अन्त प्रेरणा क्रम से विश्वामित्र, वाल्मीकि, भरद्वाज, अत्रि, अगस्त, सुतीक्ष्ण आदि सभी ऋषि-मुनियों को हुई थी। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी ऐसी अन्त प्रेरणा हुई थी। अस्तु, राम का परब्रह्मत्व किसी से भी छिपा नहीं रहा। हाँ, यह अवश्य हुआ कि कुछ पात्रों ने एक बार जो अन्तःप्रेरणा हुई उसे जीवन पर्यन्त स्मरण रक्खा और कुछ ने उसे भुलवा दिया। कहा गया है कि—'मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलैं बिरचि सम।' इन पात्रों को अन्त प्रेरणा देनेवाले—'बिधि हरि संभु नचावनहारे', स्वय परब्रह्म थे, फिर भी इन्हें चेत न हुआ। दशरथ महाराज की कुछ ऐसी ही स्थिति थी। राम ने जन्म-समय में ही उन्हें अन्तःप्रेरणा दे दी थी, परन्तु वे राम के परब्रह्म स्वरूप को जीवन पर्यन्त स्मरण नहीं रख सके। विश्वामित्र जब अपनी अन्त प्रेरणा से प्रेरित होकर राम को माँगने अयोध्या आए थे,[1] तब दशरथ ने अपने उसी अज्ञान का परिचय देते हुए मुनिवर से कहा था—

चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥

× × × ×

सब सुत मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा॥

१—तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥
एहूँ मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई॥

राम के परब्रह्मत्व का यदि उन्हें ज्ञान होता तो वे इस प्रकार की आपत्ति कभी न करते। इसके बाद भी उनके मन में राम के परब्रह्मत्व की चेतना कभी जगी या नहीं, इसका आभास नहीं मिलता। उनके इस अज्ञान का दण्ड भी राम ने कुछ कम नहीं दिया। कारण, राम-नाम-जप के प्रभाव से बिना इच्छा के भी प्राप्त हो जाने वाली मुक्ति,[1] राम-राम की रट लगाकर मर जाने पर भी दशरथ को नहीं प्राप्त हुई। मानस के प्रमुख वक्ता शंकर जी प्रमुख श्रोता पार्वती से यही कहते हैं कि—

तातें उमा! मोच्छ नहीं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥[2]

गोस्वामी तुलसीदासजी राम को कारण रहित दयालु कहते नहीं थकते, परन्तु दशरथ के विषय में उनकी यह कठोरता समझ में नहीं आती। एक ओर तो अजामिल, गीध और गनिका जैसे पापी अज्ञानवश नाम ले लेने मात्र से तर जाते हैं, दूसरी ओर दशरथ जैसे धर्मात्मा और पुत्रपरायण व्यक्ति पूर्ण आसक्ति से राम-राम रटते ही सुरधाम चले जाते हैं, पर उनकी मुक्ति नहीं होती। एक ओर तो तुलसीदास इस प्रकार की घोषणा करते हैं कि—

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

दूसरी ओर दशरथ को ऐसा घोर दण्ड दिलाकर अपने सिद्धान्त की विफलता भी प्रमाणित कर देते हैं।

यह तो एक अवान्तर प्रसंग रहा। मूल बात जो पीछे छूट गई थी, वह यह थी कि मानस में राम का परब्रह्मत्व मध्याह्नकालीन सूर्य की भाँति अति स्पष्ट है। इससे जहाँ एक ओर राम-भक्ति की महत्ता प्रमाणित करने में कवि को सुविधा हुई है, वहाँ काव्य की दृष्टि से उसे अपार क्षति हुई है। आचार्य प० रामचन्द्रशुक्ल अपने ग्रन्थ में भरत के 'भायपभगति' की चर्चा करते नहीं अघाते, लेकिन भरत उन भक्तों में अग्रगण्य हैं, जिन्हें एक बार राम के परब्रह्मत्व की प्रेरणा होने के बाद एक क्षण के लिए भी इसका विस्मरण न हुआ कि राम परब्रह्म परमेश्वर हैं और मैं हूँ उनका तुच्छातितुच्छ सेवक। मानस में कहीं भी भरत ने राम को भाई नहीं समझा सर्वदा राम को प्रभु, स्वामी,

---

१—नाम जपति सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं॥

२—मानस, लंका कां, १११, १-८॥

साहब जैसे शब्दों से ही संबोधित करते रहे। अस्तु, भरत की भक्ति को 'भायप-भक्ति' कहना अत्युक्ति होगी। भरत का वास्तविक स्वरूप उस समय प्रकट होता है, जब राम को लौटाने के लिए वन जाते हुए, वे मार्ग में पैदल ही चलते हैं और कौशल्या के अत्यधिक आग्रह करने पर भी अति स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

सिर भर जाँउ उचित अस मोरा। सबतें सेवक धर्म कठोरा॥

यही सेवक धर्म ही उनका जीवन-व्रत था, भायप भगति नहीं।

यह ठीक है कि राम उनको सर्वदा भाई कहते हैं और भरत को सतोष तथा दूसरों को उपदेश देने के लिए यह भी कह देते हैं कि—'भयो न भुवन भरत सम भाई, लेकिन राम वस्तुत भरत को क्या समझते हैं, इसे स्वय तुलसी के ही शब्दों में देखिए—

भरतहिं धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मन क्रम बानी॥

अस्तु, भ्रातृवत व्यवहार न तो भरत की ओर से है और न राम की ओर से ही, फिर, पता नहीं कैसे इसे सुधी आलोचकगण आदर्श भ्रातृत्व की संज्ञा प्रदान करते हैं।

मानस में भ्रातृत्व का जो आदर्श स्थापित किया गया है, उसे देखना हो तो चित्रकूट में चलिए।—राम और लक्ष्मण बैठे हैं। उन्हें सूचना मिलती है कि भरत चतुरगिणी सेना के साथ चले आ रहे हैं। बस, लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम में ज्वार उठ पड़ता है—

कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानी राम बन बास एकाकी॥
करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥

× × × ×

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
आई बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥

एक तरफ तो लक्ष्मण राम के सामने बोलने की धृष्टता के लिए क्षमा-याचना करते नहीं थकते, दूसरी ओर भरत के लिए—जो राम के समान ही उनके बड़े भाई हैं—भूखे भेड़िए के समान तड़प उठते हैं।

व्यवहार में यह अन्तर केवल इसलिए है कि राम परब्रह्म परमेश्वर हैं जबकि भरत उन्हीं के समान राम के एक तुच्छ सेवक हैं। अस्तु, भरत के प्रति उनका जो व्यवहार है, वही मानस की भ्रातृभावना का चरम आदर्श माना जा सकता है। भक्ति की वेदी पर भ्रातृभावना की यह बलि तुलसी को केवल इसलिए चढानी पड़ी कि उनके मानस में राम का परब्रह्मत्व अति स्पष्ट है।

राम के परब्रह्मत्व की अत्यधिक स्पष्टता के कारण काव्य-रसों की निष्पत्ति भी असम्भव हो गई। इसकी जाँच के लिए मानस के किसी भी रसात्मक प्रसंग को देखा जा सकता है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा। लक्ष्मण को शक्ति लगी है, राम विलाप कर रहे हैं पाठक भी शोकाकुल होने लगता है, तबतक तुलसी दास के वक्ता शंभु बोल बैठते हैं—

उपक्रम—वहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले वचन मनुज अनुसारी॥
उपसंहार—उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥

इसी के साथ-साथ जादू का खेल भी समाप्त हो जाता है, रोने वाले हँसने लगते हैं। राम स्वयंवर के रचयिता महाराज रघुराज सिंह रीवाँ को तुलसी के मानस में रसाभास की यह स्थिति बहुत खटकी थी।

जो लीला में लखि ईश्वरता व्यापक विभुहिं विचारो।
रसाभास अनयास होत हरि नहीं विशेष सुख सारो॥

इसका मतलब यह नहीं कि तुलसीदास सफल कवि नहीं थे। वे कवि ही नहीं महाकवि थे और रसों की सफल निष्पत्ति कवितावली, बरवै रामायण आदि में देखी जा सकती है। परन्तु, मानस की कथा में उन्होंने प्रारम्भ से ही जो राम के परब्रह्मत्व के प्रतिपादन का व्रत ले लिया था और जिस व्रत का उन्होंने सफलतापूर्वक निर्वाह किया, उसी के कारण वे दशरथ भरत, लक्ष्मण जैसे पात्रों के साथ न न्याय ही कर पाए और न काव्य-रस की सृष्टि ही।

श्री श्रीधर सिंह जी ने प्रस्तुत पुस्तक 'मानस का कथा-शिल्प' में तुलसीदास के इस शिल्प-कौशल को भली-भाँति पहचाना है। उन्होंने खुले दिमाग से ही इस विषय का विवेचन किया है। उनकी यह प्रथम साहित्यिक कृति है, फिर भी उन्होंने परिश्रमपूर्वक जो कुछ लिखा है, वह उनके उज्वल भविष्य की ओर संकेत करता है। मुझे विश्वास है कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार अपनी कृतियों से हिन्दी साहित्य का भंडार भरते रहेंगे।

—श्रीकृष्ण लाल

५

पुरोवचन

मानस की कथा रामकथा है। रामकथा की अत्यन्त व्याप्ति और प्रचलन के कारण मानस की कथा-वस्तु पर विचार करते समय बहुधा मूल राम-कथा अथवा रामायण की कथा सामने आ जाती है और अध्येता का मार्ग तिमिराच्छिन्न हो जाता है। सुग्रीव, शवरी आदि की कथाओं को रामायण की भाँति मानस की भी प्रासङ्गिक कथा मानने और रावण-बध को मानस की कथा का 'कार्य' निश्चित करने का यही रहस्य है। सत्य तो यह है कि इस प्रणाली से मानस की कथा-वस्तु का अध्ययन न होकर प्रकारान्तर से रामायण की कथा-वस्तु का अध्ययन होने लगता है और कभी उपदेशों अथवा स्तुतियों को रस-निष्पत्ति में बाधक बताया जाता है तो कभी मानस के कथा-शिल्प पर नाना प्रकार के प्रश्नवाची चिन्ह लगाये जाने लगते हैं। वास्तविकता तो यह है कि मानस साहित्यिक परम्परा में लिखा गया एक विशुद्ध धर्म-ग्रन्थ है और इसके सौष्ठव का आकलन भी इसी प्रकार की आधार भूमि पर होना चाहिए। मानस में ही नहीं, धार्मिक भावना और भक्तिभावना के प्राधान्य के साथ-साथ स्वय रामकथा में कुछ ऐसे ढङ्ग के परिवर्तन पहले से ही प्रारम्भ हो चुके थे जिनके कारण शरीर-पक्ष में साम्य होने पर भी आत्मपक्ष की भिन्नता के आधार पर कथा का समूचा वातावरण परिवर्तित होने लग गया था। अतः धर्म और भक्ति की परम्परा में प्रणीत ग्रन्थों की परख इसी दृष्टि से होनी चाहिए।

रूप-पक्ष और प्राण-पक्ष को सम्यक् रूप से दृष्टि में रखकर किसी ग्रन्थ का अध्ययन करना ही उसके साथ न्याय करना कहा जाता है। मानस के कथा-शिल्प पर विचार करते समय इस तथ्य को सदैव ध्यान में रक्खा गया है। मानस की आत्मा का उसके वाह्य कलेवर में जिस प्रकार से प्रस्फुटन हुआ है वह किसी भी देश के साहित्यप्रणेता के लिए प्रतिस्पर्धा का विषय है। वाल्मीकि से लेकर आज तक रामायण पर प्रायः जितने भी प्रकार के ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है उनमें शायद ही कोई ऐसा ग्रन्थ हो जिसमें छोटी बात से लेकर बड़ी बात तक,

उद्देश्य का इतनी सफलता से निर्वाह हुआ हो। यदि छोटा मुँह बड़ी बात न हो तो कहा जा सकता है कि मानसकार इस क्षेत्र में अद्वितीय है और उसकी इतनी लोकप्रियता का यही रहस्य भी है। मानस में उद्देश्य, कथा और पात्र तीनों ही एक हो गए हैं और तीनों का विकास इस प्रकार से होता चला है कि भक्तों की भावनाओं का आद्यन्त उन्नयन होता रहे। मानस के कथा-शिल्प की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

कथा-शिल्प की समूची गतिविधि को समेट लेने के लिए अध्ययन को छः भागों में विभाजित कर दिया गया है। प्रथम अध्याय में रामकथा के आदि स्रोत और उस एक स्रोत से प्रसूत कथा की प्रवृत्ति की चर्चा है। इस भाग में यह स्पष्ट हो गया है कि विभिन्न उद्देश्य के अनुसार रामकथा में बाह्यतः क्रम परिवर्तन होने पर भी मूल भावना में आशातीत परिवर्तन हो गया है। इसके लिए बौद्धों और जैनों में गृहीत रामकथा की प्रवृत्ति तो देखी ही गयी है, साथ ही स्वयं हिन्दू-धर्म के अनेक साहित्य-रूपों पर भी दृष्टि डाली गई है और अन्त में इन परिवर्तन-परिवर्द्धनों के कारणों को भी उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में प्रथमतः मानस की संक्षिप्त कथा देकर उसकी विशेषताओं को उभाड़ने का प्रयत्न किया गया है, तत्पश्चात् ग्रन्थ के उद्देश्य और कथा-रूप पर विस्तृत विचार किया गया है। यह अंश कुछ विशेष रूप से विस्तृत इसलिए हो गया है कि इसी के आधार पर निबन्ध का समूचा ढाँचा टिका हुआ है।

तृतीय अध्याय में निश्चित उद्देश्य के परिवेश में नाना स्रोतों से कथाचयन, उसमें आवश्यक परिवर्द्धन-परिवर्तन, स्थानान्तरण आदि पर विचार किया गया है और इसके मूल में निहित भावना पर भी प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में मानस की मूलकथा और प्रासंगिक कथा पर विचार किया गया है। हमारी मान्यता यही है कि मानस की प्रायः समस्त प्रासंगिक कथाएँ राम-जन्म के पूर्व (बालकांड में) और राम-राज्याभिषेक के पश्चात् (उत्तरकांड में) ही आई हैं। साथ ही मानस में अन्तर्भुक्त 'रामायण' की प्रायः सभी प्रासंगिक कथाएँ मूल कथा के अन्तर्गत सन्निविष्ट हो गई हैं। इस मान्यता का आधार

मानस का वह उद्देश्यअथवा कथा का वह 'कार्य' रहा है जिसके अनुसार ग्रन्थ के प्राय सभी पात्र किसी न किसी वरदान अथवा शाप के कारण जन्म ग्रहण किये हैं और इन शापों अथवा वरदानों की पूर्ति-प्रतिपूर्ति के लिए प्रतिश्रुत भक्तवत्सल भगवान राम घूम-घूमकर अपने कर्तव्यों की पूर्ति कर रहे हैं। अत रामायण की इन प्रासङ्गिक कथाओं को मानस में मूलकथा के नाम से ही अभिहित किया जा सकता है।

पञ्चम अध्याय में मानस की प्रबन्धात्मकता पर प्रकाश डाला गया है। इसके लिए प्रस्तावना, वक्ताओं-श्रोताओं के महत्व एवं उपसहार पर तो दृष्टिपात हुआ ही है, कथानक-गठन और इतिवृत्त तथा रसात्मक विधान पर भी विस्तृत विचार किया गया है। यहाँ यह दिखाने का प्रयास रहा है कि महाकाव्य की दृष्टि से परिलक्षित होने वाले मानस के दूषण भी उसकी मूलप्रवृत्ति के परिपार्श्व में परखने पर भूषण सिद्ध हो सकते हैं। स्तोत्रों और उपदेशों का विधान महाकाव्य की दृष्टि से रस-निष्पत्ति में बाधक सिद्ध होता है किन्तु यदि इसे ही पुराण-काव्य अथवा भक्तिग्रन्थ की पटभूमि पर रखकर देखा जाय तो यह साधक ही सिद्ध होगा, बाधक नहीं।

षष्ठम अध्याय में कथा, चरित्र और उद्देश्य की अन्विति का विशद अध्ययन किया गया है। कथानक-रूढियों अथवा कथानक के सोपानों का कथानक के विकास में अप्रत्याशित योग भी प्रदर्शित किया गया है। इन सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला गया है कि जहाँ एक ओर मानस का कथानक मूल उद्देश्य से आद्यन्त प्राणान्वित होता रहा है वहाँ दूसरी ओर उसकी स्वाभाविकता और उसका प्रवाह भी अक्षुण्ण बना रह गया है।

वस्तुत मानस में मानसकार की समूची सास्कृतिक चेतना और प्रतिभा का अन्यतम प्रकाशन हुआ है। मानस के राम और मानस की रामकथा में जिस अलौकिक गरिमा का शिल्प विधान के उत्कृष्टतम रूप में सन्निवेश हुआ है, वह सामाजिक मान्यताओं एव जीवन की मगलाशाओं को कलात्मक ढङ्ग पर पत्नीबद्ध करनेवाले किसी भी साहित्य के लिए अनुकरणीय कहा जा सकता है।

प्रस्तुत कार्य में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के जिन गुरुओं की प्रेरणा और प्रोत्साहन का फल पुस्तक रूप में आज हिन्दी-जगत् के सामने

जा रहा है, उनके प्रति किसी प्रकार का आभार प्रकट करना गुरु-ऋण से भागना ही है, अतः मौन रहना ही श्रेयस्कर है।

मेरे जिन मित्रों ने प्रूफ देखने और अनुक्रमणिका तैयार करने में मेरी सहायता की है, उनका मैं पूर्णत आभारी हूँ। डा० अयोध्या सिंह (प्रो० अर्थ-शास्त्र, का० हि० वि०) ने समय-समय पर जिस प्रकार मुझे उत्साहित किया, उसके लिए क्या कहूँ—श्रद्धावनत हूँ।

पुस्तक के लिखने में मैंने जिन लेखकों की पुस्तकों का उपयोग किया है, उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। पुस्तक में प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, आशा है विज्ञजन सुधार लेंगे।

रेहटी नेवादा—(जौनपुर)
सं० २०१६ वि०
१९५९

श्रीधरसिंह

विषय-सूची

राम-कथा की व्याप्ति

१

राम-कथा का प्रादुर्भाव आदि कवि के प्रथम काव्य से माना जाता है। सके पूर्व, राम-कथा का कोई भी संकेत अब तक नहीं प्राप्त हो सका है।[1]

१—(क) वस्तुत. राम कथा ई० पू० चौथी शताब्दी से बहुत पूर्व प्रचलित ी। विद्वानों के मतसे 'रामायण' 'आदिरामायण' का परवर्ती रूप है। आदिरामायण' मौखिक रूप से प्रचलित था। इसकी प्राचीन फलस्तुति श्रवणफलस्तुति है—

"श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दन्ति।"

बाद में पढ़ने-लिखने की फलस्तुति का भी उल्लेख है। पर, एक तो यह रामायण के गौडीय पाठ में अप्राप्त है और दूसरे—जैसा कि फादर कामिल बुल्के ने बताया है, टीकाकार कतक ने भी इसे प्रक्षिप्त माना है। बालकांड तथा उत्तरकांड में लिखा गया है कि महर्षि वाल्मीकीय ने अपने शिष्यों को रामायण सिखाकर उसे अन्य लोगों को सुनाने का आदेश दिया—

कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ॥ उ०।९३।४॥
ऋषिवाटेषु पुण्येषु, ब्राह्मणावसथेषु च।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥५॥उत्तरकांड॥

(ख) कुशीलव का रामायण से संबंध तथा वाल्मीकि का शिष्यत्व भी इस बात का प्रमाण है कि 'आदिरामायण' मौखिक ही था। कुशीलव राम के पुत्र नहीं, काव्योपजीवी गायक थे।

१—एम० विंटरनित्स, हि० इं० लि०, भाग १, पृष्ठ ३१४

१—रेवरेंड फादर कामिल बुल्के, राम कथा, पृष्ठ ४४५।

२—डा० एस० के० डे० एण्ड दासगुप्ता, हि० सं० लि०, भाग १, पृष्ठ ५१ (१९४७)।

वाल्मीकीय रामायण के लिखित रूप को ई० पू० चौथी शताब्दी से पूर्व न पाक
डा० वेवर जैसे लोगों ने 'दशरथजातक' को ही राम-कथा का उद्‌गम-स्था
निर्देशित किया है। पर अधिकाश विद्वान इससे सहमत नहीं हैं और 'दशर
जातक' तथा 'रामायण' दोनों को ही किसी पूर्व प्रचलित परम्परा का स्वत
विकास,मानते हैं।[1] कुछ लोग 'दशरथ जातक' को वाल्मीकीय रामायण का विकृ
रूप भी मानते हैं, ऐसे विद्वानों में डा० याकोवी मुख्य हैं।[2]

वस्तुत रामायण एव बौद्ध तिपिटकसे[3] पूर्व रामाख्यानक साहित्य क
पूर्णतः अभाव है। वैदिक ग्रन्थों में राम-कथा के कतिपय पात्रोंका उल्लेख मा

(ग) वाल्मीकिके पूर्व भी एक आदिरामायणका संकेत अश्वघोष कृ
'बुद्ध-चरित' में मिलता है—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं।
जग्रन्थ पूर्वं च्यवनो महर्षिः॥

इससे ज्ञात होता है कि च्यवनने भी इस दिशा में प्रयत्न किया था।
महाभारत में च्यवन को भृगु का पुत्र कहा गया है—'भृगोमहर्षेः पुत्र
अभूच्यवनो नाम भार्गव'। महाभारत के 'शान्तिपर्व' मे भार्गवकृत रामचरि
का उल्लेख सभवतः इसी च्यवन की रचना को निर्देशित करता है—

'श्लोकश्चाय पुरा गीतो भार्गवेन महत्मना।
आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत॥'

परन्तु एक तो च्यवन कृत राम काव्य प्राप्त नहीं है, दूसरे कतिपय विद्वानं
द्वारा कवि वाल्मीकि को ही भ्रान्तभेद से कहीं च्यवन, कहीं भार्गव आदि
सिद्ध करनेका प्रयत्न हुआ है। अतः सम्प्रति वाल्मीकीय रामायण को ही
रामकथा का आदि स्रोत मानना अधिक समीचीन है।

१—डा० लूडर्स का मत, रामकथा, पृ० ८२।

२—डा० एम० विंटरनित्स हि० इ० लि०, भाग १, पृ० ५०८।

३—बौद्ध तिपिटक मगध देश में पाळी भाषा में लिपिवद्ध किया गया
था। इसके द्वितीय पिटक सुत्तपिटक के पाँचवें भाग का नाम 'खुद्दक निकाय
है। इसी खुद्दक निकाय के अन्तर्गत जातकों की गाथाएँ दी गई हैं और

हुआ है।[1] इनका न तो पारस्परिक सम्बन्ध ही स्पष्ट है और न तो राम-कथा से इनका किसी प्रकार का लगाव ही है। उदाहरणार्थ दशरथ एवं राम को देखा जा सकता है। वैदिक साहित्यमें दशरथ का एकबार उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद की दानस्तुति में अन्य राजाओं के साथ दशरथ की भी प्रशंसा की गई है कि–'दशरथ के चालीस भूरे रंग के घोड़े एक हजार घोड़ों के दलका नेतृत्व कर रहे हैं।'[2] ऋग्वेद में राम का भी नाम एक बार अन्य प्रतापी यजमानों के साथ प्रयुक्त हुआ है: 'मैंने दु शीम पृथवान, वैन और राम (असुर) इन यजमानों के लिए यह (सूक्त) गाया है। इन्होंने पाँच सौ (घोड़े अथवा रथ) जुतवाए (जिससे) उनका मुझपर अनुग्रह चारों ओर फैल गया है।[3] 'ऐतरेय ब्राह्मण' में राम मार्गवेय और जनमेजय की एक कथा आई है जिससे मात्र इतना ज्ञात होता है कि वह श्यापर्ण कुल के ब्राह्मण और जनमेजय के समकालीन थे। 'शतपथ ब्राह्मण' में राम औपतस्विनी उपतस्विनी के पुत्र निर्देशित किए गए

तीसरी शताब्दी ई० पू० से ही सुरक्षित हैं। इनमेंसे राम-कथा संबंधी तीन जातक सुरक्षित हैं (१) दशरथ जातक (२) जनामकं जातकं और (३) दशरथ कथानम्।—एम० विंटरनित्स : हि० इ० लि०, भाग २, पृ० ११५।

१—रामायण की आधिकारिक कथावस्तु से सीधा संबंध रखने वाले छः पात्रों का नाम प्राप्त होता है (१) इक्ष्वाकु (२) दशरथ (३) राम (४) अश्वपति (५) जनक और (६) सीता। ऋग्वेद में इक्ष्वाकु, दशरथ और राम इन तीनों का एक-एक बार उल्लेख हुआ है। राम मार्गवेय, राम औपतस्विनी तथा राम क्रातुजातेय इन तीनों का ब्राह्मण ग्रन्थों में परिचय मिलता है। ब्राह्मणों एव उपनिषदों में प्रथमत जनक एवं अश्वपति का उल्लेख हुआ है। कृषि से सम्बन्धित होने के कारण सीता का ऋग्वेद से लेकर गृह-सूत्रों तक प्रचुर वर्णन है। इनके अतिरिक्त राम-कथा से संबंधित अन्य वैदिक ऋषियों तथा बालकांड एवं उत्तरकांड की अवांतर कथा के पात्रों का भी नाम वैदिक साहित्य में आया है, जिनका उल्लेख यहां नहीं किया गया है।

२—'चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।'

३—प्र तदुःशीमे पृथवाने वेने प्रराम वोचमसुरे मघवत्सु
ये युक्त्वाय पंच शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्। १०।९३।१४।

है और 'अनुग्रह' नामक यज्ञ पर अन्य आचार्यों के साथ इनके मत का भी उल्लेख है। 'जैमनीय उपनिषद ब्राह्मण' में दोनों ही स्थानों पर राम का नाम दार्शनिक शिक्षकों की नामावली में दिया गया है। इस प्रकार उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर राम और दशरथ के परस्पर संबंध आदि पर वैदिक साहित्य में कोई भी प्रकाश नहीं पड़ता है। यही बात अन्य पात्रों के विषय में भी है।

प्रश्न उठता है कि अन्ततः राम-कथा का विकास किस आधार पर संभव हुआ। यहाँ अनेक मत हैं। 'दशरथ जातक' को रामकथा का मूल रूप माननेवाले डा० वेवर ने रामकथा के दो भाग किए हैं: एक है राम वनगमन एवं प्रत्यावर्तन का भाग जो दशरथ-जातक में वर्णित है, दूसरा है सीता-हरण एवं रावण-बध। यह दूसरा प्रसंग दशरथ-जातक में नहीं है। अतः डा०, वेवर ने इसपर क्रमशः होमर के पेरिस द्वारा हेलेन का हरण एवं यूनानी सेना द्वारा ट्राय के अवरोध का प्रभाव बताया। पर अधिकांश विद्वान इस मत के प्रतिकूल हैं। डा० याकोबी भी राम-कथा के दो भाग मानते हैं। प्रथम को अथवा अयोध्या की घटनाओं को तो ऐतिहासिक मानते हैं, पर द्वितीय भाग को वैदिक साहित्य में उपलब्ध सामग्री के आधार पर कृषि का रूपक मानते हैं।[१] दिनेशचन्द्र सेन भी डा० वेवर एवं याकोबी की भाँति राम-कथा के दो प्रधान मूल स्रोत मानते हैं। एक तो दशरथ-जातक जो उत्तर भारत में प्रचलित था और दूसरा रावण संबंधी आख्यान जो मुख्यतया दक्षिण में प्रसरित था। सेन जी के मत से इन दोनों के योग से राम-कथा की उत्पत्ति हुई है। एक तीसरा लेकिन गौण आख्यान हनुमान का भी इसमें जुड़ गया है। एम० वेंकटरत्नम एवं येदातोरे सुब्बाराव की मान्यताएँ तो एक कदम और आगे हैं। रत्नम का विश्वास है कि वास्तव में राम-कथा मिस्र देश के रमेसस नामक राजा का इतिहास है। सुब्बाराव, ई० मूरकी भाँति राम कथामें दार्शनिक मतका प्रतिपादन देखते हैं और भौगोलिक स्थानोंको योग-शास्त्र के चक्रों का प्रतीक मानते हैं। परन्तु विद्वानों का अधिकांश दल उपरोक्त कल्पनाओं को सारयुक्त नहीं समझता है। लोग अब ऐतिहासिक विकास को

१—डा० याकोबी सीताहरण एवं रावण-वध की घटना का विकास-सूत्र वेदों में ढूँढते हैं। इसके लिए क्रमशः वे मुख्य रूप से २ प्रसंग उपस्थित करते हैं १—पाणियों द्वारा गायों का चुराया जाना और इन्द्र का उसे खोजना और

अधिक महत्व देने लगे हैं। उनका मत है कि प्रत्येक आख्यान किसी न किसी सत्य घटना पर आश्रित रहा। धीरे-धीरे राज्याश्रित सूत-मागधों आदि के हाथ में पड़कर परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होता गया और मूल-कथा का अद्‌भुत रूप प्रस्तुत हो गया। प्रो० सिद्धान्त ने तो सभी देशों के आख्यानों के विकास के चार सोपान बताए हैं: प्रथम सोपान में कथा नायक की कोर्ट में ही उसके वास्तविक कार्यों के आधार पर बनी, द्वितीय में नायक की मृत्यु के बाद अन्य गायकों द्वारा कुछ स्वाभाविक परिवर्तन हो गया, तृतीय में मूल कथा की घटनाएँ एव पात्र तो रहे अवश्य पर, विस्तृत विवरण एव छोटे पात्रों का अस्तित्व समाप्त हो गया, साथ ही विषय की सम्बद्धता के लिए कथाओं को जोड़ने की प्रवृत्ति भी बढ़ गई और चतुर्थ सोपान में तथ्य का स्थान सभावना ने ग्रहण कर लिया।[1] राम-कथा का भी लगभग इसी प्रकार से विकास होता रहा है। इस राम-कथा साहित्य की उत्पत्ति भी रामायण की भाँति इक्ष्वाकु वंश से ही हुई होगी। रामायण में लिखा है :—

इक्ष्वाकूणामिद तेषा राज्ञा वंशे महात्मनाम्।

महदुत्पन्नमाख्यान रामायणमिति श्रुतम्॥ ॥सर्ग ५, ३॥

राम इक्ष्वाकु वशीय थे। अतः इक्ष्वाकु वश के सूतों ने इनके विषय में ख्यान एव गाथाएँ सुनाई होंगी। धीरे-धीरे वही आख्यान परिवर्तित एव र्वर्द्धित होकर आधुनिक रूप प्राप्त करता गया।

—वृत्तासुर द्वारा जलका सग्रह करके कृषि (सीता) को तड़पाना तथा वायु की सहायता से इन्द्र का वृत्तासुर को मारना और सीता की प्यास बुझाना। वैदिक साहित्य में इसी सम्बन्धपर इन्द्र को सीता का पति भी कहा गया है। इन्द्र का स्थान विष्णु के ग्रहण करने तथा विष्णु का स्थान राम के ग्रहण करने पर सीता, राम की पत्नी हो गई।

1. Prof N. K Sidhanta. The Heroic Age of India, P 50-60 1929.

यह तो हुआ राम-कथा के स्वरूप-निर्माण का ब्योरा। ई० पू० चौथी शताब्दी तक राम-कथा, हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ महाभारत के "द्रोण पर्व" एव "शान्ति पर्व" तथा महाकाव्य वाल्मीकि रामायण और बौद्ध तिपिटक के दशरथ-जातक में गृहीत हो चुकी थी। इससे जहाँ एक ओर इस कथा की लोक-प्रियता एव महत्त्व का पता चलता है, वहाँ दूसरी ओर इस तथ्य का भी संकेत प्राप्त होता है कि किस प्रकार विभिन्न उद्देश्यों के अनुसार इस कथा का उपयोग किया गया। परवर्ती काल में तो इस कथा का इतना प्रचार हुआ कि हिन्दुओं, बौद्धों, जैनियों आदि सभी वर्गों ने इस कथा को ग्रहण किया और उद्देश्यानुसार काँट छाँट भी की। अतः यहाँ यही देखना है कि विविध उद्देश्यों के अनुसार किस प्रकार राम-कथा के विविध रूप हो गए हैं। सुविधा की दृष्टि से यह अध्ययन तीन भागों में विभाजित कर दिया जाता है (१) पहिला है धार्मिक-ग्रन्थों अथवा पुराणों का अध्ययन (२) दूसरा है महाकाव्यों का अध्ययन और (३) तीसरा है नाटकों का अध्ययन। इन्हीं तीनों के अंतर्गत प्रायः अधिकाश साहित्य समाविष्ट हो जाता है।

धार्मिक ग्रन्थ अथवा पुराणः—अवतारवाद भारतीय धर्म साधना की प्रमुख विशेषता है। विद्वानों का मत है कि अवतारवाद का आरभ ब्राह्मण ग्रन्थों से हुआ और समवतः शतपथ ब्राह्मण एतद्विषयक प्रथम ब्राह्मण ग्रन्थ है। परन्तु फिर भी सत्यान्वेषी आरंभिक ऋषियोंमें न तो इस अवतारवाद की यथेष्ट प्रतिष्ठा ही स्थापित हो पाई थी और न अब तक विष्णु का प्राधान्य ही स्वीकृत हो पाया था। अवतारवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कृष्णावतार के साथ प्रारभ हुआ। विद्वानों का कहना है कि बौद्ध-धर्म तथा भागवत का भक्ति-मार्ग, दोनों ही समान रूप से ब्राह्मणों के यज्ञ तथा कर्मकाड की प्रतिक्रिया-स्वरूप विकसित हुए हैं। बौद्धों,के अधिकाधिक प्रसार को देखकर ब्राह्मणों ने भागवतों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनके देवता वासुदेव कृष्ण को विष्णुनारायण का अवतार मान लिया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि महाभारत-युगतक वासुदेवकृष्ण, नारायण और विष्णु एक हो चुके थे।[1] इससे अवतारवाद को बहुत प्रोत्साहन मिला। विष्णु का महत्त्व बढने

---

१ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—सूर-साहित्य, (पृ० ४ १९२६)

लगा। अवतारवाद की सारी भावना विष्णु में केन्द्रीभूत होने लगी और वैदिक साहित्य के अन्य अवतारों के रूप-गुण विष्णु में ही आरोपित किए जाने लगे। इधर कई शताब्दियों से राम का आदर्श भारतीय जनता के सामने प्रस्तुत था। रामायण की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का भी महत्व बढ़ने लगा। राम के कार्यों में अलौकिकता का समावेश होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे राम, विष्णु के अवतार बन गए। यही नहीं, "रामचरित मानस" तक तो 'विधि हरि शंभु नचावन हारे' भी हो गए। अद्भुत भारतीय ग्राहिका वृत्ति ने इस चरित्र एव इस कथा को अपने उद्देश्य के अनुसार काँट-छाँटकर मनोनुकूल स्वरूप दे दिया। यही राम हिन्दुओं में विष्णु, बौद्धों में बोधिसत्व, जैनियों में आठवें बलराम हो गए। शैवों एवं शाक्तों ने भी इन्हें शिव एवं शक्तिका आश्रित सिद्ध किया। विदेशों में इस कथा ने अन्य प्रकार के ही उद्देश्य की पूर्ति की। इस प्रकार राम-कथा के स्वरूप में जो परिवर्तन हुआ वह तो हुआ ही, साथ ही भिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एव मान्यताओं के अन्तर्गत इसकी आत्मा (मूल भावना) में भी अद्भुत परिवर्तन हुआ। यह प्रवृत्ति धार्मिक साहित्य में सर्वाधिक रही है। यहाँ एक-एक करके इनका अध्ययन किया जा रहा है।

बौद्ध पुराणः[1]—प्रभाव-विस्तार की दृष्टि से बौद्धों ने हिन्दू देवताओं का बुद्ध भगवान से संबंध जोड़ना आरंभ कर दिया। ऐसा करने के लिए इन्होंने अवतारवाद का आश्रय लिया। बुद्ध भगवान के अनेकानेक जन्म की कल्पना जातक साहित्यमें की गई। इस उपायके द्वारा बौद्ध धर्मोपदेशक प्रचलित कथाओं और लोकप्रिय आख्यानों को अपनाने में समर्थ हुए। प्राचीन बौद्ध साहित्य में राम-कथा-संबंधी तीन जातक सुरक्षित हैं जिनमें बुद्ध, राम-रूप धारण करते हैं। प्रत्येक जातक में पहले "वर्तमान कथा" (पच्चुप्पन्नवत्थु) दी जाती है जिसमें जातक अथवा मूल-कथा कहने का कारण बताया जाता है। इसके बाद अतीत कथा अथवा मूलकथा (अतीतवत्थु) कही जाती है और तत्पश्चात् बुद्ध भगवान जातक का सामंजस्य (समोधान) प्रस्तुत करते हैं।

दशरथ जातक —वर्तमान कथाः किसी गृहस्थका पिता मर गया था। उसने शोक से अभिभूत होकर अपना सारा कर्त्तव्य छोड़ दिया। यह जानकर

1—इन्साइक्लोपिडिया इण्डिका—"जातक खंड"

बुद्धने उसे समझाया कि प्राचीन काल के पंडित लोग (पौराणिक पंडिता) अपने पिता के मरणपर शोक नहीं करते। तदनन्तर उन्होंने दशरथ के मरने पर राम के धैय की गाथा "दशरथ-जातक" में सुनाई।

अतीत कथा—दशरथ महाराज वाराणसी में धर्मपूर्वक राज्य करते थे। इनकी ज्येष्ठा महिषी के तीन संताने थीं-दो पुत्र (राम पंडित और लक्खण) और एक पुत्री (सीतादेवी)। रानीके मरने के पश्चात् राजा ने दूसरी को महिषी बनाया। इससे एक पुत्र (भरतकुमार) उत्पन्न हुआ। इस अवसरपर राजा ने इसे एक वरदान दिया। जब भरत सात वर्ष के हुए तभी रानी ने इनके लिए राज्य माँगा। राजा ने अस्वीकार कर दिया। परन्तु रानी के षड्यत्रों के भय से राजा ने दोनों ही पुत्रों को बुलाकर स्वरक्षार्थ बन जाने के लिए कहा। ज्योतिषियों द्वारा अपनी आयु १२ वर्ष शेष समझकर राजा ने पुत्रों को बारह वर्ष के पश्चात् पुनः लौटकर राज्याधिकार प्राप्त करने की सलाह दी। दोनों भाई जाने लगे तो बहिन सीता ने भी साथ जाने का हठ किया। अत में तीनों साथ जाकर हिमालय पर्वतपर आश्रम बनाकर रहने लगे। नौ वर्ष के पश्चात् राजा का देहान्त हो गया। भरतने राजा बनना अस्वीकार कर दिया और राम को लौटा लाने के उद्देश्यसे ससैन्य चल पड़े। राम अकेले बैठे थे। उसी समय भरत आमात्योंके साथ पहुँचकर सारा वृत्तान्त कहकर रोने लगते हैं। राम पंडित न तो शोक करते हैं और न तो रोते हैं। संध्या समय सीता एव लक्ष्मण भी लौटकर आते हैं। पिता का देहान्त सुनकर शोक करने लगते हैं। इसपर राम उन्हें अनित्यताका उपदेश देते हैं। उनका शोक दूर हो जाता है। भरत के अनुरोधपर राम पिता की बारहवर्ष की अवधि का स्मरण करके बन में रह जाते हैं और सीता तथा लक्ष्मण के साथ भरत तृणपादुका लेकर लौट आते हैं। आमात्य इन पादुकाओं के सामने राजकार्य करते हैं। अन्याय कार्य पर ये पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती हैं, अन्यथा शांत रहती हैं। तीन वर्षके पश्चात् राम पंडित लौटकर अपनी बहिन सीता से विवाह करते हैं। सोलह सहस्र वर्ष राज्य करने के पश्चात स्वर्ग चले जाते हैं।

सामञ्जस्य—भगवानबुद्ध जातक का सामंजस्य बैठाते हैं: 'उस समय महाराज शुद्धोधन महाराज दशरथ थे, महामाया राम की माता तथा यशोधरा सीता थीं, आनन्द भरत थे और मैं राम पंडित था।'

अनामकं जातकम्[1] :— इसका मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है। चीनी अनुवाद ही सुरक्षित है। दशरथ-जातक की अपेक्षा इसमें निम्न विशेषताएँ हैं (१) इस जातक में किसी भी पात्र के नाम का उल्लेख नहीं है (२) सीता राम की बहन भी नहीं है (३) राजा बोधिसत्व ने इसलिए राज्य छोड दिया था कि लोभी एव निर्दयी मामा की राज्यापहरण की नीति के विरुद्ध उन्हें युद्ध करना पड़ता और इस प्रकार असंख्य जीवों की हत्या होती (४) पहाड़ी वन में राजा की अनुपस्थिति में समुद्र का दुष्ट नाग, छद्म-वेश धारण करके रानी को उठा ले जाता है। (५) चचा से त्रस्त एक बन्दर से राजा की मित्रता होती है और राजा के बाण-सधान को देखते ही बन्दर का चचा भग जाता है (६) रानी की खोज बन्दरों ने आरभ की और एक आहत पक्षी से सब समाचार प्राप्त हुआ (७) समुद्र सतरण मे असमर्थ बन्दरों को छोटे बन्दर के वेष में इन्द्र की सहायता सुलभ हुई। नाग की समूची माया से अवगत छोटा बन्दर राजा की सहायता करता रहा। अन्त में बिजली के रूप में उपस्थित नाग मारा गया। रानी मुक्त हो गई। इधर मामा का देहान्त सुनकर राजा स्वदेश लौट पड़ा। उसने रानी के चरित्र पर सदेह किया। रानी ने पृथ्वी में तिरोहित होकर अपने सतीत्व का प्रमाण दिया। राजा-रानी के प्रभाव से धर्म-राज्य की स्थापना हो गई। बुद्ध ने कहा—'उस समय मैं राजा था, गोपा रानी थी, देवदत्त मामा था, और मैत्रेय इन्द्र (छोटा बन्दर) था।'

दशरथ कथानम् :—इसकी कथावस्तु दशरथ-जातक की ही भाँति है। अन्तर मात्र इतना है कि इसमें सीता आदि किसी राजकुमारी का उल्लेख नहीं हुआ है। राम का वनगमन रानी के षड्यन्त्र से भयभीत राजा की आज्ञा से न होकर तीसरी रानी के वरदान के परिणाम स्वरूप हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें दशरथ की चार रानियाँ हैं और प्रत्येक से एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ है। साथ ही भरत तृणपादुका नहीं चर्म-पादुका लेकर अयोध्या लौटते हैं।

यहाँ कथानक में परिवर्तन बौद्ध आदर्श एव शैली के अनुरूप हुआ है। भगवान बुद्ध ही पूर्वजन्म में राम पडित थे, अतः बालि-वध एव रावण-वध बौद्ध आदर्श के प्रतिकूल पड़ने के कारण त्याज्य रहा। 'अनामकं जातकम्' में यह प्रसग आया भी है तो नए ढग से आया है। यहाँ बालि स्वय भग जाता है

१—राम-कथा, पृष्ठ ४४

जबकि रावण मनुष्य-रूप में नहीं अपितु बिजली का रूप ग्रहण करने पर ही मारा जाता है। कथा से उपदेश ग्रहण की प्रवृत्ति के कारण भी कथानक में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। 'दशरथ-जातक' में शोक की निःसारता और 'दशरथ कथानम्' में आचरण शुद्धता एव पितृ भक्ति को प्रदर्शित करने के लिए सीताहरण आदि प्रसग अनावश्यक थे। इसलिए इनमें सीताहरण आदि की घटनाएँ नहीं हैं। 'दशरथ-जातक' की इस प्रवृत्ति को देखकर डा० वेबर ने इतने ही को मूल कथा मान लिया था, फिर क्या, द्वितीय भाग की कथा के लिए अनेकानेक तर्क प्रस्तुत किए गए। परन्तु एक तो राम-कथा का दशरथ जातक से विकास ही नहीं हुआ है और यह मूल राम-कथा की विकृति है,[१] दूसरे यह कि ऐसा कोई ठोस कारण भी अब तक उपस्थित नहीं किया जा सका जिसके आधार पर एक ओर रामवनगमन एव दूसरी ओर सीताहरण तथा रावण-वध तक की घटनाओं को दो भागों में विभाजित करके दोनों का पृथक-पृथक विकास सूत्र ढूँढना सभव हो।[२]

राजधानी का अयोध्या न होकर वाराणसी होना और वनवास का स्थान दक्षिण न होकर हिमालय होना भी बौद्ध-शैली की विशेषता है। 'दशरथ-जातक' में ज्योतिषियों के कथन के प्रतिकूल नवें वर्ष ही दशरथ की मृत्यु तथा राम और सीता (भाई और बहन) का विवाह मात्र हिन्दू-प्रतिक्रिया ही है। नैतिक पहलुओं पर अवैदिक सम्प्रदायों द्वारा आघात करने की प्रवृत्ति प्राचीन है। सिद्धों, नाथ योगियों आदि में इसका पूर्ण विकास प्राप्त होता है, जहाँ गोमांस-भक्षण, वारुणी-पान आदि की खूब महिमा गाई जाती है—यद्यपि अर्थ दूसरा ही होता है।[३] कबीर ने तो माता और पत्नी तक को एक कर दिया है।[४] अत सीता और राम का भाई-बहन होना विशेष चिंतनीय नहीं है। 'सुत्तनिपात टीका' में

१—एम० विटरनित्स—हि० इ० लि०, भाग १, पृ० ५०८।

२—डा० कामिल बुल्के—वही० पृ० ११२।

३—विशेष विवरण के लिए—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—मध्य कालीन धर्म साधना पृ० ७०-८०।

४—तब करमा पूछा महतारी—कवन तोरे पूत काकर तू नारी।
हमहि तोर माइ हमहि तोर जोई॥

भी राजा की नव संतानों में से चार भाइयों का चार बहिनों से विवाह हो गया है और ज्येष्ठा सबकी माता कहलाने के लिए अविवाहित रह गई है। इन्हीं भाई-बहिनों की संतानों से शाक्यों की उत्पत्ति हुई है। इस वृतान्त से भी उपरोक्त प्रवृत्ति की पुष्टि होती है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध-शैली के अनुसार ही परिवर्तन हुआ है, अन्यथा यह कथा 'रामायण से' प्रभावित है। डा० विटरनित्स का मत है कि रामायण में पिता का देहान्त सुनकर राम शोक करते हैं, किन्तु जातक में इसे निःसार समझकर छोड़ दिया गया है और इन गाथाओं को नया रूप दे दिया गया है।[1]

जैन पुराण:—बौद्धों की अपेक्षा जैनियों में राम-कथा की विस्तृत परम्परा प्राप्त होती है। जैनियों ने राम-कथा के पात्रों को अपने धर्म में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। राम (पद्म) लक्ष्मण एवं रावणको इनके त्रिषिष्ट महापुरुषों में रखा गया है। ये तीनों क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव माने गए हैं।[2] वासुदेव अपने बड़े भाई बलदेव के साथ प्रतिवासुदेव से युद्ध करते हैं और चक्र से उसे मार डालते हैं। हत्या के पाप से वासुदेव को नरक मिलता है और शोकाकुल बलदेव जैनधर्म में दीक्षित होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस धारणा विशेष के कारण जैनियों ने राम-कथा में यथेष्ट परिवर्तन किया है। इसे देखने के लिए यहाँ दो ग्रन्थ पर्याप्त हैं (१) विमलसूरि का पउमचरिय और (२) गुण-भद्र का उत्तरपुराण।

पउमचरिय.—राजा सेणिय (श्रेणिक) किसी दिन गोयम (गौतम), महावीर के प्रधान शिष्य से राम-कथा का यथार्थ रूप जानने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर गोयम पउमचरिय सुनाता है। प्रारंभ में विद्याधरलोक, राक्षस-वंश, वानर-वंश और रावण की वंशावली का वर्णन दिया गया है। इस वर्णन में रामायण से भिन्न कथा मात्र इतनी ही है कि रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण एवं चन्द्रनखा एक ही माँ की संतान हैं। रावण के गले में पड़ी

१—एम० विन्टरनित्स-हि० इं० लि०, प्रथम भाग, पृ० ५०८।

२—वही ४६७।

मोतीकी माला में दस सिर देखकर ही पिता ने दसशीश नाम रक्खा। रावण ने ६००० कन्याओं से विवाह किया और नलकूबर की पत्नी के प्रेम-प्रस्ताव के अस्वीकार कर के विरक्त परनारी का भोग न करने का व्रत लिया। वालि ने वैरागी रूप में सुग्रीव को राज्य देकर जैन दीक्षा ले ली। हनुमान ने रावण की ओर से वरुण के विरुद्ध युद्ध कर के अनगकुसुमा (चन्द्रनरवा की पुत्री) से विवाह किया। खरदूषण रावण के वशका न होकर विद्याधर वश का है जिसका विवाह चन्द्रनरवा से हुआ है।

राम और सीता के जन्म एव विवाह का द्वितीय भाग रामायण के अधिक निकट है। अन्तर इतना है कि नारद के मुख से सीता एव राम द्वारा अपनी भावी मृत्यु का समाचार पाकर रावण ने विभीषण को जनक एव दशरथ को मार डालने के लिए भेजा। भय के कारण ये राजा महल में अपनी अपनी प्रतिमा स्थापित कर के परदेश चले गए। यहीं दशरथ को कैकेयी ने वरण किया। इस प्रकार राजा दशरथ को सुप्रभा को लेकर चार रानियाँ हैं और प्रत्येक मे एक एक पुत्र की उत्पत्ति है। इसके पश्चात् राम-वन-गमन एव उन्हें लौटाने का भरत का प्रयत्न 'रामायण' जैसा ही है।

इसके वनभ्रमण का चतुर्थ खंड रामायण से भिन्न है। इसमें राम-लक्ष्मण अनेक युद्ध करते हैं और अन्यान्य कन्याओं को पत्नी-रूप में ग्रहण करते हैं।

पचम खड का सीताहरण एवं सुग्रीव का कष्ट रामायण से नितान्त भिन्न है। ‹२ वर्ष तक घोर तप द्वारा शम्बूक ने (चन्द्रनरवा के पुत्र) 'सूर्यहास खग' की सिद्धि की, पर इसी समय लक्ष्मण ने उसका वध करके खग को स्वयं ग्रहण कर लिया। दु खी चन्द्रनरवा ने इनसे विवाह का प्रस्ताव किया। असफल होनेपर खरदूषण एव रावण को बुलवाया। रावण सीता के सौदर्य पर मुग्ध हो गया और 'अवलोकनी विद्या' ने राम द्वारा लक्ष्मण को सकेत स्वरूप बताए गए सिंहनाद को जान गया। अत. वह सिंहनाद करके लक्ष्मण को राम के पास भेजकर सीता का हरण करने में सफल हो जाता है। इधर सुग्रीव की पत्नी को साहसगति ने छीन लिया था। राम इसका वध करते हैं। सुग्रीवसे मित्रता हो जाती है।

पचम खड के अन्तर्गत प्रथमत· समुद्र नामक राजा से नल की और तत्पश्चात् सुवेल आदि से राम का युद्ध हुआ। लक्ष्मण की शक्ति द्रोणमेघ की कन्या

विशल्या के उपचार से दूर हुई। युद्ध में रावण का वध लक्ष्मण ने किया। इसके पश्चात् राम लौटकर राज्य करते हैं। राम की ८००० और लक्ष्मण की १३००० पत्नियाँ हैं। सीता-निर्वासन एवं अग्नि-परीक्षा तक की घटनाएँ 'रामायण' ही जैसी हैं। अन्त में शोक के कारण मरकर लक्ष्मण नरक जाते हैं, सीता एवं राम जैनधर्म में दीक्षित होकर स्वर्ग जाते हैं।

उत्तर पुराण :—गुणभद्र के उत्तर पुराण की राम-कथा विमलसूरि एवं वाल्मीकि की कथा से बहुत भिन्न है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें सीता मन्दोदरी एवं रावणकी औरस पुत्री मानी जाती है।

दशरथ (वाराणसी के राजा) के चार पुत्र उत्पन्न होते हैं। राम सुबाला से, लक्ष्मण कैकयीसे और बादमें साकेतपुर राजधानी स्थापित होने पर भरत एवं शत्रुघ्न अन्य रानियों से उत्पन्न होते हैं। दशानन विनमि विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र है। अमितवेग की पुत्री मणिमती अपने साथ रावण के अनाचारको देखकर उसकी पुत्री बनकर प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा करती है। फलतः मन्दोदरी के गर्भ से उसका जन्म होता है, पर इस रहस्य को जानकर रावण इसे विदेहनगर में गड़वा देता है, जहाँ जनक इसे प्राप्त करते हैं और राम से विवाह होता है। राम-सीता पिता की आज्ञा से वाराणसी में रहने लगते हैं। रावण सीता पर मुग्ध हो जाता है। उसे बहकाने के लिए शूर्पणखा को भेजता है, पर असफल रहता है। अत में राम-सीता को वाराणसी के पास चित्रकूट वाटिका में विहार करते हुए देखकर मारीच कनकमृग का स्वाग रचकर राम को दूर ले जाता है। इधर रावण राम का वेश ग्रहण करके सीता को बहका ले जाता है। दशरथ को स्वप्न में यह वृत्तान्त ज्ञात हो जाता है। वे राम के पास इस समाचार को भेजते हैं। उधर सुग्रीव एवं हनुमान राम के पास सुबालि के विरुद्ध सहायता माँगने जाते हैं। हनुमान लंका जाकर सीता को सान्त्वना देते हैं। लका-दहन नहीं करते हैं। लक्ष्मण वालि का वध करते हैं। रावण से युद्ध करते समय लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काट लेते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्मण दिग्विजय करते हुए अर्द्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या आते हैं। राम की ८००० और लक्ष्मण की १६००० रानियाँ हैं। सीता के ८ पुत्र उत्पन्न होते हैं। निर्वासन नहीं होता

है। लक्ष्मण मरनेके बाद (हत्या के कारण) नरक में जाते हैं, राम दीक्षित होकर मुक्ति पाते हैं और सीता अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेकर स्वर्ग जाती है।

जैन साहित्य में बलदेव, वासुदेव एव प्रतिवासुदेव विषयक साम्प्रदायिक धारणा के कारण कथा में अद्भुत परिवर्तन हुआ है। जैनियों में लक्ष्मण एव कृष्ण आदि (वासुदेवों) का महत्व अधिक स्वीकृत है। इनका शोकाकुल अत दिखाकर नरकवास कराना सोद्देश्य हुआ है। यहाँ जैनियों ने अपने अहिंसावाद, सदाचार आदि की पुष्टि की है और हिन्दुओं की मान्यता को उनके उपास्य देवों का नरकवास दिखाकर गहरी ठेस दी है। बलदेव (रामादि) की मुक्ति के लिए एक तो इन्हें जैन-धर्ममें दीक्षित किया गया है और दूसरे बालि, रावण आदि का वध, मात्र वासुदेव द्वारा कराया गया है। रावणका वासुदेवके ही विकृत रूप (प्रतिवासुदेव) होने के कारण हिन्दू ग्रन्थों के समान यहाँ इसे पाप एवं घृणाका प्रतीक नहीं बनाया गया है। पउमचरिय में रावण न तो दशानन है (दशानन उसका वह नाम है जो बाल्यावस्था में मणियों की माला में दस मस्तक दिखाई पड़ने के कारण पड़ा) और न अनाचारी ही। वह नलकूबर की पत्नी का प्रेमप्रस्ताव तक अस्वीकार कर देता है (जब कि रामायण के उत्तरकांड में देवयानी के साथ जबरदस्ती करता है) और आजीवन विरक्त पर नारी के भोग न करने की प्रतिज्ञा का पालन करता है। रावणके चरित्र को अधिक न गिरने देने के लिए ही संभवतः हनुमान से उसकी मित्रता स्थापित कराई गई है। "उत्तरपुराण" में 'पउमचरिय' की अपेक्षा रावण कुछ अधिक भ्रष्ट है अवश्य, फिर भी न तो वह अमितवेग की पुत्री मणिमती के साथ हिन्दू आख्यानों में प्रसिद्ध नलकूबर की पत्नी-सा आचरण ही करता है और न सीता-हरण के समय सीताका स्पर्श ही करता है। पउमचरियमें बालि का जैन-भिक्षुक रूप एव रावण का बहुत-कुछ सदाचारी रूप देखकर बहुत से विद्वानों ने कुछ दूसरा ही अनुमान लगाया है, पर वास्तव में यह प्रवृत्ति मात्र हिन्दू प्रतिक्रिया ही कही जा सकती है। बौद्धों में भी यही प्रवृत्ति हैं। "लंकावतार सूत्र" में तो रावण एव बुद्धका धर्म-विषयक विस्तृत वार्त्तालाप भी है।

जैन राम-कथा में बहुपत्नीत्व का बड़ा महत्व प्रतिपादित किया गया है। अतः कन्यायों की प्राप्ति के लिए नए-नए प्रसगों की अवतारणा भी हुई है।

वनभ्रमण-प्रसग में अनेक युद्ध, तदुपरान्त समुद्र एव सुवेल से युद्ध, लक्ष्मण-शक्ति के समय द्रोणमेघ की कन्या विशल्या द्वारा उपचार आदि मात्र कन्या-प्राप्ति करके पत्नियों की लिस्ट में वृद्धि करने के अभिप्राय से ही हुआ है। 'आध्यात्म रामायण में' यह परम्परा दशरथ के साथ आई है। इन्होंने ७०० कुमारियों से विवाह किया था। सभवतः इसी प्रवृत्ति के कारण पउमचरिय में शृंगारिकता अधिक आने लगी है।

सीता का रावणात्मजा होना, सभव है, वासुदेव की अर्द्धांगिनी को उन्हीं की समकक्षीय शक्ति, प्रतिवासुदेव से उत्पन्न होने के कारण हुआ हो।

पउमचरिय प्रथम ग्रन्थ है जिसमें राम स्वयंवर में ही धनुष चढाते हैं। ऐसा सभवत शक्ति-उत्कर्ष प्रदर्शित करने की दृष्टि से हुआ होगा। इसी प्रकार दशरथ कथानम् की भाँति इसमें दशरथ की चार रानियों का वर्णन चार पुत्रों के तुक पर हुआ होगा।

कहने का तात्पर्य यह कि एक ही मूल-कथा से कथा का ग्रहण होने पर भी उद्देश्यानुसार पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। जहाँ कथानक में स्पष्ट उलट-फेर नहीं भी है, वहाँ भी मूल भावना में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है।

हिन्दू पुराण—:पूर्ववर्ती धार्मिक साहित्य में राम-कथा को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान न मिल सका था, परन्तु रामभक्ति की उत्पत्ति के पश्चात् राम-कथा ने समूचे हिन्दू जीवन को आच्छादित-सा कर लिया। अतः बाद के पुराणों (विशेषत स्कदपुराण, पद्मपुराण, देवी महाभागवत पुराण आदि में) राम-कथा विषयक पर्याप्त सामग्री बढने लगी थी। प्राचीन ऋषियोंके जीवन-सत्यों अथवा साधना-तथ्यों को आख्यानों में ढालने का कार्य पुराणों में पर्याप्त हुआ। वेदों के सत्यं सर्वज्ञान अनन्तम् ब्रह्म ने पुराणों में सौन्दर्यमूर्ति तथा पतितपावन भगवान के रूप में अपने को प्रकाशित किया।''[1] फलतः राम-कथा के अनेकानेक प्रश्नवाची स्थलों एव पूर्वापर सबंध स्थापित करने वाले प्रसगों को लेकर विपुल आख्यान निर्मित होता गया और राम-कथा (मूल के निकट होते हुए भी) पर्याप्त परिवर्तित होती

१—भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय, पृ० १४१, प्र० सं० २०१०।

गई। यथा, राम एव सीता शब्द का विष्णु एवं लक्ष्मी अर्थ[1] लगाने के साथ साथ एतद्विषयक सामग्री भी उनसे सम्बद्ध की गई और एतदर्थ अनेक कथाएँ गढ़ ली गईं। रामायण, हरिवंश, विष्णु पुराण, वायुपुराण आदि में जहाँ भरतादि विष्णु के एक-एक चतुर्थांश से समन्वित हैं वहाँ पर आध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण आदि में शंख-चक्रादि के अवतार बन गए। इस प्रकार कथा में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है।

स्थूलत. समान उद्देश्य से लिखे गये अठारह पुराणों का होना इस बात का प्रमाण है कि सब में दृष्टि भेद विद्यमान रहा। विभिन्न पुराणों में विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव भी लक्षित होता है। कभी-कभी तो मात्र किसी सम्प्रदाय के उद्देश्य साधन के निमित्त ही कोई पुराण रच दिया गया है।[2] डा० विंटरनित्स का कहना है कि प्रत्येक पुराण में किसी न किसी देवता अथवा अवतार को आधार मानकर सम्प्रदाय विशेष का प्रचार किया गया है।[3] भारतीय धर्म-साधना की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि अपने आराध्य देवकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए अन्य देवो को उनका कृपाकाङ्क्षी सिद्ध किया गया है। शिव के प्रभाव को दिखाने लिए ब्रह्मपुराण', 'स्कंधपुराण' आदि में जहाँ एक ओर राम द्वारा शिव-लिंग की स्थापना कराई गई है, वहाँ 'पद्मपुराण में' राम द्वारा शिव-भक्ति की याचना करा करके' शिवमहापुराण में' उन्हें पूर्णतः शिवभक्त बना दिया गया है। ठीक ऐसा ही प्रयत्न शक्ति सम्प्रदायवालों द्वारा भी हुआ है। श्रीमद्देवीभागवतपुराण, महाभागवत पुराण, कालिकापुराण आदिमें राम बिना शक्ति की कृपाके कोई भी

१—रा शब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्व वाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन राम प्रकीर्तित ॥
रमते रमया सार्द्धं तेन राम विदुर्बुधा॰ ॥
रमाणा रमणस्थान राम रामविदो विदु॰ ॥

२ इनसाइक्लोपिडिया, भाग १३, पृ० ६७०।

३ एम० विंटरनित्स, हि० इ० लि०, भाग १ पृ० ५२२।
रा चेति लक्ष्मी वचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
लक्ष्मीपति गति रामं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
—ब्रह्मवैवर्त्तपुराण (श्रीकृष्ण जन्मखंड)

सफलता नहीं प्राप्तकर सके। इसी प्रकार वैष्णवों का भी प्रयत्न है। यही नहीं किसी व्रत आदि के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए भी अवतारी पुरुष के मुख से उसका माहात्म्य कहलाया गया है और फल भी दिखाया गया है। 'श्रीमद्देवीभागवत पुराण के' नवरात्यमाहात्म्य खड के अन्तर्गत राम रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए नवरात्रोपवास करते हैं और अन्त में देवी का आश्वासन प्राप्त करते हैं।

पुराणों की उपरोक्त प्रवृत्ति के कारण राम-कथा का समूचा प्रतिपाद्य ही परिवर्तित होता गया है। समान कथा-वस्तु के रहते हुए भी उद्देश्य वैभिन्य के कारण सम्पूर्ण अवयवों में किस प्रकार अद्भुत परिवर्तन हो जाता है, इसे देखने के लिए अध्यात्म रामायण पर संक्षिप्त विचार अपेक्षित है।

अध्यात्म रामायण :—साम्प्रदायिक रामायणों में अध्यात्मरामायण का महत्वपूर्ण स्थान है। १२वीं शताब्दी ई० से रामानुज सम्प्रदाय में रामभक्ति एव रामोपासना का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया जाने लगा और एतद्विषयक उपनिषदों एव संहिताओं की रचना हुई। भक्ति-भावना के कारण राम विष्णु के अंशावतार न होकर पूर्णावतार हो गए और रामायण की आधिकारिक कथा-वस्तु में परिवर्तन होने लगा—सीताहरण तथा रावण-वध को एक नया रूप ही दिया गया और कथानक के अन्य गौण प्रसगों का भी दृष्टिकोण बदलने लगा। शरभंग, अगस्त्य आदि का वृत्तान्त भक्त और भगवान के वृत्तान्तके रूप में आने लगा। राम-भक्ति की विकास परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखनेवाले इस अध्यात्म रामायण का मुख्य उद्देश्य वेदान्त दर्शन के आधार पर रामभक्ति का प्रतिपादन करना है। इसी दृष्टि से कथानक में परिवर्तन भी हुआ जो कि निम्नलिखित रूपों में दर्शनीय है। (१) समस्त कथा पार्वती-शंकर-सवाद के रूप में कही गई है। नारद ने ब्रह्मा से इस संवाद को सुना था। (२) राम और सीता, परब्रह्म और प्रकृति के तथा भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न क्रमश शंख, शेष एवं चक्र के अवतार हैं। ग्रन्थ के प्रायः अधिकांश पात्र इस रहस्य से परिचित हैं (३) भागवत के अनुकरण पर राम भी माता को अपना दिव्य रूप दिखाते हैं और बाल-लीला में छींका आदि फोड़ डालते हैं (४) भक्तवत्सल के रूप में अहल्योद्धार, केवट-प्रसग और अरण्यवासी ऋषियों को दर्शन देना है। रामायण की भांति इसके राम ऋषियों के अतिथि नहीं पूज्य और आराध्य हैं। अत. दोनों ही

पद्धतियों में पर्याप्त अतर हैं (५) रामनाम माहात्म्य दिखलाने के लिए वाल्मीक द्वारा आत्म-कथा आदि कहना (६) वास्तविक सीता का हरण न होकर मायामयी सीता का हरण होना (७) रावण द्वारा सीताहरण मात्र बैकुठ जाने की इच्छा से होना (८) लक्ष्मण का १२ वर्ष तक उपवास करना (६) सेतु-बध के पूर्व शिव-लिंग की स्थापना (१०) रावण की नाभि में अमृत की स्थिति आदि।

साम्प्रदायिक राम-भक्ति को लेकर चलनेवाले रामायणों में अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण आदि मुख्य हैं। इन सब में कथानक का विकास अपने ढंग पर हुआ है। इस प्रकार हरिवश पुराण, विष्णुपुराण, वायु-पुराण, भागवतपुराण, कर्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, गरुड़पुराण, स्कद-पुराण, पद्मपुराण, नृसिंहपुराण, श्रीमद्देवीभागवतपुराण, महाभागवत (देवी) पुराण, कालिकापुराण, शिवमहापुराण आदि पुराणों एव अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण, महारामायण आदि रामायणों एव सत्यो-पाख्यान, हनुमत सहिता, बृहत्कोशल खड आदि अन्य धार्मिक ग्रन्थों में राम-कथा के नाना रूप प्रकट हुए हैं। एक ही कथा को उद्देश्य-विशेष के अनुसार सबने ग्रहण किया है और उसपर आवश्यक रग चढा कर नवीन बना दिया है।

यह तो हुआ धार्मिक उद्देश्य के अनुसार राम-कथा का स्वरूप-निर्माण। अब साहित्य-रूप के अनुसार भी इसके विविध रूप को देखना अपेक्षित है। यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि राम विषयक धार्मिक दृष्टिकोण बहुत दिन तक साहित्य से दूर रहा और रामाख्यान के आदर्शात्मक पहलुओं को लेकर बहुत दिनों तक साहित्यिक रचना होती रही। समवत १४वीं शताब्दी से भक्ति-भावना साहित्य क्षेत्र में प्रविष्ट हुई। तबसे धार्मिक वातावरण ही प्रधान होकर सामने आ गया और प्राचीन मान्यताओं में अनेक परिवर्तन हो गये।

महाकाव्य —'रामायण' राम-कथा का आदि स्रोत भी है और देव-भाषा सस्कृत का प्रथम महाकाव्य भी। वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य का नायक उस व्यक्ति को बनाया जिसने अपने दिव्य चरित्र से समूची भारतीय काव्य-प्रतिभा को अभिभूत कर लिया। 'प्रसन्न राघव' की प्रस्तावना में नर सूत्रधार से पूछता है— 'ये सब कवि क्यों रामचन्द्र का पुन पुनः वर्णन करते हैं ?' इसपर सूत्रधार उत्तर

देता है कि यह कवियों का दोष न होकर उन गुणों का दोष है जिन्होंने राम में ही एकमात्र आश्रय बना लिया है।[1] इसी की व्यंजना वाल्मीकि के उस प्रश्न में भी होती है जिसे उन्होंने महर्षि नारद से पूछा था। वाल्मीकि का प्रश्न सुनकर त्रिकालज्ञ नारद ने प्रसन्न होकर कहा था कि हे मुने ! आपने जिन गुणों का बखान किया, वे सब दुर्लभ हैं, किन्तु मैं अपनी समझ से ऐसे गुणों से युक्त पुरुष रत्न को बतलाता हूँ।[2] ऐसे देव-दुर्लभ पुरुष का नाम नारद ने राम बताया जो गांभीर्य में समुद्र के समान, धैर्य में पर्वतराज हिमालय के तुल्य, बल-वीर्य में विष्णु के सदृश, और चन्द्र के समान प्रिय-दर्शन, कालानल तुल्य क्रोधी और पृथ्वी के समान क्षमावान हैं।[3] इन्हीं सर्वगुण-सम्पन्न महापुरुष की कथा रामायणमें वर्णित है। रामायण की कोई भी घटना, कोई भी कार्य अथवा प्रसंग ऐसा नहीं है जहाँ रामकी उपरोक्त चारित्रिक रेखाएँ न उद्घाटित हुई हों। शक्ति, शील और सौंदर्य की अलौकिक आभा से समूचा कथानक जगमगा उठा है। अभिषेकका संवाद सुनकर राम प्रसन्न होते हैं। उपवास-व्रत में समूची रात आनंदातिरेक के कारण सीता के साथ जागते हुए बिता देते हैं पर माता कैकेयी के विष-वचनों का भी उसी साहस के साथ सामना करते हैं। राम की विचार-धारा को बदलने का चतुर्दिक प्रयत्न होता है, पर उनका तो एक ही निर्णय है कि—मैं अपने जीवन में सुख, सम्पदा, ऐश्वर्य यहाँ तक कि स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करता। मैं सत्यबद्ध हूँ और सत्य का पालन करूँगा। पिता

१—नट—कथं पुनरमी कवयः सर्वे रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति

सूत्रधार—नायं कवीनां दोषः (यतः)
स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीना को दोष स तु गुणगणानामवगुणः
यदेतैर्निःशेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग—
त्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः ॥ (प्रसन्न राघव)

२—बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥

३—समुद्र इव गांभीर्ये, धैर्येण हिमवान इव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये, सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्नि सदृशः क्रोधे, क्षमया पृथ्वी समः ॥

देवताओं से भी बढ़कर पूज्य है।"[1] किन्तु फिर भी वे मानव हैं। तुलसीदास के राम की भाँति यहाँ बाप के राज्य को बटाऊ की नाई छोड़ देनेवाला कठोर-हृदय कहाँ! वह तो सरयू के तटपर सुमंत से कहते हैं—"सुमंत! न जाने पुनः कब इस सरयू में लोटूँगा।"[2] क्षत्रिय कुमार की भाँति वह वन में घूम-घूमकर ऋषियों का स्वागत-सत्कार करते हैं और ऋषियों द्वारा शरण-याचना करने पर निर्भीक भाव से राक्षसों के नाश की प्रतिज्ञा करते हैं। सीता के मना करने पर भी उनका यही बाना है कि—शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है, इसे मैं रक्खूँगा, चाहे तुम्हें भी क्यों न खो देना पड़े। कालानल सदृश यही राम सीता-वियोग में उन्मत्त हो जाते हैं। सारा संसार उनके लिए सूना हो जाता है। किन्तु क्षत्रियोचित दर्प एवं विवेक कहीं भी मंद नहीं पड़ता। बालि को छिपकर मारने के पूर्व वह इस पर पूर्णतः विचार करते हैं और तब अंत में अपने को भरत का प्रतिनिधि समझकर उस अधर्मी का वध करते हैं। दौत्य-कार्य में संलग्न राक्षसों को जिस भाव से क्षमा करते हैं ठीक उसी भाव से युद्ध में जर्जर एवं श्रान्त शत्रु (रावण) से यह भी कहते हैं—तुम आज थके हो, जाओ विश्राम करो। कल पुनः युद्ध होगा। यह है आदर्श मानवीयता जहाँ एक ओर हृदय का स्वाभाविक स्पन्दन है, इच्छाओं का सहज नर्तन है तो दूसरी ओर कर्तव्यों का वह उच्च शिखर भी है जहाँ देवत्व मनुष्यत्व से आदर्श सीखता है। चरित्र की इस उदात्तता के कारण ही रामायण, समस्त काव्यों, नाटकों और इतिहास-पुराणों का आदि स्रोत बन सका है।[3]

रघुवंश :—परवर्ती महाकाव्यों में नैसर्गिक महाकाव्यों (authentic Epic) जैसी गरिमा नहीं रह गई। जीवन के आनन्दवादी दृष्टिकोण एवं स्मृतियों के निश्चित विधि-विधानों के अन्तर्गत काव्य विषयक धारणा पर्याप्त परिवर्तित हो गई। ख्यातवृत्त के कितने ही मुख्य अंश इनमें गौण हो गए और कितने ही गौण अंश मुख्य हो गए। आनन्दवर्द्धक प्रसंगों का बाहुल्य होने

१—वही० ।२।३४।४७-४८।। २—वही० १।४६।१२।।

३—रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहासपुराणयोः ।। वृहद्धर्मपुराण २५।२८।-

लगा।[1] 'रघुवंश' की राम-कथा बहुत कुछ रामायण पर ही आधारित है फिर भी रामायण और रघुवंश में महान अंतर है। दोनों की कथा की आत्मा ही बदल गई है। रघुवश में वीरयुग (Heroic Age) के कथानकों जैसी रुक्षता कहीं भी नहीं है, सर्वत्र एक प्रकार की रगीनी है—यद्यपि यहाँ भी राम राजाओं की श्रेणी में उत्कृष्टतम रूप में प्रस्तुत हैं। पर, यह उत्कृष्टता वाल्मीकि की स्टाइल पर न होकर स्वर्ण-युगके अद्वितीय कलाकार कालिदास की स्टाइल पर है।[2] सीता त्याग तक की कथा ५ सर्गों में वर्णित है अवश्य, फिर भी जहाँ ऐसे प्रसंगों पर कवि की लेखनी शीघ्रता से आगे बढ़ गई है वहाँ राम के यौवनावस्था के कार्यकलापों के रोमान्टिक वर्णन, सीता से पुनर्मिलन के समय प्रेमी हृदय से नि.सृत भावावेश में राम के मुख से विगत सुखोंदुःखों के वर्णन आदि में कवि निश्चिन्त भाव से बिलम गया है। तत्पश्चात् इसी पीठिका पर सीता के करुण निर्वासन और राम के मूक रुदन में काव्य धन्य हो उठा है।

भट्टिकृत रावणवधः—कालिदासने काव्यत्वके साथ कथानक एवं कथाशिल्प को भी ध्यानमें रक्खा था पर उनके बाद के महाकाव्यकारों में यह प्रवृत्ति मंद होती गई। प्रतिभा-प्रदर्शन अथवा काव्य को ललित बनाने की धारणा के कारण प्रासगिक वर्णनों पर इतना अधिक ध्यान दे दिया गया कि वे असम्बद्ध से लगने लगे। भारवि एव माघ में यह प्रवृत्ति अधिक है। बिना किसी संतुलन के वर्णनामक एव कामपरक (erotic) प्रसंगों के चित्रण की अत्यधिक प्रवृत्ति होने के कारण काव्य अपने में सम्पूर्ण न होकर रस-खड के रूप में प्रस्तुत होने लगे।[3] समूची काव्य-प्रतिभा का उपयोग आलकारिक वर्णनों एवं शिल्प-विधानों (Power of Craftmanship) पर ही किया जाने लगा। 'रावण-वध'

1—The court influence undoubtedly went a long way, not only in fostering a certain languour and luxuriance of style but also in encouraging a marked preference of what catches the eye to what touches the heart"—H S Literature—S N Das Gupta & S. K. De , P 19

२—वही० पृ० १२० ।

3—The theme therefore is often too slender and insignificant The whole poem becomes, not an organic whole, but a mosaic of poetic fragments, tastelessly cemented together Gupta & De,. P, 175.

ऐसा ही काव्य है। इसमें रावण-वध तथा राज्याभिषेक तक की पूरी कथ रामायण जैसी है—विशेषता केवल इतनी ही है कि 'कामिनी केलि' नामक १०वें सर्ग में राक्षसियों का सभोग वर्णन मिलता है। व्याकरण एवं अलकार के नियमों के प्रदर्शन की वृत्ति होने के कारण समूचा काव्य एक दूसरे ही रूप में सामने आया है। कथानक तो अति सामान्य और निर्जीव है।

जानकी-हरण :—पूरे ग्रन्थ के अप्राप्त होने के कारण आदि भाग का तो परिचय नहीं मिलता, किन्तु अन्त राज्याभिषेक से ही हुआ है। इसकी कथावस्तु रामायण के प्रथम छः काडों पर आश्रित है। इसका कथानक अत्यन्त साधारण है। स्थल-स्थलपर नए नए प्रसग आये हैं और काव्यात्मक वर्णनों की अधिकता होगई है। उपरोक्त महाकाव्यों की अपेक्षा इसकी सबसे बड़ी विशेषता है शृंगारिकता की। किन्तु यह शृंगारिकता कालिदास आदि की भाँति जीवन की सहज पद्धति पर न होकर बहुत कुछ साम्प्रदायिक हो गई है। विलास-क्रीड़ा में राम को कृष्ण से अधिक बढाकर दिखाने की होड़ चल पड़ी थी,[1] सभव है उसीका प्रभाव इसपर भी पड़ा हो। इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—प्रथम सर्ग में अयोध्या का चित्र (सर्ग ६) मिथिला के चित्र जैसा है। सर्ग ३ में दशरथ एवं उनकी पत्नियों की जल क्रीड़ा है। (सर्ग ७ में) सीता के पूर्वानुराग एव (सर्ग ८ में) राम-सीता के सभोग शृगार का वर्णन है। उद्दीपन की दृष्टि से (सर्ग ११ में) वर्षा ऋतु का एवं (सर्ग १२ में) पतझड़ का वर्णन है। युद्ध के पूर्व (सर्ग १६ में) राक्षसों के केलि का वर्णन है। तात्पर्य यह कि ऐसे प्रसगों पर ही कवि की मुख्य दृष्टि रही है। डा० सुनील कुमार डे का मत है कि इसपर रघुवश एव कुमारसभवका प्रभाव असदिग्ध है[2]।

इस प्रकार रामायण, रघुवश, रावण-वध और जानकी-हरण इन चार महाकाव्यों के अध्ययन से रामकथा के ग्रहण की दिशा स्पष्ट हो जाती है। अन्य महाकाव्य इन्हीं चारों की परम्परा में समाविष्ट किए जा सकते हैं।

१—दे० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हि०सा०का इतिहास, पृ०१४३-१५१ (सं० २००४)

२—डा० यम० एन० दासगुप्ता एण्ड यस० के० डे, वही० पृ० १८८।

नाटक :—नाटकों में रूप एवं उद्देश्य दोनों ही दृष्टियों से कथानक में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। स्मृतियों के प्रभाव से सामाजिक एवं साहित्यिक जीवन पहले से ही परंपराचरित हो चुका था। प्रेमके स्वच्छन्द प्रकाशन का पूर्णतः निषेध था यद्यपि परवर्ती नाटकों में इस विधान को स्पष्ट चुनौती दी गई है। एक प्रकार से सामान्य जीवन ही घटनाविहीन और अनाटकीय हो गया था।[1] एलिजाबेथन युग सा द्वन्द्व यहाँ कहाँ। जीवन के इस सरल प्रवाह एवं सुखमय दार्शनिक विचारधारा के कारण नाटकों को एक ऐसे निश्चित पथ से जाना पड़ता था जहाँ द्वन्द्व, सक्रियता, कौतूहल अथवा दुखान्त घटनाओं का पूर्णत अभाव रहता था। उपरोक्त विशेषताओं एवं साहित्य के रसवादी दृष्टिकोण के कारण भारतीय नाटक (संस्कृत) काव्य के ही अधिक निकट रहे, नाटक के कम। 'मुद्राराक्षस' और 'मृच्छकटिक' इस के अपवाद हैं। अतः आदर्शवाद तो प्रधान हो गया और तदनुकूल रसनिष्पत्ति भी संभव हो सकी—किन्तु 'कार्य' एवं 'चरित्र' का यथोचित विकास न हो सका।[2] साथ ही निश्चित परम्परा के अन्तर्गत नायक के चरित्र को आदर्शमय बनाने की प्रवृत्ति ने प्रतिनायक को उपेक्षित ही बना दिया। वह दुर्बल, दुर्गुणी आदि के अतिरिक्त कुछ भी न रह सका।

उपरोक्त जीवन-दृष्टि एवं रूप-विधानके अंतर्गत राम-कथाको भी आना पड़ा, अतः इसमें बहुतसे परिवर्तन हो गए।

यहाँ दो नाटकों 'प्रतिमा और 'अभिषेक' पर सामान्य रूपसे और 'महावीरचरित' पर विशेष रूपसे विचार करना राम-कथा के विकास की दृष्टि से अपेक्षित है।

प्रतिमा —इसमें सात अंक हैं। इसमें सम्पूर्ण रामायण की कथा बहुत-कुछ परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होकर आई है। समूचा ध्यान भरत और कैकेयी के चरित्र पर केन्द्रित है। यहाँ कैकेयी महर्षि के शाप से अपने पति की रक्षा और राम की जीवन सुरक्षा करने के लिये ही रामको वन भेजती है और परिणामस्वरूप कलंक

१—डा० यस० यन० दासगुप्ता एण्ड यस० के० डे

"The normal life had begun to be undemocratic and eventful Anything beyond the normal would have been resented as not contributing to good taste"—Introduction XXXVIII.

२—डा० यस० के० डे वही० पृ० ४७।

की टीका को मूक भाव से सहन करती है। हाँ ऐसा करने से पूर्व वह वशिष्ठ, वामदेव आदि से परामर्श कर लेती है। सीता-हरण का भी इसमें सर्वथा नया रूप प्रस्तुत किया गया है। इतना ही नहीं, कचन-मृग के पीछे दौड़ने वाले नायक की अबोधता को दूर करने के लिये एक नई कल्पना भी की गई है: दशरथ के वार्षिक श्राद्ध के एक दिन पूर्व राम और सीता परस्पर श्राद्धकी उत्तम विधि के विषय में विचार-विमर्श करते हैं। उस समय परिव्राजक के भेष में रावण उपस्थित होता है और काचनपार्श्वमृग के तर्पण से पितृ-गणों की प्रसन्नता की बात कहता है। ठीक इसी समय मारीच कचनमृग के रूप में प्रगट होता है। राम इस मृग के पीछे दौड़ पड़ते हैं। इसके पश्चात की घटनाएँ सामान्य हैं और अन्त राज्याभिषेक के साथ हो जाता है।

अभिषेकः—इसमें बालि-वध से लेकर राज्याभिषेक तक का वर्णन है। कथा में राम का विष्णुत्व मुखर है। ग्रन्थ का मूल उद्देश्य, प्राकारान्तर से, बालि और रावण का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण है। कथानक और पात्रों, दोनों ही में, प्रतिमा से कम नाटकीयता है।

रामायण की आधिकारिक कथावस्तु को अपेक्षाकृत कम महत्व मिलने के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में निम्नलिखित विशेषताएँ दर्शनीय हैं .

(१) विस्तृत वर्णन तथा सवाद जिससे कहीं-कहीं नाटक की गति मद हो गई है।

(२) आदर्शवाद का प्रभाव · यथा, महावीर चरित, अनर्घराघव तथा महानाटक में घटना का परिवर्तित रूप तथा प्रतिमानाटक, महावीर चरित, अनर्घराघव तथा बालरामायण में कैकेयी का दोषनिवारण।

(३) सुखान्त नाटकों का आदर्श: १० वीं शताब्दी से पूर्व के नाटकों में केवल दो में रामायण के उत्तर काड की सामग्री आई है—उत्तररामचरित और कुन्दमाला। दोनों को सुखान्त बनाने के लिए सीता के भूमि-प्रवेश की कथा बदल दी गई है। राम-कथा से संबध न रखने वाले 'उरुभग' आदि इसके अपवाद हैं।

(४) अद्भुत रस का प्रवेश: यथा, प्रसन्नराघव, अद्भुत दर्पण और आश्चर्य-चूड़ामणि।

(५) शृंगार की व्यापकता : यथा, बालरामायण में रावण का विरह-वर्णन, मैथिलीकल्याण, प्रसन्नराघव में राम-सीता के पूर्वानुराग का चित्रण तथा महानाटक में सीता-राम के अश्लील शृंगार का वर्णन।

(६) नायक के समान प्रतिनायक का अभाव : यथा, महावीर चरित। इसमें रावण से कहीं अधिक महत्वपूर्ण पात्र तो माल्यवन्त है।

(७) पात्रों का अन्य पात्रों का रूप धारण करना : यथा, महावीर चरित तथा अनर्घराघव में शूर्पणखा मन्थरा का रूप धारणकर लेती है। बालरामायण में मायामय, शूर्पणखा एवं एक परिचारिका, क्रमशः दशरथ, कैकेयी तथा मन्थरा का रूप धारण कर लेते हैं। आश्चर्यचूड़ामणि में रावण राम का, उसका सारथी लक्ष्मण का रूप ग्रहण करके सीताहरण करने में सफल होते हैं। शूर्पणखा सीता के रूप में राम के पास जाती है। महानाटक में रावण राम के वेश में अपना दसों शीश हाथ पर लिए सीता के पास जाता है।

यह तो नाटकों की सामान्य चर्चा हुई। अब यह देखना है कि समान कथानक के होते हुए भी उद्देश्य विशेष के अनुसार किस प्रकार समूचा ढाँचा परिवर्तित हो जाता है। इसकी परख के लिए भवभूति कृत महावीर चरित विशेष उपयोगी है।

महावीर चरित :—इस नाटक में सम्पूर्ण कथा राजनैतिक षड्यन्त्रों के चारों ओर फैली है। रावण के दूत की उपस्थिति में ही रावण के प्रस्ताव की अस्वीकृति और राम से सीता का विवाह ही द्वन्द्व का बीज है। माल्यवंत एवं शूर्पणखा विरोधी पक्ष के प्रमुख कूटनीतिज्ञ हैं। परशुराम, सुग्रीव, बालि, विराध, खर-दूषण आदि इन के सहायक और मित्र हैं जिनका उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है। मिथिला में ही रामादि को नष्ट करने की दृष्टि से परशुराम भेजे जाते हैं। जब असफल हो जाते हैं तब शूर्पणखा स्वय मंथरा का रूप ग्रहण करके जनकपुर से ही राम, लक्ष्मण एव सीता को वनवास दिलाने में सफल हो जाती है। वनमें रावण के अन्य मित्र-राष्ट्र राम को समाप्त प्राय करने की धुन में रहते हैं। उनके असफल होने पर अततः सीता का हरण किया जाता है। राम के मित्र राज्य (गृद्ध) द्वारा सीता की रक्षा का प्रयत्न होता है और राम को एतद्विषयक सूचना भी मिलती है। राम के यहाँ सुग्रीव का मैत्री-पत्र लेकर आनेवाली शबरी का रावण के मित्र विराध

द्वारा हरण होता है, पर राम की सतर्कता से विराध मारा जाता है और सुग्रं
से मैत्री सबंध स्थापित हो जाता है। रावण के मित्र राज्य बालि द्वारा राम
युद्ध की चुनौती दी जाती है। अंत में रावण के समस्त मित्र राज्यों को सम
करके राम रावण-वध में सफल हो जाते हैं। इस प्रकार कथानक का रूप
बदल गया है।

कथानक के परिवर्तन के साथ साथ चरित्रों में भी पर्याप्त हेर-फेर हुआ है
माल्यवान, शूर्पणखा आदि का चरित्र तो नए कलेवर में ढल गया है। चरित्रों
कलंक को प्रक्षालित करने के लिए बालि-वध एव राम वनवास का रूप भी बद
गया है। नायक राम के चरित्र पर अधिक आदर्शवादी मुलम्मा चढाया गया है
वीर पुरुष होने के नाते वे रावण एव परशुराम तक की प्रशंसा करते हैं, ताड़
(स्त्री) पर अस्त्र उठाना अनुचित समझते हैं तथा परशुराम के भीषण क्रोध
रचमात्र भी भयभीत नहीं होते हैं। वे आद्यत वीर, धीर, उदार और यो
आश्रयदाता हैं, किन्तु प्रतिनायक इसी अनुपातमें अयोग्य भी है। षष्ट अ
माल्यवान की चिंता का मुख्य कारण रावण की अयोग्यता भी है। वस्तुत इ
रावण राम का सफल प्रतिद्वन्दी ही नहीं है।

रंगमंचीय दृष्टि से अधिकाश सवाद, सम्पाति जटायु, मातलि-वासव त
लंका-अलका आदि के संवाद, सूच्य है। कहीं कहीं सवाद बहुत बड़े हैं, र
परशुरामका संवाद।

कार्य और चरित्र दोनों ही अशक्त हैं। कथानक बड़े ही सीधे ढ
विकसित होकर सुखान्त हो गया है।

इस प्रकार राम-कथा के व्यापक प्रसार के साथ-साथ ग्रन्थों के रूप
उद्देश्य के अनुसार कथानक में भी परिवर्तन एव परिवर्द्धन अवश्यम्भावी रहा।
दशरथ-जातक, अनामक जातकम् तथा दशरथ कथानम् आदि, जैन पउमचरि
तथा उत्तरपुराण आदि और हिन्दू पुराण, महाकाव्य, नाटक आदि में र
कथा व्यापक रूप मे स्वीकृत हुई है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी इसकी ल
प्रियता अद्वितीय रही। आधुनिक भारतीय भाषाओं में—कवनकृत तमिल रामाय
तेलगू द्विपाद रामायण, मलयालम रामचरितम्, बगाली कृतिवासीय रामाय
उड़िया बलरामदास रामायण तथा मराठी भावार्थ रामायण में, समान ल

राम कथा गृहीत है। यही नहीं विदेशोंमें भी राम-कथा का पर्याप्त समादर हुआ है। तिब्बत का खेतानी रामायण, जावा का काकविन रा०, सेरतकाड आदि, कम्बोडियाका रेआमकेर, मलाया का सेरीराम, स्यामका राम कियन आदि इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं।[1] परन्तु इन समस्त राम-कथाओं का मूल एक ही 'रामायण' रहा है। इस रामायण'की प्राचीनता के संबंध में विद्वानोंमें मतभेद है और डा० वेबर 'दशरथ-जातकको' ही यह स्थान देते हैं। डा० वेबर का तर्क कट चुका है और आज अधिकांश विद्वान् 'रामायण' को ही इसका मूलस्रोत मानते हैं जो आरम्भ में आदि रामायण के रूप में लवकुश आदि काव्योपजीवी लोगों की मुख-परम्परा में जीवित था। इस 'आदिरामायण' की मूल कथा का विकास भी सम्भवतः एक ही स्थल से सम्भव हुआ है यद्यपि डा० वेबर, डा० याकोबी आदि विद्वान् इस कथा के दो पृथक् पृथक् भाग निर्देशित करते हैं और डा० दिनेशचन्द्र सेन तो इसके तीन भाग मानकर तीन भिन्न-भिन्न विकास-सूत्रों की कल्पना करते हैं। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक वीर आख्यानों की भांति रामाख्यान का भी इक्ष्वाकु वंश से ऐतिहासिक घटना के आधारपर आरंभ हुआ होगा और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़कर इसमें परिवर्तन भी होता रहा होगा। यदि ग्रन्थ में अन्तर्निहित प्रवृत्तियों एवं तद्जनित परिवर्तनोंको कुछ क्षणके लिए पृथक कर दिया जाय तो देश और विदेश, जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म, पुराण, महाकाव्य और नाटक आदि सब में एक झलक, एक रूप और एक ही कथा उपलब्ध होती है जिसपर 'रामायणकी' छाप स्पष्ट और असंदिग्ध है।

अपने कथन के समर्थन के लिए यहाँ अतिसंक्षेप में भारत में—विशेष कर उत्तर-भारत में—विकसित राम-कथा में किए गए परिवर्तनों एवं उनकी प्रवृत्तियों को देखना आवश्यक है। वस्तुत मूल वाल्मीकीय 'रामायण' की आधिकारिक कथा-वस्तु में[2] नगण्य परिवर्तन हुआ है। कनक-मृग की कथा, लङ्कादहन, अग्निपरीक्षा की पद्धतियों में थोड़ा व्यतिरेक अवश्य आ गया है और बाद में धार्मिक भावना के प्राबल्य के कारण सीता का हरण न होकर माया की सीता का हरण ही ग्राह्य

१—दे० बुल्के, राम-कथा पृ० २२८-२४०।

२—मूल रामायण में अयोध्याकांड से युद्ध-कांड तक का ही वर्णन रहा होगा। रामायण का अर्थ भी यही है।

हुआ है किन्तु मूल-कथा अथवा आधिकारिक कथा-वस्तु में इससे अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। मूलकथा से भिन्न बालकाड एवं उत्तरकाड की सामग्री में पर्याप्त विकास हुआ है। स्वय वाल्मीकि रामायण के तीनों पाठों में भी यह एकता नहीं रह पाई है।

मूल आधिकारिक कथा-वस्तु में परिवर्तन का कारण संभवतः अद्भुतरस की प्रधानता, अलौकिक घटनाओंका बाहुल्य और कृत्रिमता से अत्यन्त अनुराग ही है। कनक मृग का वृत्तान्त, हनुमान का लकादेवी से युद्ध, लकादहन, सीता की अग्नि परीक्षा, राम-जन्म के अवसर पर अलौकिक घटनाएँ, लक्ष्मण का बारह वर्ष तक उपवास एवं जागरण, रावण के मर्मस्थान की कल्पना, विविध पात्रों द्वारा अन्य पात्रोंका रूप ग्रहणकर लेना आदि, विभिन्न कालों में अकुरित विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतिफल हैं।

कथा-वस्तु की विभिन्न घटनाओं का कारणनिर्देश करने का प्रयत्न भी कथा-विकास का मुख्य साधन रहा है। जैसे, कैकेयी-देवासुर सग्राम में दशरथ को बचाने में समर्थ हुई थी, इसका कारण समझाने के लिए एक कथा की कल्पना कर ली गई है। कारण-निर्देश की यह प्रवृत्ति निम्नलिखित सामग्रियों में स्पष्ट है—पात्रों के पूर्व जन्म की कथाएँ, वरदानों तथा शापों के विषय मे विविध वृत्तान्त, और पात्रों के नामों पर आधारित जन्म कथाएँ। यथा, सीता के कारण रावण-वध की घटना को लेकर जैन ग्रन्थ 'उत्तर पुराण' में मणिमती तथा अन्यत्र वेदवती की कथा गढ़ ली गई है। वेदवतीकी पूर्व जन्म की कथा में भी पर्याप्त अन्तर है—रामायण के उत्तरकाड में इसका दूसरा रूप है तो श्रीमद्देवी-भागवत पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में दूसरा; 'पउम चरिउ' एव उड़िया 'विचित्र रामायण' में तो इसका विचित्र रूप गढ़ उठा है। ठीक इसी प्रकार राम के अवतारका कारण समझाने के लिए विविध वरदानों एव शापों की कल्पना होती गई है। सीता त्याग का भी कारण भृगु-शाप, शुकी-शाप आदि को मान लिया गया है।

पात्रों के नामों के आधारपर भी नवीन वृत्तान्त निर्मित हो गये हैं। इस प्रकार कथा नाम का कारण न होकर नामही कथा का कारण हो गया है: यथा

सीता शब्द का अर्थ है लागलपद्धति। भूमिजा सीता की कथा इसी पर आधारित प्रतीत होती है। फिर, 'सीताफल' के आधार पर सीता की उत्पत्ति फल से कल्पित की गई जिसमें दक्षिण भारत के एक वृत्तान्त के अनुसार लक्ष्मी 'सीताफल' से प्रकट होती है और अंतमें रावण के अत्याचार से राख होकर पुनः सीता के रूप में उत्पन्न होती है। अवतारवाद की भावनानुसार सीता लक्ष्मी के रूप में अवतरित मानी गई है। चूं कि लक्ष्मी पद्मा हैं अतः 'पद्मजा सीता' की कथा बन गई। इसी प्रकार 'रावणात्मजा,' 'दशरथात्मजा' आदि अनेक आख्यानों की भी कल्पनाकी गई है। यह प्रवृत्ति प्राय सभी पात्रों के विषयमें व्यवहृत होती रही है। रावण, राम, कुशीलव, वायु-पुत्र आदिसे संबंधित कई आख्यान नामपर भी आधारित हैं।

अवतारवाद की भावना के कारण भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। वासुदेव कृष्ण एव विष्णु में एकात्मक संबंध स्थापित हो जाने के पश्चात् अवतारवाद को विशेष प्रोत्साहन मिला। राम-कथा के नायक राम ने भी अपनी चारित्रिक विशेषताओं एव राम-कथा के व्यापक प्रसार के कारण अवतारों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। विभिन्न सम्प्रदायों एवं धर्मों में इस चरित्र को नवीन पीठिका पर प्रस्तुत किया गया। यही नहीं, कथानक में भी पर्याप्त सुधार हुआ। जैनियों में सर्वप्रथम स्वयंवर में ही धनुर्भंग, कुश लव का राम-सेना से युद्ध एवं सीता-त्याग के वृत्तान्त में सीता के पास रावण के चित्र तक का उल्लेख किया गया। शैवोंने राम को शिव का कृपाकांक्षी सिद्ध करने के लिए स्थल-स्थल पर शिव-वरदान, शिव-पूजा, शिव लिंग-स्थापना कराई है और हनुमान के रूप में शिव को अवतरित तक कर दिया है। ऐसा ही प्रयत्न शाक्तों का भी है—यहाँ तक कि राम, शक्ति को प्रसन्न करने के लिए एक कमल-दल के स्थान पर अपनी आँख (राजीवनयन) तक समर्पित करने को उद्यत हो जाते हैं।[1] इसके लिए सीता के रूप में शक्ति का जन्म, सीता द्वारा सहस्र स्कध रावण-वध आदि प्रसग भी विनिर्मित हो गए। इसी प्रकार का प्रयत्न अन्य सम्प्रदायों द्वारा भी हुआ है।

राम-कथा पर अवतारवाद का जितना प्रभाव नहीं पड़ सका था उससे कई गुना अधिक प्रभाव राम-भक्ति-भावना का पड़ा। भक्तों के ससार में रावण सीता का

१. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—अपरा, 'रामकी शक्ति-पूजा'।

हरण इसलिये नहीं करता है कि वह व्यभिचारी और कामुक है वरन् इसलिये करता है कि भगवान राम के बाणों से प्राण-त्याग करके उसे वैकुंठ पाना है। अपहरण भी सीता का न होकर माया की सीता का होता है। राम का अवतार एवं वनगमन भक्तों के ही लिए होता है और अरण्यकांड की योजना इसलिए आवश्यक हो जाती है कि भगवान को भक्तों का अनुरंजन करना है। 'अध्यात्म-रामायण' 'रामचरितमानस' सदृश ग्रन्थों में कथा का समूचा वातावरण ही बदल गया है।

कृष्ण-साहित्य के प्रचार के साथ-साथ राम-कथा में भी शृंगारिकता का प्राचुर्य हो गया। सेतुबंध तथा भट्टिकाव्य में युद्ध के पूर्व राक्षसों की केलि का विस्तृत अश्लील वर्णन राम और सीता को भी लेकर चल पड़ा। जानकी-हरण, महानाटक आदि में तो अश्लीलता चरम सीमा पर पहुँच गई है। अन्य भक्तों ने सीता के पूर्वानुराग में ही संतोष किया—यथा जानकीहरण, कम्बन रामायण, प्रसन्न राघव, रामचरित मानस आदि।

उद्देश्य के अतिरिक्त रूप की दृष्टि से भी परिवर्तन हुआ है, जिसका यथास्थान उल्लेख किया गया है। यहाँ मात्र इतना ही कहना है कि जहाँ पुराणों में कथा के भीतर कथा और उसके भी भीतर उपकथा जोड़ने की पर्याप्त सुविधा रही है वहाँ महाकाव्यों में सम्बद्ध कथानक के अंतर्गत भावात्मक स्थलों एवं परिस्थितियों की सर्जना और नाटकों में रंगमंचीय-विधानों का आग्रह अधिक तीव्र रहा है। अतः उद्देश्य-प्रतिपादन में रूप-पक्ष की भी यथेष्ट महत्ता स्वीकृत रही है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर निश्चित हो जाता है कि राम-कथा में उद्देश्य एवं रूप के अनुसार सदैव परिवर्तन होता रहा है। पूर्ण समानता के होते हुए भी उद्देश्य एवं रूप के सबल आग्रह से कथा का समूचा वातावरण ही परिवर्तित हो गया है। रामायण, अध्यात्म रामायण और महावीर-चरित एक होते हुए भी तीन हैं। अतः रामचरितमानस के कथा-शिल्प पर विचार करने से पूर्व रूप एवं उद्देश्य की जानकारी आवश्यक है। तत्पश्चात् विशिष्ट रूप एवं उद्देश्य की सीमा के अन्तर्गत चरित्र, कथानक और भाव की सुनिश्चित योजना ही कथा-शिल्प की महती सफलता कही जा सकती है।

———

मानस की राम-कथा का

२ वैशिष्ट्य

मानस की संक्षिप्त कथा :—

मानस की कथा दाशरथि राम की नहीं अपितु "यन्माया वशवर्ति विश्वमखिल ब्रह्मादिदेवासुरा···रामाख्यमीशं हरिम्" की कथा है। अत मानस की राम-कथा के सम्पूर्ण स्वरूप को उपस्थित करने के लिए उपयोगी यह है कि इसे सुविधानुसार तीन भागों में विभाजित कर दिया जाय। प्रथम है कथा का उपक्रम, द्वितीय है कथा का मूल भाग अथवा मूल कथा और तृतीय है उपसंहार।

उपक्रम

प्रारम्भिक स्तुति, माहात्म्य-वर्णन आदि के पश्चात् मूल-कथा का प्रस्तावना भाग आता है। यह इस प्रकार है—एक वार, मकर स्नान के पश्चात् भरद्वाज मुनि ने परमज्ञानी याज्ञवल्क्य से अत्यन्त विनीत जिज्ञासु

अयोध्याकांड'—'राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु'—अवध म
नित्य मगल होता रहा। एक दिन राजा दशरथ ने वृद्धावस्था सूचक अपने श्वे
बालों को देखकर, गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से राम के राज्याभिषेक का आयोज
किया। यह देखकर देवताओं को अपने कार्य की सम्पन्नता में सदेह होने लगा
अतः उन्होंने सरस्वती की सहायता से प्रथमत. मथरा की ओर तत्पश्चात् कैकेय
की मति को भ्रमित कर दिया। फलस्वरूप देवी दुष्प्रेरणा से परिचालित कैकयी
चाहते हुए भी मथरा की कुमन्त्रणा से अपने दो वरदानों के अनुसार राम
चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए राज्याधिकार मांग लिया। प्रेमविह्व
पुरजनों और परिजनों को छोड़कर राम, सीता और लक्ष्मण सहित वन चले गए
सुमत्र द्वारा उन्हें लौटाने का प्रयत्न विफल रहा।

स्वभक्तकल्पपादपं—गुहराज की भाव-भक्ति के अनुसार राम ने शृ गवेरपुर
विश्राम किया। दूसरे दिन भगवान राम ने भक्त गुहराज की पद-प्रक्षालन व
कामना पूरी की और उसे साथ लेकर भरद्वाज के यहाँ पहुँचे। भरद्वाज द्वा
समादरित होकर राम आगे बढे। मार्ग में तटवासियों को तृप्त करते हुए वाल्मीकि
आश्रम की ओर अग्रसर हुए। यमुना-तटपर एक परमभक्त तापस को राम ने सत्
किया और यहीं से गुहराज को लौटा दिया। आश्रम पर महर्षि वाल्मीकि ने नान
प्रकार से राम की स्तुति की और प्रभु द्वारा निवास-स्थान पूछने पर इस के लिए भ
हृदय को उपयुक्त स्थान बताते हुए महर्षि ने उनसे चित्रकूट में रहने की विनती की
राम के वहाँ पहुँचने पर देवताओं ने ब्रह्मा के साथ, कौल-किरातों के वेष में ए
सुन्दर तृणशाला निर्मित की। देव, नाग, किन्नर और दिक्पाल आकर स्तु
करने लगे। मुनियों ने भी दर्शन किया। रामागमन से चित्रकूट की वनस्थली
आमूल परिवर्तन हो गया—चारों ओर हर्ष और उल्लास का साम्राज्य छा गया

इधर सुमत्र द्वारा राम के न लौटने का निश्चय सुनकर राजा दशरथ ने शरी
त्याग दिया। ननिहाल मे भरत बुलाए गए। समूचे समाचार से अवगत होक
वे शोक विह्वल हो गए। उन्होंने नाना प्रकार से अपनी और अपनी माता क
भर्त्सना की। लोगों द्वारा समझाने-बुझाने पर भी उन्हें प्रबोध न हुआ औ
सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंके साथ, रामको लौटा लाने के ध्येयसे उन्होंने चित्रकूट
लिए प्रस्थान किया। मार्ग में प्रथमतः शकित किन्तु बाद में आश्वस्थ-गुहराज

साथ भरद्वाज एवं वाल्मीकि के आश्रम से होते हुए भरत दीनहीन रूप में चित्रकूट स्थित भगवान राम के चरणों में गिर पड़े। भगवान ने गले लगा लिया। इसी बीच राजा जनक भी सदलबल आ गए। राम को लौटाने के लिए प्रस्ताव होता रहा, किन्तु धर्म-सङ्कट के कारण किसी ने स्पष्ट निर्णय नहीं किया। अन्ततः राम की आज्ञा से भरत उनकी चरण-पादुका लेकर अयोध्या लौट आए और नन्दि-ग्राम में रखकर तपस्वी-सा जीवन व्यतीत करने लगे।

अरण्यकाण्ड :-"चरित अतिपावन, करत जे वन सुरनर मुनि भावन"-एक बार सुरपति-पुत्र ने वायस-भेष में सीता के चरणों पर चञ्चु-प्रहार करके राम के बल का अनुमान करना चाहा। राम ने सींक बाण मारा और सम्पूर्ण त्रिलोक में उससे परित्राण न पाकर उसने उन्हीं प्रभु से शरण-याचना की। राम ने उसकी एक आँख फोड़कर उसे क्षमादान दे दिया। राम चित्रकूट को छोड़कर आगे बढ़े। मार्ग में उन्होंने अत्रि-अनुसूया, शरभंग,सुतीक्ष्ण,'अगस्त्य आदि मुनियों की भाव-भगति के अनुसार उन्हें भक्ति का वरदान दिया। बीच-ही में विराध को मुक्त किया और मुनियों के अस्थि समूह को देखकर राक्षसों के नाश का संकल्प किया। तत्पश्चात् गृद्धराज से भेंट हुई और राम अगस्त्य मुनि द्वारा प्रस्तावित स्थान पंचवटी में रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा की स्वैरचारिता से तंग आकर लक्ष्मण ने उसकी नाक-कान काट ली। प्रतिशोधार्थ उपस्थित खर-दूषण भी युद्ध में मारे गए।

"ललित नर-लीला" ...खरदूषण-वध के समाचार से स्तम्भित रावण को राम के स्वरूप पर शंका हो गई। परीक्षणार्थ मारीच को कनकमृग के रूप में लेकर वह राम के सम्मुख उपस्थित हुआ। इधर राम ने लक्ष्मण की अनुपस्थिति में लीला-हेतु वास्तविक सीता को अग्नि में रखकर माया सीता का निर्माण कर लिया। इसी सीता के आग्रह पर प्रथमतः राम को मृग के वध के लिए औरत त्पश्चात् लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए जाना पड़ा। इधर रावण ने इस सीता का हरण कर लिया। सीता की रक्षार्थ गृद्धराज रावण से युद्ध करता हुआ। मरणासन्न हो गया। रावण सीता को लेकर भगा। सीता ने पर्वत पर बैठे बन्दरों को देखकर अपना वस्त्राभूषण गिरा दिया। रावण ने सीता को अशोकवाटिका में रख दिया। सीता को न पाकर राम नाना प्रकार से विलाप करने लगे।

गृद्धराज से समाचार पाकर राम ने उसे मुक्त किया और शबरी के परामर्शानुसार सुग्रीव से मैत्री-संबध स्थापित करने के लिए आगे बढे।

किष्किन्धाकांडः-लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वत तक पहुँचे। उन्हें अत्यन्त बलशाली देखकर भयभीत सुग्रीव ने विप्र वेष में हनुमान को उनका भेद लेने के लिए भेजा। आरभ में हनुमान रामचन्द्रजी को नहीं पहिचान पाए; परन्तु नाम सुनते ही वे चरणपर गिरकर नाना प्रकार से स्तुति करने लगे। हनुमान की भक्ति देखकर राम ने उन्हें कठ से लगा लिया और उन्हें लक्ष्मण से भी दूना प्रिय बताया। तत्पश्चात् सभी सुग्रीव के यहाँ गए। सुग्रीव ने प्रभु से अपनी विपत्ति सुनाई और राम ने दुन्दुभि अस्थि समूह एव ताल के वृक्षको ढहाकर कपीश के हृदयमें बालि-बधका निश्चय दृढ किया। सुग्रीव ने भगवान के वास्तविक स्वरूप से अवगत होकर मात्र भक्ति में ही आप्लावित रहने की कामना की, परन्तु राम के प्रबोधपर उन्होंने बालि को युद्धार्थ ललकारा। राम ने ओट से बालि का किया और उसे मुक्ति दी। राज्य-प्राप्ति के पश्चात् सुग्रीव विषय भोग में फँसकर राम के कार्य को भूल गया। शरद् ऋतु में राम ने क्रुद्ध होकर दडार्थ लक्ष्मण को भेजा। भयभीत सुग्रीव ने राम से क्षमा-याचना की और वानर दल को महीने के भीतर ही समाचार लेकर आनेकी आज्ञा दी। रामने हनुमान को सीता की प्रतीति के लिए मुद्रिका दी। बीच में नारी (स्वयप्रभा) एवं सम्पाती से कुछ न कुछ समाचार-सूत्र प्राप्त करते हुए अन्य कपियों की प्रेरणा से हनुमान लका को प्रस्थान कर दिए।

सुन्दरकांडः-समुद्र ने राम-दूत के श्रमपरिहारार्थ मैनाक पर्वत को भेजा। देवताओं ने दूत की परीक्षा के लिए नाग-माता सुरसा को भेजा। परीक्षा में सफल होकर हनुमान आगे बढ़े। बीच में उन्होंने आकाशचारिणी निशाचरी एव लकिनी की हत्या करके उन्हें मुक्ति दी। लका के भीतर रामभक्त विभीषण से हनुमान की भेंट हुई। विभीषण की युक्तियों से हनुमान ने रावण द्वारा प्रताड़ित सीता का दर्शन किया। फल खाते समय हनुमान ने अन्यान्य राक्षसों के साथ अक्षयकुमार का बध किया परन्तु इन्द्रजीत के नाग-पाश मे आबद्ध होकर रावण के दरबार में उपस्थित हुए। हनुमान ने रावण को बहुविधि समझाया और राम भक्ति का उपदेश भी दिया। इसपर उसने इनकी पूँछ में आग लगवा दी। फलत हनुमान ने

विभीषण के घर को छोड़कर समस्त लंका को जला दिया और समुद्र तट पर खड़े अपने अन्य सहयोगियों के साथ लौटकर सब समाचार राम को सुनाया। समस्त वानरी सेना के साथ राम सिन्धु तटपर उपस्थित हुए। उधर माल्यवान एवं विभीषण ने रावण को राम की शरण में जाने के लिए अनेक प्रकार से समझाया पर उस अभिमानी ने विभीषण के अत्यन्त आग्रह को देखकर उन पर पद-प्रहार किया। निराश विभीषण लंका से निकल कर राम की शरण में आ गए। शुक आदि ने भी विभीषण का अनुकरण किया। इधर विभीषण की मंत्रणा से राम ने समुद्र की उपासना आरंभ की, पर तीन दिनतक कोई उत्तर न प्राप्त करने के कारण वे क्रुद्ध हो गए और उसे सुखा डालने के लिए बाण लेकर कटिबद्ध हो गए। समुद्र ने प्रकट होकर राम की स्तुति की और नलनील के हाथ से जलपर फेंके गए पत्थरों द्वारा सेतु-निर्माण की युक्ति बताई।

लंकाकांड:—सेतु के निर्मित हो जानेपर सेना उस पार जाने लगी। जब राम तथा लक्ष्मण भी सेतुपर चढ़े तब पारस्परिक वैर-भाव को विस्मृत करके समस्त जलचर राम के दर्शन के लिये जल के ऊपर आ गए। सेना पार उतर गई और लंका में पड़ाव पड़ा। अंगद को रावणके पास संधि के लिए भेजा गया, पर उसने एक भी बात न मानी। अंतमें दरबार में अपना प्रभाव प्रदर्शित करके अंगद लौट आए और युद्ध की तैयारी प्रारंभ हो गई। उधर रावण की पत्नी मन्दोदरी एवं पुत्र प्रहस्त ने नाना प्रकार से उसे समझाया और राम जैसे भक्तवत्सल प्रभु की शरण में जाने से ही निस्तार बताया, पर रावण ने किसी की न सुनी। युद्ध छिड़ गया। प्रथम दिन राक्षसों की महती हानि देखकर दूसरे दिन मेघनाद ने युद्ध में प्रचंड शौर्य प्रदर्शित किया और शक्ति-बाण द्वारा लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया। चारो ओर चिग्घार मच गया। अंत में सुखेनवैद्य द्वारा निर्देशित संजीवनी बूटी के प्रभाव से लक्ष्मण स्वस्थ हो गए। इसी प्रकार एक दिन वरदानों की रक्षा करने के निमित्त राम को नागपाश में भी बँधना पड़ा जिसे इन्द्र की आज्ञा से गरुड़ ने काट दिया। रावण-कुल का संहार करते हुए अंत में देवतादि को अत्यंत विकल देखकर राम ने रावण का भी वध कर दिया और उसका तेज राम के मुख में समा गया। ब्रह्मांड में हर्ष छा गया। विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। सीता की अग्नि-परीक्षा हुई और इसी व्याज से माया सीता के स्थान पर पुनः

वास्तविक सीता को अग्नि ने शरीर धारण करके राम को समर्पित किया। चारों ओर पुष्पवर्षा होने लगी। इसके पश्चात् देवगण, ब्रह्मा, इन्द्र और शिव ने एक-एक करके राम की स्तुति की। द्वैतभक्ति के कारण मोक्ष न पानेवाले दशरथ भी आये और दर्शन करने के उपरान्त पुनः सुरलोक चले गए। राम ने विभीषण का राज्याभिषेक किया और उसे अपनी भक्ति प्रदान की। फिर सभी लोग पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या चले। मार्ग में राम ने अपने भक्तों को नाना प्रकार से दर्शन देकर सतुष्ट किया।

उत्तरकाण्ड —राम अयोध्या आए और बड़े धूम-धामसे उनका राज्याभिषेक हुआ। इस अवसर पर वेद ने स्वय स्तुति की। शिव ने भी भगवान रामसे भक्ति की याचना की। राम के राज्य में सर्वत्र नीति-धर्म और आनन्द का ही वास रहा। विभीषण, निषाद, अगद, सुग्रीवादि को राम ने अपनी भक्ति देकर विदा किया। हनुमान कुछ समयके लिए साथ रह गए। सीता के लवकुश दो पुत्र उत्पन्न हुए और अन्य भाइयों के भी दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए। नारद सनकादि नित्य अयोध्या आकर दर्शन करने लगे। रामने एक वार भरतादिक भाइयों के सम्मुख और एक वार पुर-परिजनों के सम्मुख राम-गीता सुनाई और भक्ति-पथ को सबसे सरल और सर्वश्रेष्ठ बताया। गुरु वसिष्ठ ने राम की स्तुति करके उनकी भक्ति प्राप्त की। इसी प्रकार सनकादि एव नारद ने भी प्राप्त किया।

उपसंहार

महादेव जी द्वारा इस प्रकार राम की कथा और उसका माहात्म्य सुनकर पार्वती को अत्यन्त हर्ष हुआ। परन्तु इस काकभुशुण्डि एव गरुड़-सवाद पर उन्हें आश्चर्य हुआ कि ज्ञानी, वैराग्यवान, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन पुरुषों में कोई-कोई ही ऐसा होता है जो पूर्ण रूपेण रामभक्त होता है, फिर इस भक्ति को काग ने किस प्रकार प्राप्त किया। उन्होंने शिव से एतदर्थ काक शरीर की प्राप्ति, उसकी भक्ति-प्राप्ति, गरुड़ जैसे ज्ञानी द्वारा इसे सुनने का कारण और साथ ही स्वयं शिव द्वारा भी यह सवाद किस प्रकार सुना गया, इसे भी पूछा। शिवने एक-एक करके नाग-पाश में बँधे राम को देखकर गरुड़ का मोह, शमनार्थ काक

से कथा-श्रवण, गरुड़ के सम्मुख काक के कथनानुसार उनके शूद्र-जन्म, गुरु के अपमान तथा शंकर के शाप और गुरु की कृपा से शापोन्मोचन, उसके विप्र के गृह पुनःजन्म तथा भक्ति, लोमस से निर्गुण एवं सगुण ब्रह्मपर विवाद तथा उनके शाप से काग शरीर की प्राप्ति, उन्हीं द्वारा प्रसन्न होनेपर भक्ति के वरदान, अयोध्या में बालक राम की लीला देखते समय उनकी माया से त्रस्त काक का उनके मुख में प्रवेश और इस प्रकार अत्यन्त भयभीत होने पर अविरल भक्ति के वरदान की प्राप्तिका आख्यान पार्वती को सुनाया। इसी के मध्य में गरुड़ के आग्रह के अनुसार काकभुशुण्डी के मुख से निर्गुण-सगुण, ज्ञान-भक्ति एवं संत-असंत की महिमा भी गाई गई है। फिर ज्ञानदीप के प्राप्ति की कठिनाई एवं भक्ति-चिंतामणि की सुलभता का वर्णन करके भक्तिपथ का मंडन किया गया है। अंत में गरुड़ के सात प्रश्नों का उत्तर देते हुए काकभुशुण्ड ने अपना उपदेश समाप्त कर दिया है। नाना प्रकार की शिक्षाओं एवं रामभक्ति विषयक उपदेशों के साथ मानस कथा की समाप्ति हो गई है।

दायिनी एव सर्वोपरि हो। जिस सम्प्रदाय में इन दोनों का जितना ही उत्कृष्टतम स्वरूप कल्पित होगा, वह सम्प्रदाय एव वह देव उतना ही बहुपूज्य होगा। कहना तो यह चाहिए कि प्रथम उपादान की सफलता ही उस देव एव उस सम्प्रदाय की सफल्ता का लान दड है। भक्ति तो आलम्बन सापेक्ष ही है। वैदिक युगसे पौराणिक युग तक देपताओं के उत्कर्ष-अपकर्ष का इतिहास हमारे कथन का साक्षी है। वैदिक युग के सर्वाधिक पूज्य इन्द्र, चरित्र-हीनता अथवा यों कहें कि आलम्बनत्व-हीनता के परिणामस्वरूव पौराणिक युग तक कपटी, लपट, जार आदि के रूप में ही अवशिष्ट रह सके और उनका स्थान वैदिक युग के गौण देव विष्णु ने ग्रहण कर लिया।यह इनकी आलम्बनत्व-पूर्णता का ही प्रमाण है। यही नहीं 'ऋगवेद' के 'रूद्र', 'यजुर्वेद' में 'ईशान', 'महादेव' और 'त्रिपुरारि' में परिणत होकर 'महाभारत' युग तक शिवत्व के आवरण में ढलकर पूर्णत 'शिव' बन गए, तभी विष्णु के समकक्ष टिके रह सके। इसी प्रकार अन्य देवताओं का इतिहास भी देखा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी इस तथ्य से पूर्णतः अवगत थे और इन्हीं दोनो उपादानों की पूर्णता-परिपूर्णता में उनकी भक्ति-प्रतिभा का समुचित प्रदर्शन द्रष्टव्य है। अतः पहले इन्हीं दोनों दृष्टियों से विचार किया जायगा। (१) आलम्बनत्व और (२) भक्ति-महात्म्य-प्रतिपादन।

गोस्वामी तुलसीदास के राम स्वय अनादि अनन्त ब्रह्म हैं। मानस ग्रन्थ की प्रथम वदनामें ही गोस्वामी जी ने लिख दिया है कि—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्वादमृपैव भाति सकल रज्जौ यथाहेर्भ्रम।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावत
वन्देऽह तमशेषकारणपर रामाख्यमीश हरिम् ॥६॥

यहां तुलसीदास के ब्रह्म राम शक्ति एव सामर्थ्य में शाकर मत के ब्रह्मसे कम नहीं हैं, तभी प०गिरिधर शर्मा जैसे अनेक पडितों ने इन्हें शकरमतावलम्बी भी घोषित किया है[1]। द्वैतवाद का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक

१—(क) तुलसी ग्रन्थावली, तृतीय खड, पृ० १२७।
(ख) कल्याण, जुलाई १९३७ ई०—गोस्वामी श्री तुलसीदास के दार्शनिक तत्व—प० विजयानन्द त्रिपाठी।

नवोद्भावित सम्प्रदाय ने अपने इष्टदेवको सर्वोपर कल्पित करने के लिए अन्य सभी देवों को उनके अधीन रक्खा है। यही नहीं, इन देवों के अभिन्न अंगों, प्रसाधनों आदि विषयक भावनामें अन्तर्निहित रहस्य का इतिहास भी मनोरञ्जक शोध का विषय है। यथा विष्णु से लक्ष्मी, पद्म, शेषनाग आदि का संबंध उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। गोस्वामीजीने भी आधार-ग्रन्थों के अनुगमनपर यही पद्धति अपनाई है। मानस में समस्त देवगण तथा विधि, हरि और शम्भु राम के अधीन दिखलाए गए हैं। साथ ही वैष्णव, शैव, सौर एवं गाणपत्य सम्प्रदायों से राम का आराधक एवं आराध्य का संबंध स्थापित किया गया है। यहाँ इस पर विस्तृत विचार ठीक नहीं है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं अन्य देवताओं द्वारा परब्रह्म राम की अनादि और अनत सत्ता के भावन मात्र से, 'अवधि नृपति सुत' राम को भी यथावत् ब्रह्म रूपमें स्वीकार कर लेना आसान नहीं था और जब तक दाशरथि राम का उस परब्रह्म राम से अभिन्न संबंध न स्थापित हो जाता तबतक आधार-आधेय संबंधपर कल्पित सगुण-भक्तिका प्रतिपादन एव प्रचार भी असंभव था। गोस्वामीजी ने समूचे ग्रन्थ में भक्ति-मार्ग के इस व्यवधान को हटाने एवं तदनुकूल नर-रूप राम को ही ब्रह्म राम के साथ अभेद रूप सिद्ध करने का अथक प्रयास किया है। सगुण धारामें सबसे अधिक दुर्बोध्य विषय था आलम्बन, तथा ब्रह्म रूप में उसका भावन। 'मानस' ग्रन्थकी रचना ही इसी प्रकार की शंका एवं उसके समाधान के रूप में हुई है। ग्रन्थ के प्रमुख तीनों ही श्रोताओं अथवा प्रश्नकर्ताओं द्वारा, समुचित रूप से जिज्ञासा की शान्ति की गई है। जिस रूपपर आदि गुरु की अर्द्धांगिनी सती एवं पार्वती को संदेह हो सकता है, भगवान् के ही वाहन गरुड़ को भ्रम हो सकता है और साथ ही उन देवताओं को भी शंका हो सकती है जिनकी प्रार्थना पर भगवान ने आकाशवाणी करके अवधपुर में अवतीर्ण होने का वचन दिया था, तो फिर कलि-मल-पंकिल, मायास्खलित सामान्य मनुष्यों का क्या कहना। गरुड़ से काकभुशुण्डि ने यही बात कही थी।

नारद भव विरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमवादी ॥
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही ॥

गोस्वामीजी इस तथ्य से सर्वदा अवगत रहे और यही कारण है कि मानस में नाना प्रकार से,अभिधा, लक्षण तथा व्यंजना आदि नाना विधियों द्वारा,राम को ब्रह्म सिद्ध किया गया है।

निश्चात्मक प्रतीति के लिए प्रथमतः भगवान के अवतारों की एक विशाल परम्परा कही गई है फिर शिव द्वारा कल्प-भेद के अनुसार रघुवशमणि राम के अवतीर्ण होने के कई कारण बताए गए हैं। तदन्तर, राम रूप में साक्षात् ब्रह्म को अवतरित दिखाने के लिये अन्य अन्यान्य विधियों का आश्रय ग्रहण किया गया है। विष्णु रूप में ही राम का जन्म होता है, कौसल्या प्रार्थना करती हैं, देवगण हर्षाकुल होकर उत्सव का आनन्द लेते हैं, अपने आराध्य-देवकी छविपर मुग्ध होकर सूर्य भगवान अपना दैनिक कर्म भूल जाते हैं और छः महीने का दिन हो जाता है। शिव भगवान भी अपने जीवन में एक चोरी यह करते हैं कि नर-वेष में राम का दर्शन करने जाते हैं, प्रभु राम को अल्पकाल में ही सब विद्या आ जाती है, पढने की क्रिया तो लीला करने के निमित्त होती है, फिर, राम के पद-रज से अहल्या को पाषाण से मानवी-रूप प्राप्त हो जाता है, अन्य महान नर-योद्धाओं के लिए दुर्वह शिवचाप, राम द्वारा बिना प्रयास की टूट जाता है अतरयामी राम सबके अन्तस्तल की बात जानते हैं, फिर क्या बलवीर्य-मदान्ध परशुराम का धनुष राम के बिना स्पर्श के ही खिंच उठता है, राम की वन-यात्रा में पवनदेव शीतलमद सुगध वायु द्वारा और इन्द्र सूर्य-रश्मि निवारक मेघ द्वारा अपना सेवा भाव प्रदर्शित करते हैं, देवता किरातादि का रूप ग्रहण करके पहले से ही राम की पर्णकुटी आदि बनाकर तैयार रखते हैं, राम के पदागमनमात्र से पचवटी की वनस्थलीमें आमूल परिवर्तन छा जाता है ठूठे वृक्ष हरे हो जाते हैं बिना समय के ही पेड़ों में फल लग जाते हैं, खरदूषणकी असख्य सेनासे लड़नेके लिए असख्य राम प्रगट हो जाते हैं, समुद्र सतरण के लिए उद्यत राम-वाहिनी एव राम के दर्शनार्थ समस्त जलचर भय रहित होकर जल-स्तर से ऊपर जाते हैं आदि। इस प्रकार अन्यान्य अप्रत्यक्ष विधानों द्वारा कवि ने राम के अलौकिक स्वरूप पर सदैव और सर्वत्र प्रकाश डाला है।

यह तो अप्रत्यक्ष प्रणाली की चर्चा हुई। गोस्वामीजी को इतने से ही सतोष न था। अत: उन्होंने प्रत्यक्ष विधानों द्वारा प्राय. मानस के समस्त पात्रों से राम को

परब्रह्म कहलवाया है। पात्र-श्रेणी से पृथक देवों, वेदों आदि अन्य उच्चातिउच्च शक्तियों की भी यथास्थान अवतारणा, करके एतदर्थ उन से स्वीकृति ली गई है। वानर-भालू से लेकर अगस्त्य, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अत्रि, वाल्मीकि, और ब्रह्मा, विष्णु, महेश तककी साखी मानस में अंकित हैं। परब्रह्म प्रतिष्ठा के लिए साखियो की इतनी विस्तृत तालिका शायद ही किसी ग्रन्थमें सुलभ हो। यहाँ प्रत्येक वर्ग की दो चार सखियां उपस्थित करना ही सम्भवतः पर्याप्त होगा। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव स्वीकृति का ऊपर उल्लेख हो चुका है। यहां उनका पुनर्कथन ठीक नहीं है। अतः त्रिदेवों के अतिरिक्त प्रत्येक वर्ग से एक एक साक्षी उद्धृतकी जा रही है।

(अ) देववर्ग की साखी :—

(१) इन्द्र कहते हैं —

सुर वृन्द रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलित बलं।
ब्रह्मादि संकर सेव्य राम नमामि करुना कोमलं ॥

(लं० ११२–८ अ)

(ब) ऋषियों एवं महर्षियों की साखी

(१) नारद का मत है कि

सुजस पुरान विदित निगमागम। गावत सुरमुनि संत समागम।
कारुनीक व्यलीक मद खंडन। सब विधि कुशल कौसला मंडन ॥

(उ० ४०–४)

(२) वाल्मीकि की उक्ति है कि—

जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि संभुनचावन हारे ॥
तेउ नहिं जानत मरम तुम्हारा। अउर तुम्हहि को जाननिहारा ॥

(स) मनुष्य-जाति की साखीः—

राजवर्ग पिता दशरथ कहते हैं—

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥

श्वसुर विदेहकी कृतज्ञता देखिए:—

व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी ॥

× × ×

नयन विषय मो कहु भयउ, सो समस्त सुख मूल ।
सबइ लाभु जग जीव कँह, भएँ ईसु अनुकूल ।।

(द) वानरादिकी साखीः—

अंगद रावणसे कहते हैं—

सिव विरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई ।।

रीछपति जाम्बवान् अंगदको प्रबोध देते हैंः—

तात राम कहुं नर जनि मानहु । निर्गुन ब्रम्ह अजित अज जानहु ।।

(य) मनुष्येतर प्राणियोंकी साखी :

नभचर • गृद्धराजकी स्तुति है कि—

'जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं ।'
करि ध्यान ग्यान विराग जोग अनेक मुनि जेहे पावहीं ।
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई ।
मम हृदय पंकजभृंग अंग अनंग बहु छवि सोहई ।।

(अरण्य ३१-३)

जलचरोंका भाव कैसा है देखिए—

देखन कहु प्रभु करुना कंदा । प्रगट भए जलचर बृन्दा ।
मकर नक्र नाना झष व्याला । सत जोजन तन परम बिसाला ।।

× × ×

प्रभुहिं विलोकहिं टरहिं न टारे । मन हरषित सब भए सुखारे ।।

(र) जड पदार्थोंकी साखी

समद्रकी विनती है कि—

गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कह नाथ सहज जड़ करनी ।।
तव पेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ।।
प्रभु आयसु जेहि कह जस अहई । सो तेहि भांति रहें सुख लहई ।।

(ल) पुस्तकोंकी साखी :

वेद अपनी स्तुतिमें कहता है—

'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।'

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं ।
ते कहहुँ जानहुं नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं ॥
करुनायतन प्रभु सद गुनाकार देव यह वर मागहीं ।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥

(व) राक्षसों की साक्षी — (उत्तर १२।१६)

रावण कहता है—

खर दूषन मोहिं सम बलवंता । तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवन्ता ॥

कुम्भकर्ण का तर्क है कि—

अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ।
हैं दस सीस मनुज रघुनायक । जाके हनुमान से पायक ॥

विभीषण, मन्दोदरी, त्रिजटा, शुक, प्रवर्षण, माल्यवान आदि तो एक प्रकार से राम-भक्त ही थे । इनके विषय में कुछ न कहना ही अच्छा है । सम्पूर्ण मानस में केवल तीन ही पात्र ऐसे हैं जिन्होंने राम को ब्रह्म नहीं कहा है, अन्यथा कीट-कीट तक सबने मान लिया है । ये तीनों पात्र हैं (१) मेघनाथ (२) कैकेयी और (३) सुनैना । पर इनकी अस्वीकृति से मूल मन्तव्य पर कोई आघात नहीं पहुँचता है और ग्रन्थ मे बहुत कुछ स्वाभाविता भी बच जाती है ।

उपरोक्त पद्धतियों के अतिरिक्त, राम के नर-रूप में पाठक को आसक्ति न हो इसके लिए एक अन्य माध्यम भी प्रयुक्त हुआ है : यह है वक्ताओं के निष्कर्ष-कथन एवं सचेतक उक्तियों का । जहाँ भी राम का चरित्र मानवीय स्तरपर आबद्ध हो गया है वहाँ वक्ताओं ने तुरंत ही पाठकों (श्रोताओं) को वस्तु-स्थिति से सजग किया है । इस प्रवृत्ति का दिग्दर्शन प्रायः प्रत्येक पृष्ठपर हो सकता है । यहाँ दो एक का उदाहरण ही पर्याप्त होगा । बालक राम को जब राजा भोजन करने के लिए बुलाते हैं तब वह बाल समाज को छोड़कर नहीं आते हैं और कौशल्या के पकड़ने पर भागने लगते हैं । पाठकादि को नन्द की ही भाँति भ्रम न हो जाय इसलिए कवि लिख देता है—

निगम नेति सिव अंत न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ॥

राम जब विद्याध्ययन करते हैं, इस पर शंका न हो इसलिए कवि कहता है—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी ॥

नदी पार होने के लिए राम केवट का निहोरा लेते हैं और उसकी सभी माँगें स्वीकार कर लेते हैं। कवि को शका होती है कि कहीं पाठक भ्रमित न हो जायँ इसलिए वह कह उठता है—

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जगु किय तिहु पगहुँ ते थोरा ॥

सीता-हरण के विरही राम के असयत विलाप को सुनकर कहीं पाठक-हृदय में सदेह-अकुर न अकुरित हो जाय इसलिए तुरत कवि कहता है—

पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अविनासी ॥

इस प्रकार भाँति भाँति के विधि-विधानों द्वारा गोस्वामी जी ने राम को जहाँ एक ओर परब्रह्म सिद्ध किया है वहाँ दूसरी ओर भक्त-मन को अचिरात् आकृष्ट करने वाले चारित्रिक मूल्यों को भी उनमें अन्तर्निविष्ट करने में पर्याप्त सतर्कता दिखलाई है। यही कारण है कि मानवीय कल्पना द्वारा उच्चातिउच्च स्तर पर स्वरूपित समस्त गुणों एव जीवन-मूल्यों का सन्निवेश राम में सम्पूर्ण रूप से संभव हो सका है। आधार-ग्रन्थों के राम में जिस आवेश, अविचार एवं असयम का दर्शन होता है, वह मानस के राम में कहाँ? यहाँ तो सर्वत्र निष्कलुषिता है। डा० माता प्रसाद गुप्त ने राम की विशेषताओं का आकलन करते हुए लिखा है कि—"किसी भी जाति की काव्य प्रतिभा ने कभी भी जिस उदात्त गुणों की कल्पना की होगी कदाचित उनका उच्चतम, आदर्शमय और सर्वांग सुन्दर रूप हमें राम में समाहित मिलता है।"[१] राम का अवतार ही भक्तों के लिए होता है। अधर्म का नाश तथा विप्र, धेनु और सतों की रक्षा करना ही राम का व्रत है। राम-जन्म के समय कवि की उक्ति है कि—

विप्र धेनु सुर सत हित लीन्ह मनुज अवतार।
*निज इच्छा निमित तनु माया गुन गो पार ॥*बा० काड १९२॥

१—तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० २७४.

भक्त के कर्तव्याकर्तव्य पर सूक्ष्म-दृष्टि डालकर तटस्थ प्राड्विवाक की भाँति प्रिय और अप्रिय, भक्त और अभक्त का भेद करना राम का स्वभाव नहीं है। वह तो मात्र भक्त का प्रेम चाहते हैं और चाहते हैं उसकी अनन्य भावतन्मयता। 'रीझत राम सनेह निसोतें' ही उनकी बान है। निषाद जाति में उत्पन्न निषादराज और भील-कुल-जन्मा शबरी के भाव-वृत्त पर अपने को उत्सर्ग कर देने वाले तथा वानर (सुग्रीव) एव राक्षस (विभीषण) को परम सखा और मंत्री बनाने वाले भगवान की सहज रीझ देखी जा सकती है। राम के सम्पर्क मे आने वाले एक दो नहीं, सभी पात्रों के साथ यह स्वभाव वृत्ति प्रकाशित हुई है। राम की स्पष्ट घोषणा भी है कि—

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। सेवक सम कोउ मम प्रिय नाहीं॥

विभीषण से भी राम ने स्पष्ट कहा था

तुम्ह सरीखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहि आन निहोरें॥

चित्रकूट में कोल किरातों के साथ प्रेमपूर्वक बातचीत में संलग्न राम को देखकर कवि भी कहता है:

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

यही नहीं, वह कभी भक्त की चूक का भी ध्यान नहीं करते हैं.—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

राम की यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि—उन्हें भी भक्तों का पक्षपाती गिना जा सकता है। समान अपराध के लिए बालि का वध भी कर सकते हैं और भक्त सुग्रीव को क्षमा भी कर सकते हैं। माता-पिता की भाँति, वे सदैव अपने भक्तों की देखरेख करते रहते हैं।[1] यह है आलम्बनत्व।

भक्तवत्सलता की ही भाँति शरणागत वत्सलता भी भगवान राम का एक विशेष गुण है। शरणागत विभीषण को आश्रय न देने के लिए सुग्रीव के परामर्श को सुनकर राम ने कहा है—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥

शुक (दूत) ने रावण से राम-स्वभाव की यही उक्ति कही थी—

१—मानस, बालकांड, दो० २८, ३-४

मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं। उर अपराध न एकउ धरिहीं॥

विभीषण ने भी प्रथमत. रावण को ऐसा ही समझाया था :—

सरन गए प्रभु काहु न त्यागा। विस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥

भगवान राम में सबसे बड़ी तीसरी विशेषता है श्रुति एव लोक-धर्म के रक्षण एव पालन की। उनका अवतार भी इसीलिये होता है। शिव जी ने बतलाया है:—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।

'मानस' में मर्यादावाद की जैसी दिव्य झलक मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। राम जगतपिता, जगद्गुरु आदि सब कुछ हैं पर लौकिक माता, पिता, गुरू, बधु-बांधव आदि के साथ उनका संबंध लोक-रीति के अनुसार ही होता है। गुरू के साथ भ्रमण करते हुए, रात्रि में उनका चरण दबाते हैं और बार-बार आज्ञा पाकर सोने जाते भी हैं तो गुरू के पहले ही जग जाते हैं।[१] ऋषिमुनियों द्वारा ब्रह्म-रूप में निरूपित होने पर भी उनकी पूजा-वदना करते हैं, माता पिता की वनगमन की आज्ञा को सुनकर तनिक भी हर्ष-विषाद नहीं करते हैं और लक्ष्मण द्वारा कहे गए अपशब्दों को पिता आदि से न कहने के लिए सुमत से प्रार्थना करते हैं,[२] इससे भी अधिक अपनी प्राण-वल्लभा पत्नी की अग्नि-परीक्षा इसलिए लेते हैं कि मर्यादा का खडन न हो। भौतिक राग-तन्तुओं का भी आदर्शोचित निर्वाह करते हैं। माता-पिता भरतादि भाइयों का तो कहना ही नहीं पुरजन-परिजना के साथ भी प्रेम-सूत्र दृढ़ किए रहते हैं। यही कारण है कि चित्रकूट में सबकी सुधि से व्याकुल हो जाते हैं:

सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सील सेवकाई॥
कृपा सिंधु प्रभु होहि दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ विचारी॥

उनके सकोची स्वभाव की भी छाया चित्रकूट की सभा में देखी जा सकती है, जहाँ सब कुछ भार अपने से श्रेष्ट-जनों तथा भाई भरत पर छोड़कर आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं।

१—मानस, बालकांड, दो०२२६

२—वही, अयो० दो० ६९,३

इसके अतिरिक्त वे करुणापुंज, कारण रहित दयालु भी हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं मोक्ष-प्राप्त जटायु, अहल्या आदि। भगवान, शत्रु तक को परमपद देते हैं—यथा रावण, कुम्भकर्ण आदि को।

'तादात्म्य' एवं 'साधारणीकरण' के लिए अपेक्षित उत्तमोत्तम आधार-शिला के रूप में अकथित रूप-सौन्दर्य भी इन्हें प्राप्त है जिसको देखकर शायद ही मानस का कोई पात्र अभिभूत न हुआ हो। मानस के भगवान राम में सगुण-स्वरूप की वे समस्त परिपूर्णताएँ सन्निविष्ट हैं जिसको भावन करके कोई भी निसर्गतः, अपने हृदय-निर्माल्य को भक्ति-वेदिका पर समर्पित कर सकता है। तभी गोस्वामी जी ने बारम्बार कहा है कि जो ऐसे भी प्रभु का भजन अथवा भक्ति नहीं कर सकता, वह अधम है। शिव-उक्ति है :—

अस प्रभु सुनि न भजहि भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥

लंका काण्ड में शिव जी पुनः कहते हैं :—

निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥७१॥

तुलसी ने भी सदम्य विश्वास के साथ अपील की है :—

जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि॥

उपरोक्त चिन्तन विवेचन का तात्पर्य राम-भक्ति-प्रचार विषयक तुलसी की अति सतर्कता प्रदर्शित करना ही है। यह तो हुई राम भक्ति-प्रचार की पीठिका की विवृत्ति अब भक्ति-माहात्म्यादि वर्णन की प्रवृत्ति भी देखना चाहिए।

जन-कल्याण की भावना से उत्प्रेरित गोस्वामी तुलसीदास ने शंकराचार्य द्वारा निर्दिष्ट 'मायावाद' पद पर, समस्त साधना-सरणियों की तात्विक परख करके [illegible] मायायाम्' की माया से उन्मुक्त होने का एक ही मात्र मार्ग है, और वह है भक्ति का मार्ग। मोह, क्रोध, तृष्णा, काम आदि 'अवगुण' जो कि माया के अनुचर तथा [illegible] हैं, अपने [illegible] में नारद मुनि जैसे ज्ञानी को, शिव, विरंचि आदि तक को फँसा सकते हैं। इनसे बचने में यदि कोई सहायक हो सकता है तो केवल भक्त एवं उसकी भक्ति है। अपने अनुभवों का अनुकथन करते हुए काकभुशुण्डि ने कहा है :—

नारद भव विरचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमवादी ॥
मोह न अध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही ॥
तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥
ग्यानी तापस सूर कवि कोविद गुन जागार।
केहि कै लोभ विडवना कीन्हि न एहि संसार ॥

• •

सुत वित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा ॥

इसके उन्मोचन का एक ही उपाय है :—

जो दासी रघुवर कै समुर्क्ते मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउं पद रोपि ॥

सम्पूर्ण जगत को भ्रमित करने वाली माया नटी, अपने सूत्रधार के अगुलि निर्देश पर ही नाचती है :—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥

यह बात सत्य है कि 'मैं मोर तोर तै' का भेद मायाजन्य और 'असत्' जब कि जीव उसी 'अशी' का एक 'अंश' एव अभेद रूप से उसी 'अगी' का एक 'अग' है, फिर भी माया का 'असत्' स्वरूप ही तब तक विदीर्ण नहीं किया ज सकता है, जब तक भगवत्-कृपा न हो जाय।

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी ॥

• • •

मुधा भेद जदपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥
(उ० ७७-३, ४

भगवद् कृपा तभी सभव है जब भगवद्-भक्ति हो और भगवद् भक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब स्वरूप-ज्ञान-प्रतीति तथा तद्विषयक प्रीति हो :

जाने बिनु न होई परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहि भगति दिढाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।

विना भक्ति के भगवान द्रवित नहीं होते हैं :—

'विनु विश्वास भगति नहि तेहि विनु द्रवहि न राम' ।

इसीलिए तुलसीदास ने भजन, राम-नाम-जप और समष्टि रूप में भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया है। भगवान ने भक्त-विषयक अपनी रीझ की अभिव्यक्ति, मानस में अनेक बार की है इसका किंचित उल्लेख ऊपर हो चुका है।

साध्य-सम्प्राप्ति के लिए साधन-स्वरूप स्वीकृत अन्य दो मार्गों को गोस्वामी जी ने 'माया' के सम्मुख अक्षम पाया है। साधनारूढ़ 'ज्ञानियों' एवं 'कर्ममार्गियों' का अप्रत्याशित पतन तथा स्वयं साधन-मार्गों, सम्प्रदायों, पंथों आदि की कंचन-कामिनी के सम्मुख झुकना, इतिहास की कहानी है जिस से तुलसीदास अनभिज्ञ नहीं थे। ज्ञान एवं तर्क पर सम्पूर्णतः अधिष्ठित विशुद्ध मानवतावादी बौद्ध-धर्म की 'मन्त्रयान' 'वज्रयान' आदि के रूप में चरम परिणति, तथा स्वयं परवर्ती बौद्धों की पतितता के विरोध में प्रतिक्रियास्वरूप नवनिर्मित गोरखपंथियों (नाथ-पंथों) द्वारा भक्ति-विरहित 'विवेक' (सत्यासत्य का ज्ञान) और 'विरति' (असत्य का परित्याग) को ही चरम-साध्य मानकर 'स्वयं संत' हो जाने की परिकल्पना और फिर उसका अधोमुखी परिणाम भी, मध्ययुगीन विवेचकों को विदित था। यही कारण है कि निर्गुनियाँ संतों का मार्ग सिद्धों एवं नाथों के समीप होते हुए भी, भक्ति को ग्रहण किए है। गोस्वामी जी ने, इसलिये ज्ञान एवं कर्म आदि-विधानों को उपयुक्त नहीं कहा है। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जप, तप, ज्ञान आदि साधन-अंग तो अवश्य हैं पर अपने में पूर्ण नहीं हैं और यह पूर्णता तभी सम्भव है जब कि उनमें भक्ति का योग हो—

जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥

ज्ञान और भक्ति में फल-प्राप्ति की समान क्षमता होने पर भी सबसे बड़ी बाधा यह है कि ज्ञान पुरुषवर्गीय है जब कि माया और भक्ति दोनों ही नारि-वर्गीय हैं। पुरुष, स्वभावतः, नारी के आकर्षण में आबद्ध होकर नाना नाच नाचने लगता है पर नारी तो नारी के रूप पर मोहित भी नहीं होती और इसमें भी भक्ति तो नारी रघुवीर की पियारी होती है जब कि मोहक नारी (माया) मात्र नर्तकी होती है।[1] इसलिए भक्ति-पथ बाधा रहित होता है।

१—मानस पुराण सं० श्रीमानस-कौमुदी, पृ० २९ ।

भगतिहिं सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥

यदि कोई ज्ञान-मार्ग से ही गन्तव्य स्थल की प्राप्ति करने का इच्छुक हो तो कोई बड़ी बात नहीं। पर, हाँ, 'ज्ञान-दीप' जलाने की प्रक्रिया तक उसके पद कृपाण की धारा पर ही रहेंगे और किसी भी क्षण उसका विनाश हो सकता है। मात्र ज्ञान से माया-ग्रन्थि तभी छूट सकती है जब कि हृदय में सात्विकी श्रद्धा-रूपी गौ का निवास हो जाय, जप, तप, व्रत, यम, शुभ धर्म और आचार रूपी हरे तृणों को ही वह चरे, भाव रूपी आस्तिक बछड़े द्वारा पेन्हाई जाय, निवृत्ति रूपी रस्सी से पिछला पैर बधा रहे, विश्वास रूपी वर्तन में नियन्त्रित मन रूपी अहीर दोहन करे, धर्ममय दूध को निष्काम रूपी अग्नि पर औटाया जाय, फिर क्षमा एव संतोषरूपी वायु से उसे ठढा करके धैर्य तथा सम रूपी जामन से जमाया जाय, मुदिता रूपी कमोरी में विचार की मथानी से, शम के आधार पर सत्य और सुवाणी रूपी रस्सीसे मथकर पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाला जाय, योगाग्नि में शुभाशुभ कर्म की अग्नि लगाकर उसका ममता रूपी मल जला दें, तब ज्ञानरूपी घी को बुद्धि से ठढा करें, इस घृत से चितरूपी दीपक को भरकर, समता को दीवट पर रखकर तीनों अवस्थाओ एव तीनों रूपों की कपास से तुरीयावस्था रूपी रूई की कडी बत्ती बनाई जाय और तेजपूर्ण विज्ञान द्वारा जलाई जाय, तत्पश्चात् उससे जो लौ निकलेगी उसमें अविद्या के परिवार का मोह मिट जायगा।[१] इस प्रकाश में ग्रन्थि छोड़ी जा सकती है परन्तु विघ्नों का अत कहाँ! ऋद्धि-सिद्धि उसे बुझाने में प्रयत्नशील हो जाते हैं यदि उनसे निवृत्ति प्राप्त भी हुई तो इन्द्रिय देवता विषय-वायुके लिए नाना द्वार खोलकर बैठ जाते हैं और भीतर वायुके प्रविष्ट होते ही दीवक बुझ जाता है।[२] फिर क्या—

तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥

ज्ञानियों के लिए, इस प्रकार कठिनातिकठिन कर्म करने पर भी दुर्लभ मुक्ति, भक्त को अनायास ही प्राप्त हो जाती है:—

१—मानस, उत्तर, ११६–२ से ११८।

२—वही उत्तर० ११७ (घ) ३–८।

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआई ॥

'भक्ति चिन्तामणि' जिसको प्राप्त हो जाती है उसे न तो संसृति-दुःख सहन करना पड़ता है और न अविद्या-माया के बंधन में बँधना ही होता है।[1] ऐसी अमूल्य मणि मात्र भगवत् कृपा से प्राप्त हो जाती है। वस्तुतः यह 'मणि' वेद-पुराण रूपी पवित्र पर्वतों पर रहती है, राम-कथा ही उस पर्वत में खानें हैं, संत-पुरुष ही खानों का मर्मी होता है, सुन्दर बुद्धि की कुदाली से खुदाई होती है, और मात्र प्रेम-भाव से खोजने पर ही यह मणि प्राप्त हो जाती है।[2] काकभुशुंडि को आत्म-बोध देते हुए भगवान राम ने स्पष्ट घोषणा की है कि—

सब मम कृत सब मम उपजाए। सबसे अधिक मनुज मोहि भाए ॥

. ...

पुनि-पुनि सत्य कहउ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥

शिव ने उमा को भी यही समझाया है :—

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥

इसी रहस्य से अवगत होकर गोस्वामी जी ने, मानस में अनेक प्रकार से भगवद् भजन का माहात्म्य वर्णित किया है और उसे ग्राह्य करने के लिए प्रेरित भी किया है।[3]

भक्ति की महत्ता के लिए गोस्वामी जीने एक और कारण चतुर्युग की भिन्न भिन्न साधन-प्रणालियों को बतलाया है। सत्ययुग में सभी योगी और विज्ञानी होते हैं अतः हरि का ध्यान करके भवसागर का संतरण कर लेते हैं, त्रेता के कर्मनिष्ठी लोग यजन करके ही मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, इसी प्रकार द्वापर के उपासना-मार्गीय रघुपति-पद-पूजा से ही अपना उद्धार कर लेते हैं; परन्तु कलियुग में भवसागर पार करने की एक ही युक्ति है और वह है भगवान की गुण गाथाओं का गान करना।

१—मानस, उत्तर, ११३ (ख) १-४।

२—मानस, उत्तर, ११६-७, ८।

३—'भागवत्' के अनुसार नाम जप परमात्मा में प्रीति उत्पन्न करने का हेतु है:—'यतस्त्वद्विषया रति.'।

कलियुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ।
सब भरोस तजि जो भज रामहिं । प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं । नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं ॥[१]

भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के साथ ही साथ अन्य 'पथो' की निकृष्टता भी प्रदर्शित की गई है। वस्तुतः सगुण भक्ति से पृथक् साधना-रत अन्यान्य नवोद्भावित पथों से गोस्वामीजी को चिढ़ थी। उन्होंने स्पष्ट कहा है :

श्रुति सम्मत हरि भगत-पथ, संजुत बिरति विवेक ।
तेहि न चलहि नर मोह बस, कलपहि पथ अनेक ॥
(उ० १०० ख)

यहां इसी पर थोड़ा विचार कर लेना समीचीन होगा।

शाक्त सम्प्रदाय—शाक्त सम्प्रदाय की उपासना पद्धति से गोस्वामी जी जैसा मर्यादावादी व्यक्ति भला कब संतुष्ट रहता। शाक्तों के सात आचारों[२] में से 'वामाचारों' तथा 'कौलाचारों' में 'पंचमकारादि'-सेवन, अभिचारादि-समर्थन और घृणास्पद कर्मों के अनुगमन की प्रवृत्ति बड़ी भयंकर थी। अतः गोस्वामी जी ने मानस में इनकी तीव्र भर्त्सना की है—

तजि स्रुति पथ बाम पथ चलहीं ।
बंचक बिरंचि बेषु जग छलहीं ॥

निर्गुण एवं सूफी सम्प्रदाय :—वेदों और पुराणों को छोड़कर चलने वाले संतों और आशिकाना धरातल पर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करने वाले सूफियों के विरुद्ध गोस्वामी जी का क्षोभ इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं लोग सब निन्दहि वेद पुरान ॥

अलख पंथ :—इस पथ के लोग शैव सम्प्रदाय के विशेष साधकों में माने जाते हैं।[3] इनके प्रति गोस्वामी जी का विचार यह है—

---

१ – कृते यद्ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो मखैः
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धारिकीर्तनात् ॥ भागवत ॥

२—पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ५३२-३३ ।

3–Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol, I, P 216,

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीचु।
तुलसी अलखहिं का लखहि राम नाम जपु नीचु॥

नाथपंथ अथवा गोरखपंथ—गोरख ने हठयोग का महत्त्व प्रतिपादित करके बौद्ध सिद्धों के आधार पर, वेद-शास्त्र का अध्ययन, भक्ति-निरूपण, तीर्थाटन आदि को निरर्थक बताया। इस पर गोस्वामी जी ने लिखा है—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग।
निगम नियोग ते, सो कलि ही छरो सो है॥

तुलसीदास ने इन्हें 'शव' तक कहा है। (लङ्का, दो० ३०, २–४) महात्मा कबीरदास ने भी इन्हें 'लसन की खानि'[1] तथा 'वासन कारी'[2] कहा है।

वैरागी-सम्प्रदाय—यह सम्प्रदाय वैष्णवों का है। तुलसीदास के युग तक इसमें पर्याप्त संकीर्णता और धार्मिक कट्टरता समाविष्ट हो गई थी। विष्णु ही के दो अवतारों राम और कृष्ण में भेद करने को कौन कहे स्वयं सीता और राम में भी भेद स्थापित कर लिया गया। कुछ बाबा रामदास बन गये तो कुछ बाबा वैदेहीशरण। पजाब में रामानदी और नीमानदी और उत्तर प्रदेश में रामानुजी एवं रामानदी वैरागियों में परस्पर 'तू तू मैं मैं' एक विख्यात घटना है। गोस्वामी जी ने भक्ति का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत करके इस कट्टरता का उन्मूलन कर दिया। डा०राजपति दीक्षित का कहना है कि मानस जैसा अपना धर्म-ग्रन्थ पाकर वैरागी सम्प्रदाय ने मानों उदारता की ओर नया डग रखा।[3]

सेवड़ा (श्रावक) पंथ[4] :—तुलसीदास ने सेवरा की आचारमूलक उपासना पर छींटा फेंका है :

सुरा सेवरा आदरहि निंदहि सुरसरि वारि। 'दोहावली' दो० ३२६।

१—कबीर-ग्रन्थावली, परिशिष्ट, साखी १५१।

२—वही० पृ० १५२

३—डा० राजपति दीक्षित, तुलसीदास और उनका युग, पृ० २५०।

४—सेवड़ा जैन हैं अथवा बौद्ध या शाक्त, यह एक विवाद का विषय है। विशेष विवरण के लिए दे० (१) भारतीय-दर्शन—पं० बलदेव उपाध्याय पृ० १९४–९५।

उपरोक्त प्रत्याख्यान के अन्तस्तल में निहित, तुलसीदास की भक्ति-प्रचार की भावना सहज ही आकी जा सकती है।

वस्तुतः मानस में यत्र तत्र सर्वत्र भक्ति एव भक्त का ही माहात्म्य वर्णित है। जहाँ भक्ति की ही लहाछेह वर्षा हो रही हो वहाँ कौन ऐसा है जो विना भीगे रह सके। मानसके प्रायः सभी पात्र प्रच्छन्न अथवा अप्रच्छन्न रूप से भक्त हैं। 'भागवत' की नवधा-भक्ति के अनुसार मानस में भी सब प्रकार की आसक्तियों के भक्त चुने जा सकते हैं यथा, गुणमाहात्म्यासक्ति भक्तों में नारद, भुशु डि एव शिव, रूपासक्त भक्तों में मिथिला के नर-नारी, राजा जनक दण्डकारण्य के ऋषि आदि, पूजासक्त भक्तों में भरत, स्मरणासक्त भक्तों में प्रहलाद ध्रुव, सनकादि, दास्यासक्त भक्तों में हनुमान एव लक्ष्मण, सत्यासक्त भक्तों में निषाद, सुग्रीव और विभीषण, कान्तासक्त भक्तों में जानकी, वात्सल्या-सक्त भक्तों में मनु, शतरूपा, दशरथ, कौसल्या आदि; आत्म-निवेदनासक्त भक्तों में हनुमान एवं विभीषण, तन्मयतासक्त भक्तों में सुतीक्ष्ण, परम विरहा सक्त भक्तों में महाराज दशरथ आदि को गिनना चाहिए। इसके अतिरिक्त रावण, कुमकर्ण, मन्दोदरी, त्रिजटा, प्रहस्त, शुक (दूत) मकड़ी, विराध, कबध, मारीच आदि भी प्रच्छन्न रूप से भक्त हैं। भक्त-पात्रों का ऐसा समागम शायद ही किसी काव्य ग्रन्थ में सुलभ हो। गोस्वामी जी ने सभी प्रकार के भक्तों एव उनकी भक्ति को प्रेय बताया है, पर सर्वोपर महत्व अनन्य भाव की दैन्य भक्ति को ही दिया है। इनका वही भक्त-पात्र सर्वोत्कृष्ट है जो अनन्य भाव का दीन भक्त है। हनुमान, लक्ष्मण एवं भरत को एक ओर, परशुराम शरभग आदि को दूसरी ओर एक तुला पर रखकर परखा जा सकता है। गोस्वामी जी[१] ने व्यास की 'भगवान की पूजा आदि में अनुराग' गर्गाचार्य के 'भगवान की कथा में अनुराग' और शांडिल्य की 'आत्मरति के अविरोधी आलम्बन से अनुराग' जैसी मान्यताओं की विवृत्ति यत्र तत्र की है और सर्वत्र 'नारद-सूत्र' की भाति अनन्य भक्ति को अमृतरूपा और फलरूपा भी घोषित किया है।

१—तुलसीदास और उनका युग—डा० राजपति दीक्षित पृ० २७०-७२।

भक्ति-प्रचार के लिए जिस भीषणतम ब्रह्मास्त्र का प्रयोग तुलसीदास ने किया वह है मानस के ज्ञानी, वैरागी, कर्मनिष्ठ आदि सभी प्रकार के प्रबुद्ध पात्रों द्वारा, अन्त समय में राम-भक्ति की याचना करना। यहा तीन उदाहरण पर्याप्त होगा।

(१) शिव की दीन याचना है कि:—

बार बार माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपावनी भगति सदा सतसंग॥

उत्तर० १४ (क)

(२) ब्रह्मा की भी यही कामना है कि:—

नृप नायक दे बरदानमिदं चरनाम्बुज प्रेमु सदा सुभदं॥

लंका० ११०–११॥

(३) इन्द्र भी पीछे नहीं हैं:—

दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायक।

लंका ११२–८ छंद॥

भक्तों की भक्ति-याचना में काकभुशुंडि की भक्ति-याचना अधिक प्रचारात्मक और प्रभावोत्पादक है।

मानस की कथा का कथन ही इसलिए हुआ है कि भक्त प्रश्नकर्ताओं का भ्रमादि भी दूर हो और साथ ही जगत कल्याण भी हो। मानस के चारों श्रोता, गीता में वर्णित चार प्रकार के भक्त ही हैं।[1] गोस्वामी जी ने निर्देश किया है—"राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृति चारिउ अनघ उदारा।" यही नहीं इन भक्तों का लक्षण भी व्यंजित है।[2] रामचरित मानस में उमा 'आर्त्त श्रोता', गरुड़ 'जिज्ञासु श्रोता', सुजन लोग 'अर्थार्थी श्रोता' और भरद्वाज 'ज्ञानी श्रोता' हैं।

इसके अतिरिक्त, मानस में राम-गीता, स्तोत्र, उपदेश-कथन आदि में भी भक्ति-पथ का ही मंडन हुआ है, अतः जिस भी दृष्टि से परीक्षण किया जाय भक्ति-महिमा वर्णन और उसका प्रचार ही ग्रन्थ का मूल प्रतिपाद्य ठहरता है।

१—चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

२—वही, बाल० २१–१, ४।

तात्पर्य-निर्णय के लिए, आचार्यों ने एक और मार्ग निर्देशित किया है। यथा,

उपक्रमोपसहारावभ्यासो पूर्वता फलम।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगम तात्पर्य निर्णये ॥

(१) उपक्रम एव उपसहार—दोनों के योग से व्यजित अभिप्रेत ग्राह्य किया जाता है।

(२) अभ्यास—जिस भाव, विचार अथवा मतव्य की आवृत्ति बारम्बार हो, उसके आधार पर तात्पर्य निर्णय किया जा सकता है।

(३) अपूर्वता—उस ग्रन्थ में उसी विषय के अन्य ग्रन्थों से जो नवीनता हो, उससे भी निर्णय किया जा सकता है।

(४) फल—ग्रन्थ का जो फल हो, उससे भी तात्पर्य निर्णय में सहायता प्राप्त होती है।

(५) अर्थवाद—पाठकों को किसी मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए उसके माहात्म्य-वर्णन और किसी से निवृत्त करने के लिए उसकी निन्दा की तत्परता से भी निर्णय होता है।

(६) उपपत्ति—कही हुई बात की सिद्धि के लिए उपस्थित प्रमाण से भी निर्णय हो सकता है। मानस का तात्पर्य-निर्णय करने के लिए भी इन छः तत्त्वों का विवेचन अपेक्षित है।

रामचरित मानस में उपक्रम एव उपसहार का महत्व, विस्तार एव मन्तव्य-प्रकाशन, दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। 'बाल का आदि उत्तर का अंत' सिद्धान्त के लिए प्रसिद्ध है। यदि मानस का यही बालकाड और उत्तरकाड छोड़ दिया जाय तो समूचा ग्रन्थ प्राणरहित शव से अधिक कुछ भी शेष न रहेगा। बालकाड में राम को परब्रह्म सिद्ध करने का प्रयत्न है। राम-नाम एव राम-कथा की महिमा का वर्णन करने के पश्चात् राम के नाना अवतारों की शृंखला स्थापित की गई है और फिर दाशरथि राम के रूप में भगवान के अवतरित होने के कारण भी बताए गए हैं। श्रोताओं को राम के नर-रूप पर ही सदेह हुआ है अत वक्ताओं द्वारा सदेहांकुर के उन्मूलन के लिए रामचरित का कथन हुआ है।

शिव, लोमस, काकभुशुंडि आदि की परम्परा में चली आती हुई राम-कथा का वर्णन तुलसीदास भी भक्ति के सबल आग्रह के कारण ही करते हैं। क्योंकि—

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ रामपद माथा॥

अतः मानस का विषय कवि द्वारा प्रथम ही निर्देशित हो गया है।

उपसंहार में काकभुशुंडि के अनुभव एव उनकी जीवन-घटना द्वारा, रामभक्ति की सरलता, सुलभता, श्रेष्ठता और उपादेयता तथा अन्य मार्गों की हीनता एवं निकृष्टता अनेक प्रकार से स्वरूपित की गई है और भव सागर के संतरण के लिए भक्ति को अनिवार्य प्रतिपादित किया गया है। अत इस दृष्टि से भी मानस ग्रन्थ का मूल आग्रह भक्ति-स्थापन एव भक्ति-प्रचार ही ठहरता है। डा० श्री कृष्ण लाल ने लिखा है 'वेदों में जैसे भूमा के सुख और सौंदर्य का आग्रह है, उपनिषदों में जैसे ब्रह्म ज्ञान का ही आग्रह सर्वोपरि है और गीता में जैसे भगवान पर पूर्ण आस्था रख कर निष्काम भाव से अपने कर्तव्य-कर्म के पालन का आग्रह स्पष्ट दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार रामचरित मानस में भी एक विशेष आग्रह की प्रेरणा मिलती है और विशेष आग्रह है रामभक्ति।'[१]

अभ्यास की दृष्टि से मानस में, आद्यत अगणित बार अनेक प्रकार से राम को परब्रह्म सिद्ध किया है, इसका उल्लेख हो चुका है। जब भी परब्रह्म विषयक चर्चा हुई है, राम-भजन एव रामभक्ति के लिए पाठक को प्रेरित भी किया गया है। अरण्यकांड से उत्तरकांड तक यह प्रवृत्ति अत्यंत सबल रूप में देखी जा सकती है। वक्ताओं का एतद्विषयक निष्कर्ष-कथन तो प्रत्येक पृष्ठ पर है। इससे भी रामभक्ति प्रचार, ग्रन्थ का मूल उद्देश्य उद्भासित होता है।

अपूर्वता की दृष्टि से मानस पुराणों अथवा साम्प्रदायिक रामायणों के अधिक निकट है। वाल्मीकि कृत 'रामायण', कालिदास कृत 'रघुवंश' एव भवभूति के 'महावीर चरित', 'उत्तररामचरित' आदि की तथा मानस की कथा-वस्तु एक है, परन्तु उद्देश्य में पर्याप्त असमानता के कारण प्रतिपादन का ढंग भी यथेष्ट परिवर्तित

१—मानस दर्शन—डा० श्रीकृष्णलाल पृ० १३७

हो गया है। वाल्मीकि रामायण का उद्देश्य कवि के नायक-विषयक प्रश्न एव महर्षि नारद के तदनुकूल उत्तर से सहज ही आंका जा सकता है। मुनिपुंगव वाल्मीकि का प्रश्न था कि इस समय ससार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, अतिप्रियदर्शन, धैर्यवान, क्रोध को जीतने वाला, तेजस्वी, ईर्ष्याशून्य और युद्ध में क्रुद्ध होने पर देवताओं को भी क्रुद्ध करने वाला कौन है।[१] त्रिकालदर्शी नारद ने देव-दुर्लभ पुरुष-रत्न राम को ही इन विशेषणों से युक्त निर्देशित किया।[२] ग्रन्थ निर्माण में मात्र यही उद्देश्य सन्निहित है। वाल्मीकि के राम ईश्वर से मानव नहीं हुए हैं, वरन मानव से ऊपर उठकर ईश्वरीय गुणों की ओर पहुँचते गए हैं। भवभूति के 'महावीर चरित' का उद्देश्य राम के शौर्य अथवा महावीरत्व का प्रदर्शन करना है। नाटक का उद्देश्य सूत्रधार ने इस प्रकार बताया है:—

त्रिभुवन सोकमूल जिन नासा। साहस तेज प्रताप प्रकासा।
यह सोइ रघुपति चरित सुहावा। नाटक मह अति रम्य बनावा॥

(महावीर चरित भाषा-प्रस्तावना पृ० २)

यही राम, 'उत्तररामचरित' में 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' के रूप में प्रगट हुए हैं। 'रघुवश' में राम विष्णु के अवतार हैं परन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य, अलंकृत-काव्य-शैली में तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना को सजीव करना है। 'साकेत' एव केशव कृत 'रामचन्द्रिका' में भी विष्णु-रूप राम की अवस्थति है, पर जहां साकेत में उर्मिला के आँसुओं को गिनने और आदर्श परिवार का स्वरूप उपस्थित करने का आग्रह है वहाँ रामचन्द्रिका में विविध छन्दों एव विविध शैलियों में पाडित्यपूर्ण ढंग से कुछ कह जाने की धुन है। इन सबके विपरीत मानस में 'अध्यात्मरामायण' के ढग पर वक्ताश्रोता के प्रश्नोत्तरों के माध्यम से भक्ति-प्रतिपादन की उत्सुकता है। यहाँ तुलसीदास 'अध्यात्म' के अधिक निकट हैं। तुलसीदास के इसी उद्देश्य की ओर सकेत करते हुए डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'तुलसी मत' का निर्देश किया है[३] पर डा०

१—रामायण, बालकाड, सर्ग १, २-४ २—वही, ६-१८।
३—तुलसी-दर्शन—डा० बलदेवप्रसाद पृ० २०७।

माता प्रसाद गुप्त ने 'अध्यात्म रामायण' के अध्ययन के आधार पर सिद्ध किया है कि 'जो कुछ उन्हें (तुलसीदास) 'अध्यात्मरामायण' में सिद्धान्त रूप में मिला प्रायः उसी का उन्होंने एक तर्कसंगत विकास किया है।'[1] तभी डा० साहब ने विश्वास प्रकट किया है कि इस प्रकार का वैज्ञानिक अनुसंधान तुलसी की मौलिकता में कदाचित बाधक हो सकता है पर वास्तविक तुलसीदास को समझने में सहायक ही होगा।[2] अतः अपूर्वता की दृष्टि से भी मानस का मूल विषय, अन्यान्य भक्ति ग्रन्थों की ही भाँति भक्ति-प्रचार ठहरता है।

'मानस' का फल विश्राम की प्राप्ति है। मानसकार के मत से ज्ञान का फल मोक्ष है[3] और भक्ति (रामभक्ति) का फल, मन का विश्राम है। मानस के उपक्रम में ही कवि ने लिख दिया है कि 'रामचरित मानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा' ॥ भगवान राम स्वयं विश्रामदायक हैं। कवि कहता है. 'जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम' ॥बा० १९१॥ नामकरण के समय वसिष्ठ ने भी कहा था कि—'सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक विश्रामा' ॥ यह उक्ति सर्वत्र उत्कथित है।

इस दृष्टि से भी मानस का उद्देश्य भक्ति प्रचार ही लक्षित होता है।

अर्थवाद की दृष्टि से, मानस में राम का परब्रह्म एवं उस ब्रह्म राम की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए भक्तिमार्ग का ग्रहण, विस्तार से ऊपर प्रस्तुत किया गया है।

उपपत्ति के रूप में स्थान-स्थान पर आगम, निगम और पुराण, ऋषि मुनि और सतजनों आदि की वाणी का उपयोग करके सिद्ध किया गया है कि राम ही ब्रह्म हैं और इसी ब्रह्म की भक्ति से संसृति-क्लेष शमित हो सकता है।

अस्तु, जिस किसी भी दृष्टि से, अथवा जिस किसी भी स्तर से मानस की परीक्षा की जाय, सर्वत्र रामभक्ति प्रचार का भेरी-रव सुनाई पड़ेगा। अतः रामभक्ति-प्रचार को रामचरित मानस का उद्देश्य निश्चित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

१—तुलसीदास—डा० मानाप्रसाद गुप्त पृ० ३८२। २—वही पृ० ३८२।
३—'ग्यान मोक्षप्रद वेद बखाना'।

मानस का काव्यरूप

मानस के काव्य-रूप को लेकर विद्वानों के मध्य तीन प्रकार के प्रश्न उठाए जाते हैं—

(१) मानस महाकाव्य है।

(२) मानस चरित-काव्य अथवा कथा-काव्य है।

(३ , मानस पुराण काव्य है।

महाकाव्य और रामचरित मानस —भारतीय आचार्यों द्वारा निरुपित महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण बहुत कुछ उसके वाह्य रूप को ही प्रकट करता है, अन्त पक्ष को उद्घाटित करने वाला महाकाव्य का लक्षण इन ग्रन्थों में नहीं मिलता। वस्तुतः अन्त पक्ष किसी भी कृति का प्राण-पक्ष होता है, वाह्य-साहश्य-विधान तो उसका शरीर पक्ष अथवा परिधान मात्र है। मूर्ति में पूर्णतः प्रतिमूर्त मनुष्य की अनुकृति को मनुष्य नहीं कहा जा सकता है। महाकाव्य के समस्तवाह्य लक्षणों से समन्वित 'साकेत'को महाकाव्य कहना थोड़ा कठिन है जब कि उन लक्षणों से विहीन 'कामायनी' को बहुत कुछ अशों में समझा जा सकता है। अत' प्राण-तत्व के आधार पर ही आकलन समीचीन होता है। वगला महाकाव्य 'मेघनाथ-बध' की आलोचना करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस ओर जो सकेत किया है, वह मननीय है —

"मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है, तब कवि उसे गीत-काव्य में प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना-राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य-चरित्र का उदार महत्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मदिर निर्माण करते हैं। · इसी को महाकाव्य कहते हैं।"[१] इससे स्पष्ट है कि नायक का व्यक्तित्व

[१] —मेघनाथ-बध महाकाव्य की भूमिका—मतामत पृ० १५७–१५८।

ही महाकाव्य का प्रमुख लक्षण है, अन्य उसके बाह्य उपादान हैं। यद्यपि अरस्तू ने 'कार्य' के 'अनुकरण' के सिद्धान्त के आधार पर कथा को ही मुख्य माना है और नायक के व्यक्तित्व को गौण[1] परन्तु आज अरस्तू का यह सिद्धान्त कट गया है। देश विदेश के साहित्य में महाकाव्य के लिए मानव का नायकत्व स्वीकृत हो चुका है।[2] अतः 'मानस' के महाकाव्यत्व की परीक्षा भी नायक के आधार पर होनी चाहिए।

मनुष्य की अपरमिति शक्ति में अदम्य विश्वास होने के कारण चरित-नायकों, दुर्दम योद्धाओं और आदर्श व्यक्तियों की कभी अलौकिक शक्तियों से व्युत्पत्ति बतलाई गई है तो कभी इनके कार्यों के सम्मुख देवों को भी नीचा दिखाया गया है। यह सब कुछ हुआ है परन्तु काव्य का नायक मनुष्य ही रहा है ब्रह्म नहीं। जेम्स हेस्टिंग्स ने अपने विश्वकोष में इसी आशय की पुष्टि करते हुए लिखा है कि महाकाव्यों के नायक होने वाले देव इत्यादि अवरोहित देव अर्थात् मनुष्य ही होते हैं।[3] होमर के नायक एचिल्स की उत्पत्ति दैवी शक्ति से हुई है, उसके अद्भुत कार्यों पर देवों द्वारा प्रसन्नता भी व्यक्त की गई है, फिर भी वह मनुष्य हैं। भारवि के किरातार्जुनीय-युद्ध में अनादि शक्ति शिव के साथ युद्ध करके अर्जुन अपनी अलौकिक शक्तिका परिचय देते हैं, फिर भी मनुष्य हैं। अन्यत्र भी यही बात है। यदि कहीं ब्रह्म के रूप में प्रख्यात अवतारी पुरुष ने महाकाव्य का नायकत्व किया भी है तो उसका चरित्र आद्यंत मानव-रूप में ही रह गया है। 'रघुवंश' में राम विष्णु के अवतार हैं, किन्तु मनुष्य

1—"The fable, then, is the principal part—the soul, as it were—of tragedy, and the manners (characters) are next in rank " Aristotle 'Poetics', translated by Thomas Twining, Part II Chap.III

2—W M Dixon, English Epic and Heroic Poetry, P 21

3—We thus see that epic heroes may be men, historical or fictions on the other hand they may be gods and devine beings on the decline. Heroes and Heroic gods, 661 Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol vI.

रूप प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य ही रहे। माघ कृत 'शिशुपाल-वध' के कृष्ण के भी विषय में यही बात है। परन्तु मानस के राम मनुष्य होते हुए भी मनुष्य नहीं, ब्रह्म ही हैं। वह तो भक्तों के मनरंजन के लिए लीला मात्र कर रहे हैं। काकभुशुंडि ने कहा है:

यथा अनेक भेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ॥

यदि इस कपट चरित में भी निरन्तरता होती तब भी कोई विशेष व्यवधान नहीं था। निर्गुण ब्रह्म की सगुण लीलाएँ मानव चरित के अंतर्गत आती हैं और इसी पर अनेकों महाकाव्यों की रचना हुई है। पर यहाँ तो आद्यत 'कपट-चरित' है, कभी भी वह मानव सा होने ही नहीं पाया है। यही मानस के वक्ताओं का अभिप्रेत भी था। यह महाकाव्य के नायक से अधिक पुराण-काव्य के नायक का ही लक्षण है। मानस का उद्देश्य भी यही था।

नायक के साथ ही उसकी कथा पर भी थोड़ा सा विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं है। नायक के कार्यों की गाथा को ही कथा कहते हैं।[1] अतः महाकाव्य की कथात्मकता पर देशी-विदेशी विद्वानों का एक मत है। मिस मेयर्स (Miss Myres) ने तो महाकाव्य के जिस एक तत्व पर समस्त आलोचकों को एकमत बताया है—यह है महाकाव्य की कथात्मकता।[2] भारतीय आचार्यों ने तो कथा के सुगठन के लिए संधियों, सर्गों आदि की बड़ी उच्च व्यवस्था की है। पश्चिमी विद्वान भी इस तथ्य से अवगत हैं। डब्ल्यू० यम० डिक्सन की मान्यता है कि क्या पूर्व और क्या पश्चिम, क्या उत्तर और दक्षिण, सर्वत्र महाकाव्य की प्रकृति और प्राण समान होता है। उसने इसी आधार पर महाकाव्य का सर्वमान्य लक्षण देते हुए बताया है कि महाकाव्य सदैव कथात्मक (Narrative) और आवयविक (organic in structure) होता

---

1 "The imitation of the action is .the fable" Poetics, Part II chap II

2 दे० C M Gayley and B P Kurtz—Method and Materials of Literary Criticism.

है।[1] अतः उपरोक्त आधार पर महाकाव्य में कथानक की एकरूपता एव आवश्यकता अत्यावश्यक है।

मानस में कथानक के ढंग का कथानक नहीं है। चारों वक्ताओं द्वारा स्थल-स्थल पर चार भिन्न प्रकार के संबोधनों और संकेतक उक्तियों के प्रयोग से कथा सदैव खंडित रूप में आई है। यदि एक ही वक्ता-श्रोता होते तो इस ढग की बात न होने पाती। कथा के इस खंड-रूप के ही कारण, संभवतः मानस में सर्ग-पद्धति का प्रयोग नहीं हुआ है। कार्य-अवस्थाओं और संधियों का भी ठीक निर्वाह नहीं हो सका है, इस पर आगे चल कर विचार किया जायगा। परन्तु फिर भी, राम की अति प्रसिद्ध कथा के कारण, मानस की कथा ऊपर से विशेष खंडित नहीं लगती है।

मानस के आरंभ में जिस प्रकार की विस्तृत प्रस्तावना और अन्त में जिस प्रकार के उपसंहार की व्यवस्था है, इस प्रकार की चीज महाकाव्यों में नहीं मिलती है। रघुवंश, शिशुपाल-वध आदि सबमें कथा सीधे ढग से आरंभ हो जाती है।

अतः मानस को केवल महाकाव्य कहना ठीक नहीं। वस्तुतः महाकाव्य के कतिपय लक्षणों अथवा उसकी प्रतिबिम्बित छाया के आधार पर किसी भी कृति को महाकाव्य कहना सार-युक्त नहीं है। यहाँ हमें ऐबरक्राम्बी की एक उक्ति याद आती है। उसने कहा है कि—'जिस प्रकार किसी भी कविता के प्रगीत (lyric) न होने पर उसमें प्रगीतात्मक तत्व सन्निविष्ट हो सकते हैं उसी प्रकार किसी भी काव्य के महाकाव्य न होने पर भी उसमें महाकाव्यात्मक तत्व मिल सकते हैं।[2]'

मानस को मात्र महाकाव्य कहना, इसको अन्यान्य त्रुटियों से मंडित करना है। तुलसीदास ने तो वस्तुत ग्रन्थ के उद्देश्य के अनुसार इसका रूप चुनकर तत्कालीन कतिपय चरितकाव्यों की शैली में इसे प्रस्तुत कर दिया है। अत.

1—W M Dixon—English Epic and Heroic Poetry, P 24

2—"But as a poem may have lyrical qualities without being a lyric, so a poem may have epical qualities without being an epic.

L Abercrombie, The Epic, P 52

मानस की परीक्षा भी इसी दृष्टि से होनी चाहिए। नाम वही अच्छा होता है जो उस वस्तु के गुणों का प्रतिनिधित्व करे। किन्तु मात्र 'महाकाव्य' कहने मे मानस का 'उद्देश्य' किसी भी प्रकार से प्रतिध्वनित नहीं हो सकता है। यह भी बात नहीं है कि महाकाव्य न कहने से मानस के गौरव पर किसी प्रकार का आघात पहुँचे। भागवत का जितना गौरव है उतना न तो रघुवश का ही है न शिशुपालवध आदि का ही। अत प्रत्येक दृष्टि से मानस को महाकाव्य न कहना ही उपयोगी लगता है।

चरितकाव्य और रामचरित मानसः—अपभ्रंश के चरित काव्यों की परम्परा के अन्तर्गत हिन्दी के मध्य कालीन प्रबधकाव्यों का विकास होता रहा है। प्राकृत काल के पश्चात अपभ्रंश काव्य की दो धाराएँ स्पष्ट हो गई थीं—एक थी स्वयम्भू के 'पउम चरिउ' आदि की पौराणिक धारा और दूसरी थी जसहर चरिउ, णयकुमार चरिउ आदि की प्रेमपरक काव्यधारा। 'मानस' प्रथम के अन्तर्गत है जब कि पद्मावत द्वितीय के अन्तर्गत है। यहाँ, चरित काव्यों की सामान्य विशेषताओं का उद्घाटन करने से पूर्व यह भी ध्यान देने की बात है कि प्रायः सभी चरित काव्यों ने अपने को कथा कहा है और यह प्रणाली बहुत बाद तक चलती रही है। राम चरित मानस को गोस्वामी जी ने कितनी ही बार कथा कहा हे। विद्यापति ने 'अवहट्ट भाषा' की छोटी सी रचना कीतिलता को कहाणी या कहानी (कथानिका) कहा है—'पुरिस कहाणी हउँ कहउँ।' पृथ्वी-राजरासो में कई बार उस काव्य को 'कीर्तिकथा' कहा गया है। यह एकीकरण मात्र नाम का ही रहा हो ऐसी बात नहीं। वस्तुतः कथा-साहित्य की विशाल परम्परा का चरित-काव्यों पर बहुत प्रभाव पड़ा है और एक प्रकार से 'कथा' को इस प्रकार के काव्यों की आधार-शिला भी कहा जा सकता है। इसीलिए 'कथा' के सामान्य लक्षणों को देख लेना चाहिए तभी चरित-काव्यों के स्वरूप का निखार सभव हो सकेगा।

सस्कृत लक्षण-ग्रन्थों में 'कथा' शब्द का प्रयोग एक निश्चित काव्य-रूप के अर्थ में हुआ है। इसी श्रेणी की एक और गद्यबद्ध रचना होती थी जिसे आख्यायिका कहा जाता था। भामह ने 'काव्यालकार' में आख्यायिका एव कथा का लक्षण इस प्रकार बतलाया है। (१) आख्यायिका सुन्दर गद्य में लिखी सरस रचना होती है (२) कहने वाला स्वय नायक होता है और उच्छ्वासों

में विभक्त रहती है (३) बीच बीच में वक्त्र और अपवक्त्र छन्द आ जाते हैं (४) कन्या-हरण, युद्ध, विरोध और अन्त में नायक की विजय होती है (५) कथा, आख्यायिका से थोड़ा भिन्न होती है (६) कहानी, नायक द्वारा नहीं अपितु दो व्यक्तियों के बातचीत के रूप में कही जाती है (७) न तो वक्त्र-अपवक्त्र छंद होते हैं और न उच्छ्वास-संज्ञक अध्याय (८) भाषा का भी बंधन नहीं होता है।

दंडी ने 'काव्यादर्श में 'काव्यालंकार को सम्मुख रखकर कहा है कि वस्तुत कथा एवं आख्यायिका में कोई भेद नहीं है।[1]

रुद्रट के लक्षण इस प्रकार हैं (१) आरम्भ में देवता या गुरु की वंदना हो (२) ग्रन्थाकार के कुल का परिचय हो (३) कथा लिखने का उद्देश्य हो (४) प्रथमतः एक कथान्तर हो जो प्रधान कहानी का प्रस्ताव कर सके (५) सरस वर्णनों से परिपूर्ण कन्या प्राप्ति ही प्रधान प्रतिपाद्य विषय हो।[2]

साहित्य-दर्पणकार द्वारा कथा के निरूपित लक्षण प्रायः उपरोक्त लक्षणों के ही समवाय हैं। उन्होंने बतलाया है कि कथा में सरस वस्तु गद्यों के द्वारा ही बनाई जाती है। इसमें कहीं-कहीं आर्या छंद और कहीं वक्त्र तथा अपवक्त्र छंद होते हैं। प्रारम्भ में पद्यमय नमस्कार और खलादिकों का चरित्र निबद्ध होता है। जैसे कादम्बरी।[3]

अतः कथा एवं आख्यायिका के लक्षणों को एक साथ देखने से 'कथा' का पूर्ण स्वरूप स्पष्ट हो सकता है[4] और चरित-काव्यों के समान्य लक्षण भी

१—काव्यादर्श, अ० परिच्छेद २३–२८। २—काव्यालंकार अध्याय १६।

३—साहित्य-दर्पण, षष्ट परिच्छेद, ३३२-३३३।

४—यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि कथा एवं आख्यायिका में कल्पना और इतिहास तथा गद्य और पद्य का भेद समाप्त हो गया था। दंडी ने संभवत इसीलिये दोनों में भेद नहीं माना है साहित्य दर्पणकार ने दोनों को समान, घोषित किया है–'आख्यायिका कथावत्स्यात' षष्ट परिच्छेद ३३४-१॥ यही बात गद्य पद्य के लिये भी है। रुद्रट ने अन्य भाषाओं में कथा को पद्य में लिखने का उल्लेख किया है। 'आदि-काल'.में डा० द्विवेदी ने संभावना प्रकट की है कि गुणाढ्य की बृहत्कथा 'पद्य' में थी।

निर्धारित किये जा सकते हैं। अब, इन लक्षणों की आधार-भूमि पर मानस का रूप-निर्णय किया जायगा। एक विशेष बात यह कहनी है 'कि संस्कृत आलंकारिकों द्वारा निरूपित लक्षण, प्रायः वाह्य-पक्ष अथवा शरीर-पक्ष सम्बन्धी हैं इनमें आत्म पक्ष की विवृत्ति का लगभग अभाव दिखलाई पड़ता है। इसलिए 'कथा' की शास्त्रीय परिभाषा के परिपार्श्व में चरित्र-काव्यान्तर्गत, मानस का अणुवीक्षण विशेष सतर्कता से होना चाहिए और प्राणिपक्ष की सामान्य अन्त-वृत्तियों की परख के लिये लक्षण ग्रन्थों की ओर नहीं, लक्ष्य-ग्रन्थों की ओर उन्मुख होना ही श्रेयस्कर है। अतः यहां इसी पद्धति के अनुसरण का यथाशक्ति प्रयत्न किया जायगा।

चरितकाव्य और मानस :—पौराणिक शैली के चरित काव्यों की भाँति मानस में धर्मकथा एव प्रबधकाव्यत्व का सुन्दर समन्वय हुआ है। धर्मकथाएँ चरित, कथा आदि नाम से लिखी जाती थीं। मानस में चरित, कथा और गाथा तीनों ही नाम आया है। पुस्तक के नाम में भी चरित शब्द है—यथा 'रामचरितमानस'। चरित, कथा, और गाथा कहने का स्पष्ट अर्थ यही होता है कि कवि ने इसकी परम्परा का अनुगमन किया है। आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा है कि वस्तुतः तुलसीदास जी ने जब एक बार अपनी रचना को 'कथा' कह दिया तो उन्होंने उन रुढियों का विधिवत् पालन किया जो प्राकृत और अपभ्रंश-कथाओं के लिए आवश्यक समझी जाती थीं।[1]

ग्रन्थ के आरम्भ में विस्तृत प्रस्तावना की समूची शैली चरित काव्यों की है। यद्यपि आलंकारिकों ने महाकाव्य के लिए मगलाचरण, सज्जन-दुर्जन-चर्चा, वस्तु-निर्देश, पूर्वकवि-चर्चा आदि का विधान निर्देशित किया है, किन्तु आरभिक महाकाव्यों में जहाँ इसका पूर्णत अभाव है वहाँ परवर्ती महाकाव्यों में अत्यंत संक्षिप्त वर्णन है। मानस में प्रारम्भ के ४३ दोहों में बड़े विस्तार से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सरस्वती गणेश, हनुमान आदि देवों की वन्दना, सत्संग-महिमा, दुर्जन-स्वभाव, राम-नाम-माहात्म्य, रामकथा-महिमा, वस्तु-निर्देश आत्म-निवेदन, काव्य का रचना-काल और कथा की मुख्य घटनाओं का वर्णन हुआ है। इसके

१—आचार्य द्विवेदी—आदिकाल—पृ० ५८।

पश्चात् दोहा न० १०४ नक शिवचरित और फिर दोहा नं० १८७ तक राम की पूर्वकथा की विस्तृत विवृत्ति होती है। यह परंपरा स्पष्ट रूप से चरित काव्यों की है। पूर्वकथा अथवा सेतु-कथा की परम्परा पुराणों में भी प्राप्त होती है।

परवर्ती चरित काव्यों में कथा की ओर झुकाव मंद पड़ने लगा। प्रणेता की दृष्टि रस पर ही उलझ गई। मानस में भी कथा मुख्य नहीं है, मुख्य है रस और नायक। अयोध्याकांड के अंत तक तो कथा की पूरी गति-विधि इस ढग से चलती है कि कवि को रसोद्रेक के लिए अधिकाधिक प्रसंग उपलब्ध होते रहें। इसीलिए उसने वाटिका-प्रसग, विवाह-प्रसंग, और वनगमन के समय ग्रामवासियों की आतुरता, जिज्ञासा, चिन्ता और प्रेमकी इतनी विशद-योजना की है। अरण्यकांड से रस और कथा दोनों ही अपेक्षाकृतगौण हो जाते हैं और चरित्र प्रधान हो जाता है। परन्तु यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि चरितकाव्यों में रसोद्रेक के लिए जिस पद्धति का अनुसरण किया जाता था और एतदर्थ अलंकारो की संश्लिष्ट योजना को जिस प्रकार महत्व दिया जाता था, वह प्रवृत्ति मानस में कम है।

'कथा' का मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रुपराजय था। कहने के लिए मानस में भी इसे कुछ अश में देखा जा सकता है, यद्यपि यह सब कुछ राम-कथा का आदि रूप है और जैसा कि दंडी ने निर्देश किया है सर्गवद्ध शैली के महाकाव्यों में भी इन कार्य-व्यापारो का विधान मान्य ठहराया गया है[1] फिर भी चरितकाव्यों की कुछ छाप तो पड़ ही गई है। मानसमें वाटिका-प्रसग की योजना पर प्रेमलीला की परम्परा की स्पष्ट छाप है। विषय के अनुकूल मानस में भी प्रेम और वीरता का समन्वय किया गया है। रामद्वारा सीता की प्राप्ति में प्रेम और वीरता दोनों की चरम परिणति दिखाई गई है। वाल्मीकीय रामायण से भिन्न जनकपुर में ही परशुराम प्रसंग की योजना पर चरितकाव्यों का स्पष्ट प्रभाव है। आचार्य शुक्ल जी ने भी इसे, नायिका पर नायक के व्यक्तित्व की अधिकाधिक छाप डालने के लिए वीर-गाथाओं की परम्परा बताया है।[2] इसी प्रकार वनवास, हरण, सेतुबंध, दीपान्तर यात्रा, पत्नी-प्राप्ति आदि पर भी चरित काव्यों का प्रभाव देखा जा सकता है। संभव है इस शैली पर

१—काव्यादर्श, प्र० परि०, २६।

२—आचार्य शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७५।

रामायण एव महाभारत का भी प्रभाव पड़ा हो। फिर भी इतना तो असदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि चरितकाव्यों की अपेक्षा मानस में मर्यादा एवं आध्यात्मिकता अधिक है।

चरित काव्यों में शान्त रस की प्रधानता होती थी। मानस में शान्त रस की धारा बहती है जो बहुत कुछ भक्ति रस के रूप में है। इस परम्परा के कारण गोस्वामी जी ने न तो 'रामायण' की भाँति 'मानस' का करुण अन्त ही कि ा है और न यत्र तत्र सर्वत्र वीर-रस की सरिता ही बहाई है।

'पउम चरिउ' के ढग के पौराणिक चरितकाव्य उपदेश की दृष्टि से लिखे जाते थे। मानस भी उपदेश की दृष्टि से लिखा गया है। पउमचरिउ में जातक-ग्रन्थों की भाँति निष्कर्ष-कथन में ही उपदेशात्मकता अधिक है पर मानस में तो उपदेशों की छटा सर्वत्र है।

मानस में वक्ता-श्रोता की विस्तृत परम्परा चरित काव्यों की ही शैली पर है। मानस में वक्ता-श्रोता की परम्परा इस प्रकार से है—

(१) शिव से कुभुज, लोमस, काकभुशु डि एव पार्वती ने प्राप्त किया।
(२) लोमस से काकभुशु डि ने।
(३) कुभज से सनकादि ने।
(४) काकभुशु डि से गरुड़ एव याज्ञवल्क्य ने।
(५) याज्ञवल्क्य से भरद्वाज, भरद्वाज से नरहरि और नरहरि से तुलसी ने प्राप्त किया।

पउमचरिउ में भी वक्ता-श्रोता की ऐसी ही परम्परा है। राम-कथा रूपी नदी अतिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के मुख-कुहर से निकली फिर इन्द्रभूति, अनुत्तरवादी कीर्तिधर, कविराज रविषेण आदि द्वारा यह परम्परा आगे बढाई गई है। स्वम्भू ने इसी परम्पराका वर्णन श्रेणिक और गणधर गौतम के सवाद के रूप में किया है।

वद्धमाण-मुह-कुहर विणिग्गय। रामकहा णइ एह कमागय ॥१
एह रामकह-सरि सोहन्ती। गणहर-देवहि दिट्ठ बहन्ती ॥६
पच्छइ इन्दभूइ आयरिएँ। पुणु धम्मेण गुणालकरिएँ ॥७

पुणु पहवें संसारा राएँ। कित्तिहरेण अणुत्तरवाएँ।
पुणु रविषेणा चरिय-पसाएँ। बुद्धिएँ अवगाहिय कइराएँ ॥६॥

पउमचरिउ पढ्यो सधि २-१-११ ॥

जिस प्रकार मानस के श्रोता अपनी शंका उपस्थित करते हैं ठीक उसी ार श्रेणिक ने समवयण के समय महावीर के सम्मुख अपनी शंका उपस्थित थी।

वक्ता-श्रोता परम्परा की दृष्टि से मानस चरितकाव्यों के निकट अवश्य हैं न्तु मानस में कई जोडे वक्ता-श्रोता का विधान पुराणों का प्रभाव है। आचार्य वेदी ने लिखा है कि मानस-सा वक्ता-श्रोता का जटिल विधान चरित काव्यों अभी नहीं देखने में आया है।[1]

मानस में चरित काव्यों की कथानक-रूढियों (मोटिव्स्) का अधिक प्रयोग आ है। भारतीय साहित्य की कथानक-रूढियों पर व्लूमफील्ड, पेन्जर डब्ल्यू०, र्मन ब्राउन आदि ने अच्छा प्रकाश डाला है। वाटिका अथवा मन्दिर (शिव-न्दिर) में नायक-नायिका का दर्शन अथवा नायक द्वारा नायिका का अपहरण चीन भारतीय 'अभिप्राय' है। 'पृथ्वीराज रासो' में शशिव्रता सखियों के साथ व मदिर में जाती है। यहीं से पृथ्वीराज इसका हरण कर लेते हैं। 'पद्मावत' अपनी सखियों के साथ पद्मिनी शिव मदिर में आती है और वहीं रत्नसेन भी हुँचता है। मानस में सीता भी सखियों के साथ गौरी-पूजन के लिए आती और वहीं राम को देखकर आकर्षित हो जाती है। ठीक इसी प्रकार से अन्य थानक रूढ़ियाँ भी देखी जा सकती हैं: यथा, (१) नायिका को प्रभावित रने के लिए राम द्वारा परशुराम का मिथिला में मानभंग (२) गौतम का जाड़ आश्रम और वहाँ शिलारूप अहल्या की उपस्थिति—रामायण में अहल्या दृश्य है, अध्यात्म रामायण में शिला में निवास कर रही है पर मानस मे थानक रूढियों के आधार पर शिला हो गई है (३) मत्रास्त्रों का प्रयोग (४) ाहल वानर भालुओं का गुफा-प्रवेश, वहाँ एक नारी का दर्शन। उसकी शक्ति आँख मूँदते ही सबका समुद्र-तट पर पहुँच जाना (५) रूप-परिवर्तन-मारीच, नुमान आदि द्वारा (६) धौलागिरि पर्वत लाना आदि।

१—आचार्य द्विवेदी - वही०, पृ० ९८।

मनुष्य की शक्ति में अपरमिति विश्वास होने के कारण सदैव अलौकिक और अतिप्राकृत कार्यों की बहुलता रही है। तथ्य कम और सभावना अधिक उभड़ पाई है। मानस में यह सब कुछ है।

मानस की कडवक शैली चरित काव्यों की है। प० नाथूराम प्रेमी ने लिखा है कि एक कडवक आठ 'यमकों' का तथा एक यमक दो पदों का होता है।[१] आचार्य हेमचन्द के अनुसार चार पद्धड़िया अर्थात् आठ पक्तियों का कडवक होता है। कडवक के अत में धत्ता या ध्रुवक होता है। कथा काव्य में इसका खूब प्रयोग हुआ है। तुलसीदास के रामायण में इसी कडवक पद्धति को आठ या कुछ कम-अधिक चौपाइयों के बाद दोहा का घत्ता देकर स्वीकार किया गया। चूँकि मानस में घत्ता के स्थान पर दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है अतः पूरे कडवक को एक दोहा भी कहा जाता है। धत्ता के स्थान पर अन्य छन्दों का प्रयोग अपभ्र श के अन्य चरित काव्यों में भी हुआ है। आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि कथा-काव्य में चौपाई दोहा का क्रम सभवतः पूर्वी प्रदेश के कवियों द्वारा प्रारभ हुआ है, यद्यपि इसका बीजरूप प्राचीन बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं में मिल जाता है।[२] मानस पर इस कडवक शैली का प्रभाव पूर्वीय कवियों के अनुगमन पर पड़ा होगा।

इस प्रकार शैली की दृष्टि से मानस पूर्णरूपेण चरित काव्यों की परम्परा में आता है। परन्तु यहाँ गोस्वामी जी की इस उक्ति को भी देख लेना उचित है। उन्होंने कहा है कि—

साखी सबदी दोहरा कह किहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं लोग सब निन्दहिं बेद पुरान॥

इससे जो सकेत होता है उससे इस आशय की पुष्टि होती है कि गोस्वामी जी ने भाव-क्षेत्र में चरितकाव्यों की परम्परा का अनुकरण प्रायः नहीं किया है। इसके लिए पुराणों की ओर उन्मुख होना आवश्यक है।

पौराणिक शैली की विशेषताएँ--मानस में पौराणिक शैली के अन्तर्निवेश को देखने से पूर्व आवश्यक है कि पुराणों के लक्षणों से परिचय कर

१—दे० आचार्य द्विवेदी, आदिकाल, पृ० ६४।
२—दे० वही० पृ० ६६।

लिया जाय। पुराणों के वास्तविक स्वरूप को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। विष्णु-पुराण के प्रसिद्ध अनुवाद प्रो० विलसन ने तो कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाएँ हैं और 'ब्रह्मपुराण' आदि को पुराण-लक्षण-हीन माना है। यों तो पुराण का शाब्दिक अर्थ प्राचीन आख्यान, पूर्वतन [1] आदि ही होता है परन्तु इन अर्थों से पुराणों के स्वरूप पर समुचित प्रकाश नहीं पड़ता है। पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया पर विचार होता था, इसका संकेत शंकराचार्य के 'बृहदारण्य भाष्य' के एक श्लोक से लगता है···पुराणमसद्वाऽइदमग्र आसीदित्यादि'। 'ऐतरेय ब्राह्मणोपक्रम' में सायणाचार्य ने थोड़ा और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—'देवासुराः समता आसन्नित्यादय इतिहासाः। इदं वा अग्रणैव किंचदासीदित्यादिक जगतः प्रागवस्थानुपक्रम्य सर्गप्रतिपादक वाक्य जात पुराणम्'। इसी प्रकार पौराणिक तत्वों का विश्लेषण करके अनेक प्रकार के लक्षण बतलाए जाते हैं। कुछ विद्वान तो दस लक्षण तक मानते हैं, पर पंचलक्षणों का विशेष महत्त्व है। ये पंच लक्षण हैं (१) सर्ग का सृष्टि तत्व (२) प्रति-सर्ग अथवा पुनर्सृष्टि और लय (३) देव और पितरों की वंशावली (४) समस्त मन्वन्तरों का विवरण और (५) वंशानुचरित या सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओं का संक्षिप्त इतिहास।[२] इन लक्षणों से पुराणों की बाह्य-रूपरेखा का परिज्ञान तो हो जाता है परन्तु उस पौराणिक प्रवृत्ति का तनिक भी आभास नहीं मिल पाता जिसको लेकर एक ओर पुराणों में ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा का अभ्युदय हुआ तो दूसरी ओर जनता में अनुकरण की अभिलाषा जाग्रत हुई। साथ ही इनके लक्षणों में भी स्थिरता नहीं रह सकी, उसमें क्रमिक विकास होता रहा है। 'बृहदारण्यक भाष्य' के लक्षणों से ये 'पंचलक्षण' एक पग आगे हैं और 'पंचलक्षणों से, महाभारत के 'आदिपर्व' में लिखित महर्षि शौनक का यह लक्षण और भी आगे है—

> पुराण हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम।
> कथान्ते ही पुरास्यामिः श्रुतपूर्व पितुस्तव.॥

अतः यहाँ पौराणिक लक्षणों का नहीं प्रवृत्तियों का चयन ही अधिक उपादेय प्रतीत होता है।

1—Encyclopaedia Indica Vol XIII 1927, J B A S Calcutta.

१—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितंचैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

पुराण रचना का मूल उद्देश्य अवतारवाद की प्रतिस्थापना और भक्ति प्रचार करना होता था इसपर विचार करते हुए विंटरनित्स ने बतलाया है कि प्रत्येक में किसी-न-किसी देवता अथवा अवतार को आधार मान कर किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रचार किया गया है।[1] यद्यपि कि सुप्रसिद्ध विद्वान श्री अक्षयकुमार दत्त इसे नही मानते और उनका निश्चित विश्वास है कि पुराणों में मात्र पंचलक्षण ही होते हैं देवार्चन, धर्मोपदेश, देव-देवी माहात्म्य कथन आदि नहीं, अन्यथा इस प्रकार के ग्रन्थों का सूतों (निकृष्ट-जाति) के हाथों में पड़ना ब्राह्मण कभी भी सहन न करते। परन्तु श्री दत्त जी के प्रश्न के उत्तर में तीन बातें कही जा सकती हैं। प्रथम तो यह है कि (१) अभी यही नहीं निश्चित हो पाया है कि आरम्भिक युग में परवर्ती युग की भाँति सूत निकृष्ट व्यक्ति ही होते थे अथवा सम्मानित और उच्चकुलीय भी। (२) दूसरा यह कि यदि पुराण धार्मिक ग्रन्थ न होते तो 'मनुसहिता' में 'आगकाल' में ब्राह्मणों को पुराण सुनने का कार्य क्यों बताया जाता। (३) तीसरा यह है कि इन्हीं पाँच लक्षणों को लेकर ही विषय का प्रतिपादन करना होता तो १८ पुराण क्यों लिखे जाते, एक ही दो पर्याप्त होते। सत्य तो यह है कि त्रिवेदों की उपासना, पूजन-प्रचार आदि अन्यान्य मन्तव्यों को ही ले कर पुराणों का निर्माण हुआ और किसी में एक देव का तो किसी में दूसरे देव का महत्व निर्देशित किया गया। वेदों के सत्य ज्ञान अनत ब्रह्मने पुराणों में सौंदर्य-मूर्ति तथा पतित-पावन भगवान के रूप में अपने को प्रकाशित किया।[२]

मान्यताओं को सुस्थिर स्वरूप देने के लिए पुराणों ने 'आग्रह मार्ग' का अवलम्ब लिया है। कारण यह कि इनकी स्थापनाओं की भित्ति का तर्काधार पर अवलम्बित रहना कठिन था और फिर तर्क बुद्धिसापेक्ष होने के कारण स्वय अस्थिर है। इसलिए पुराणों ने पाप पुण्य, नरक-स्वर्ग, दुःख-सुख आदि का विधि-विधान दिखलाकर, जनसामान्य के हृदय को आकर्षित करने का कार्य

1—A History of Indian literature—M Winternitz—Vol 1 P 522

२—भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय· पृ० १४१ · ना० प्र० सभा, काशी : प्र० संस्करण २०१०

किया। तत्त्वचिन्तकों द्वारा गृहीत सत्य को पुराणों में अलौकिक कथा-कहानियों आदि के माध्यम से नूतन रूप में व्यक्त किया गया और उसकी स्वीकृति के लिए जनता में विश्वास का उदय किया गया। यथा, 'ऋक् संहिता' के इस सत्य—'इदंविष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांसुरे'—के आधार पर सम्पूर्ण वामन-कथा ही निर्मित कर ली गई।

'आग्रह मार्ग' के लिए आगम-निगम आदि की दुहाई दी गई है। वस्तुतः भारतीय चिन्ताधारा की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि किसी भी हिन्दू विचारक ने वेदों के आप्त-वचनों पर आज तक प्रश्नवाची चिन्ह नहीं लगाया है चाहे शंकराचार्य का मायावाद रहा हो, चाहे वल्लभ का द्वैतवाद और चाहे दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज—सबने आधार-भूमि के रूप में वेदों का ही आश्रय लिया है। ऐसा अपने कथन की पुष्टि के निमित्त हुआ है अथवा किसी धार्मिक व्यामोह आदि के कारण हुआ है ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर, पुराणों का सगुण मतवाद और नाना विधि-निषेध किसी न किसी रूप में वेदादि उक्तियों का सहारा लिए बिना टिक ही न पाता। संभवतः इसीलिए समस्त पुराणों के प्रणेता वेदव्यास ही माने गए हैं।

वक्ता श्रोता की परम्परा अथवा संवाद-शैली का आरम्भ पुराणों से माना जाता है। सूत-शौनक के माध्यम से सम्पूर्ण कथा कही जाती थी। पुराणों में प्रचलित संवाद शैली की इसी विशेषता के कारण, वेदों में उल्लखित यम-यमी, उर्वशी-पुरुरवा आदि के संवादों को कितने ही विद्वान पौराणिक मानते हैं।[1] शंकराचार्य ने 'बृहदारण्यक-भाष्य' में जो लिखा है, वह इसी का संकेतक है। उन्होंने लिखा है—"इतिहास इत्यूर्वशीपुरुरवसोः संवादादिरुर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणम' अर्थात् उर्वशीपुरुरवा के कथोपकथनादि की शैली के कारण ब्राह्मण भाग का नाम इतिहास है। पहले इतिहास एवं पुराण समान अर्थ में अभिहित होते थे। जनता के बीच, वक्ता-श्रोता की इस पौराणिक शैली की विशेषता मत-प्रतिपादन, कथा-विस्तार एवं कथा-संतुलन आदि के रूप में भलीभांति स्पष्ट हो गई थी। इससे असंभावित तथ्यों की अस्वाभाविकता भी मंद पड़ती थी। संभवतः इसी कारण मध्यकाल तक यह शैली बड़ी लोक-प्रिय रही।

1—History of Sanskrit Literature-Dr S, K, De, P, 43–44

पुराणों में उपदेशों की अधिकता होती है। इनका प्रणयन जिस उद्देश्य-विशेष से होता था उसकी परिपूर्ति के लिए उपदेश आवश्यक भी थे। कहीं तो उपदेश प्रत्यक्ष होता है और कहीं 'जातक' आदि ग्रन्थों की भांति कथा के निष्कर्ष में सन्निहित होता है।

साथ ही, पुराणों में जहाँ देव-देवताओं की स्तुति के लिए स्तोत्रों की अधिकता होती है वहीं तीर्थ-व्रत, पूजन-उपवास, भजन, धर्म-ग्रन्थ-पठन आदि का माहात्म्य भी कम नहीं वर्णित होता है। पद्मपुराण में मात्र 'एकादशी-व्रत' का माहात्म्य उत्तरखंड के अध्याय ३५ से ६५ तक कहा गया है। 'बृहद्धर्म पुराण' में मध्यखंड के १२हवें अध्याय से १८ वें तक गंगा-माहात्म्य ही है।

पुराण का अर्थ ही होता है पूर्वतन।[1] 'वायु-पुराण' और 'पद्मपुराण' में लिखा गया है कि जिसमें पूर्वकाल की परम्परा कही गई हो वह पुराण है।[2] अतः पूर्वकाल की परम्परा का कथन भी एक पौराणिक विशेषता है। वंशपरम्परा, भवान्तर और अवांतर वर्णनों का पुराणों में आधिक्य होता है। वंशपरम्परा का वर्णन तो पौराणिक लक्षणों में भी बतलाया गया है। इसी प्रकार भवान्तर अवांतर प्रसंगों अथवा कथाओं का उपयोग, मत-प्रतिपादन के लिए कथा के भीतर कथा कहने अथवा दृष्टांत रूप में अन्य प्रसंग उपस्थित करने में किया गया है। पुराणों में इन वर्णनों की इतनी प्रचुरता होती है कि कथानक ही विशृंखिल हो जाता है।

अस्तु, धार्मिकता से संबंधित होने के कारण, आज भी जनता के बीच पुराणों का मान-सम्मान धार्मिक-ग्रन्थ के रूप में हो रहा है।

पौराणिक शैली और रामचरित मानस —मानस रामावतार-प्रतिष्ठापक एवं रामभक्ति प्रचारक ग्रन्थ है, यह 'मानस का उद्देश्य' नामक प्रकरण में विवेचित हो चुका है। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनपेक्षित है। यहाँ एक ही महत्वपूर्ण प्रश्न शेष रह जाता है और वह है पात्र संबंधी। मानवीय क्शित की

१—'पुराभवमिति पुरा-ह्यु'

२—'पुराणों के महत्व का विवेचन' रायबहादुर पंड्या बैजनाथ—नागरी प्रचारिणी पत्रिका कोशोत्सव स्मारक संग्रह पृ० २६१।

हीनता प्रदर्शित करके देवताओं को मनुष्य-भाग्य का निर्माता बनाना और उनके विरुद्ध मानवीय-शौर्य को किसी काम का न सिद्ध करना, धार्मिक भावना है और साथ ही पौराणिक भी। सम्पूर्ण मानस में इसकी विवृत्ति यत्र-तत्र सर्वत्र हुई है। ब्रह्म राम त्रिदेवों को भी नचाते हैं फिर मनुष्य का क्या कहना—

जग पेखन तुम देखन हारे। बिधि हरि शंभु नचावन हारे।

उनके वैरी को, जयत की तरह कहीं भी आश्रय नहीं प्राप्त हो सकता है—

सब जग ताहि कालहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता

अरण्य कांड (१–२, ४)

रावणादि का राम से युद्ध करना सर्प के बच्चे का गरुड़ से लड़ना है और यह भी लीला की दृष्टि से ही। अतः इस दृष्टि से भी मानस में पौराणिकता की अधिकता है।

मानस में विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से 'आग्रह-मार्ग' का अवलम्ब भी कम नहीं है। प्रश्न का उत्तर प्रायः इधर उधर की कथा कहकर अथवा उस कथा के बीच एक ही तत्त्व की अनेक वार पुनरुक्ति करके दिया गया है और सतत प्रयत्न रहा है कि जनता पर उसकी छाप अमिट हो जाय। यह 'आग्रहमार्ग' तीन रूपों में देखा सकता है। (१) वक्ताओं द्वारा श्रोताओं की शंका-समाधान में (२) उद्देश्य-प्रतिपादन मे और (३) सिद्धान्तों के आद्यंत निर्वाह में।

प्रथम के अन्तर्गत भरद्वाज, पार्वती एवं गरुड़ की शंकाए ली जा सकती हैं। भरद्वाज की शका थी कि 'अवधिनृपति-सुत राम ही परब्रह्म राम है अथवा अन्य कोई।'[1]

इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य ऋषि ने दो चौपाइयो में राम-कथा की महिमा गाई है, तदुपरान्त सम्पूर्ण शिव-चरित सुनाया है। शिव-चरित सुनकर भरद्वाज मुनि पुलकित हो गए हैं।

'संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा॥'

१—मानस, दो० ४५, ३–, ४६॥

ध्यान देने की बात है कि प्रश्न पूछा जा रहा है कुछ, और उत्तर दिया जा रहा है कुछ, फिर भी श्रोता प्रसन्न हो रहा है। यही नहीं आरम्भ में जो याज्ञवल्क्य यह कह रहे हैं—

जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥

× × ×

चहहु सुने राम गुन गूढ़ा। किन्हिहु प्रस्न मनहु अति मूढ़ा॥

अन्त में वही याज्ञवल्क्य यह भी कह रहे हैं—

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विकार॥

बात समझ में नहीं आती कि जिसे 'रघुपति–प्रभुताई' विदित हो उसके मर्म को बूझने का क्या रहस्य हो सकता है। सच तो यह है कि जहाँ एक ओर भरद्वाज जैसे ऋषि को राम-चरित से अपरिचित न दिग्दर्शित कराके राम-चरित-माहात्म्य की रक्षा की गई है, वहीं शिव चरित द्वारा उनके मर्म की पहचान कराके शिव एव राम भक्ति को सापेक्ष ठहराया गया है। यहाँ प्रश्न का उत्तर कम और मन्तव्य-पूर्ति अधिक है। यही 'आग्रहमार्ग' है।

द्वितीय श्रोता पार्वती की शका भी देखिए :—

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरह भति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

इसका उत्तर उत्तेजित शिव भगवान इस प्रकार से देते हैं—

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥
अस निज हृदय बिचारि तजु ससय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम-तम रवि कर बचन मम॥

बालकांड ११५।

फिर क्या, पार्वती को तुरत ही प्रबोध हो जाता है —

ससि कर सम गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातम भारी॥
तुम्ह कृपाल सब ससउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥

आश्चर्य है कि जिस पार्वती को सती रूप में शिव द्वारा समझाने एवं राम द्वारा अलौकिक प्रभाव दिखलाने और परिणाम-स्वरूप जीवन के करुण अन्त होने पर भी बोध नहीं हुआ था[1], उसी पार्वती को यहाँ उत्तर-स्वरूप वर्णित कतिपय धमकियों से कैसे संतोष हो गया ! हाँ, भयवश स्वीकृति प्रदान कर दें, यह दूसरी बात है। याज्ञवल्क्य की ही भाँति शिव ने भी प्रथमतः पार्वती के विषय में कहा है—

राम कृपा तें पारवति सपनेहुँ तव मन माहिं।
लोक मोह संदेह भ्रम मम विचार कछु नाहिं ॥

परन्तु वही शिव फिर, आगे कहते हैं :—

एक बात नहि मोहिं सोहानी। जदपि मोहवस कहेउ भवानी ॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥

यह वही किस्सा है कि पीनेवाला कहे कि प्यास लगी है और पिलाने वाला कहे कि नहीं प्यास तो समाप्त हो गई है। यही आग्रह मार्ग है। काकभुशुंडि एवं गरुड़ का प्रश्नोत्तर भी कई कथाओं एवं उपकथाओं के साथ सिमटा है। श्रोताओं को प्रबोध देने के निमित्त वक्ताओं की यह प्रवृत्ति मानस भर में द्रष्टव्य है।

उद्देश्य-प्रतिपादन के लिए व्यवहृत आग्रह मार्ग को अगुण की अपेक्षा सगुण तथा ज्ञानादि की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ ठहराने की विधियों में भी देखा जा सकता है। कवि ने माना है कि—

अगुनहिं सगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं वेद पुराण बुध वेदा ॥

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम वस सगुन सो होई ॥

परन्तु इस तर्क में आग्रह के अतिरिक्त तनिक भी बौद्धिकता नहीं है। इसी प्रकार ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ ठहराने के लिये दो तर्क दिए गए हैं। प्रथम तो यह है कि ज्ञान विज्ञानादि पुरुष वर्ग के हैं और भक्ति नारी वर्ग की। चूंकि नारी, नारी के ऊपर मुग्ध नहीं होती[2] अत भक्ति के ऊपर भी माया का फंदा नहीं चल सकता है। दूसरा तर्क है कि ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा है और भक्ति का

१—अजहुँ कछु संसय मन मोरे। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे ॥
२—नारि न मोहैं नारी के रूपा। पिन्नगारि यह रूप अनूपा॥

सरल। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो सरल विधान हो वही सर्वोत्कृष्ट भी हो। प्रथम तर्क तो बच्चों का सा है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि उद्देश्य प्रतिपादन में भी आग्रह मार्ग का सहार लिया गया है।

अब देखना है सिद्धान्तोंके आद्यत निर्वाह को। इसके विषय में किसी निश्चित आधार-शिला को नहीं ग्रहण किया गया है यहाँ एतदर्थ राम के स्वरूप ज्ञान पर विचार किया जा सकता है। प्रश्न यह उठता है कि मानस के पात्रों को राम के स्वरूप का ज्ञान कैसे और किस आधार पर हुआ है। क्षण भर के लिए मान लिया जा सकता है कि राम के असाधारण रूप-सौंदर्य एव शील-गुण को देखकर लोगों ने उनके वास्तविक स्वरूप को पहिचाना था। परन्तु इस अवलम्ब ने जहाँ जनक, जनकपुरवासी, ग्रामवासी, ऋषि-मुनि आदि सबने पहिचान लिया, वहीं जनक पत्नी सुनैना नहीं पहिचान सकीं, तभी बिलख कर कहने लगीं—

रावण बाण छुआ नहीं चापा। हारे सकल भूप कर दापा।
सो धनु राजकुवर कर देहीं। बाल मराल कि मदर लेहीं॥

सभवत जानकी भी नहीं पहिचान सकी थीं तभी तो -

तब रामहिं बिलोकि बैदेहि। सभय हृदय बिनवत जेहि तेही।
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥

अस्तु, राम के रूप-सौंदर्य एव गुण से ही लोगों ने नहीं पहिचाना है, वरन् जैसा कि वाल्मीकि मुनि ने कहा है—उनकी प्रेरणा से भी पहिचाना है। तभी दशरथ, जनक, ऋषि-मुनि आदि उन्हें जान सके। परन्तु रावण, मारीच, कुम्भकर्ण और मन्दोदरी ने तो रामको देखे बिना ही समझ लिया। कैसे? वे दशरथ आदि की भाँति भक्त तो थे नहीं। वस्तुत यहाँ राक्षसों ने तर्क से भगवान को पहिचाना है। रावण का तर्क था—

खर दूषन मोंहि सम बलवंता। तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता॥

मारीच का तर्क था—

जेहि ताड़का सुबाहु हति खडेउ हर कोदण्ड।
खर दूषन त्रिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥

कुम्भकर्ण का भी तर्क था—

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥

परन्तु क्या तर्क से भगवान जाने जा सकते हैं? यदि तर्क से ही बोध्य होते तो सती और परशुराम भी पहिचान लेते, लेकिन सत्य तो यह है कि तर्क-बुद्धि के कारण ही ये दोनों नहीं जान पाए हैं। अतः जैसा कि शिव जी ने कहा है—'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी' हैं। यदि मान लिया जाय कि राक्षसों पर भी उन्होंने अनुकम्पा कर दी थी तभी वे पहिचान पाए थे तो फिर सती, गरुड़, परशुराम आदि ने ही क्या बिगाड़ा था? कहा जा सकता है कि इन्हें अभिमान था तभी स्वरूप ज्ञान न हो सका। पर भगवान राम के ही शब्दों में सबोधित 'अतिशय अभिमानी' बालि ने कैसे पहिचान लिया कि—

(कह बालि) सुनु भीरू प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहि, तो पुनि होउं सनाथ॥

स्पष्टः यहाँ किसी एक निश्चित आधार को नहीं ग्रहण किया गया है। सुविधानुसार जहाँ जैसा बन पड़ा है, वहाँ वैसा ही अवलम्ब ग्रहण कर लिया गया है। इस प्रकार, उपरोक्त रूपों में मानस की अग्रहमार्गीय शैली का अन्वीक्षण किया जा सकता है। यह पुराणों की विशेषता है।

मानस में निगमागमन की दुहाई अनेक बार और अनेक प्रकार से दी गई है। जहाँ तर्क अकाट्य नहीं रह जाता है वहाँ संशयोच्छेदन के लिये वेदादि का आश्रय ग्रहण किया जाता है। कहीं तो यह राम के ब्रह्मत्व के विषय में है, कहीं राम-भक्ति की श्रेष्ठता के विषय में है, कहीं धर्म अथवा नीति-परक उपदेशों की पुष्टि के रूप में है और कहीं-कहीं तो मात्र 'ठेके' के रूप में ही उद्धृत किया गया है। मानस का कोई भी तर्क ऐसा नहीं है जिस पर वेद-वाक्य की मुहर न लगी हो। निगमागम के उल्लेखन की इस बलवती प्रवृत्ति का नमूना सर्वत्र मिल सकता है। शायद ही एकाध कडवक वेद नाम से रहित हो। इसका आधिक्य तो इसी से आंका जा सकता है कि बालकांड के मात्र ६ दोहों के अन्तर्गत (दो० नं० ११२-१२० तक) ८ बार वेद का नाम उल्लखित हुआ है और वह भी प्रायः एक ही मन्तव्य की पुष्टि के लिये।

कौसल्या ने राम-जन्म पर अपनी छोटी सी स्तुति में ३ बार वेदों का नाम लिया है। यह तो सार्थक नाम-स्मरण की बात हुई। अब निरर्थक वेद-नाम की आवृत्ति देखिए, यथा, राजा प्रतापभानु के पुरोहित का रूप धारण करके 'कपट मुनि' ने जो जेवनार बनवाया था उसके विषय में उक्ति हैं:—

उपरोहित जेवनार बनाई। छ रस चार विधि जसि श्रुति गाई॥

इसपर डा०श्रीकृष्णलाल ने बड़ा सुन्दर व्यग किया है—ऐसा जान पड़ता है कि वेद मानों पाक-शास्त्र का कोई ग्रन्थ हो जिसके अनुसार जेवनार की तैयारी की गई हो।[१] इसके अतिरिक्त स्वर्ग का प्रलोभन तथा नरक का भय दिखलाना सुर-सिद्धि-मुनियों द्वारा गुणानुवाद कराना, दु दुभी-वादन और पुष्प-वृष्टि कराना और यत्र-तत्र आकाशवाणी आदि कराना भी कम नहीं है। यह सब पुराणों में ही अधिक होता है।

मानस की वक्ता-श्रोता परम्परा अथवा सवाद-शैली भी पौराणिक है। पहले निर्देश किया जा चुका है कि वक्ता एव श्रोता के रूप में कथा कहने की मूल प्रवृत्ति पुराणों की ही है। रामायण की कथा वाल्मीकि को नारद ने, लवकुश को वाल्मीकि ने, और ऋषियों को लवकुश ने सुनाई है। महाभारत की कथा व्यास ने अपने शिष्य को सुनाई है, उसे वैशम्पायन ने जनमेजय को, और सोति ने शौनकादि को बतलाई है। 'अध्यात्म रामायण' में राम-कथा ब्रह्मा ने नारद को सुनाई है और उससे पहले हनुमानको सीताराम ने, पार्वती को शिव ने और श्रोताओं को सूत ने सुनाई है। ठीक इसी प्रकार की परम्परा मानस में भी है, जिसका पीछे उल्लेख हो चुका है।[२] इसके अतिरिक्त मानस में सम्पूर्ण कथा चार वक्ताओं श्रोताओं के प्रश्नोत्तरों के रूप में, सवाद शैली में कही गई है। इन वक्ताओं श्रोताओं की जोड़ी इस प्रकार है:—(१) शिव एवं पार्वती (२) काकभुशुंडि एव गरुड़ (३) याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाज और (४) तुलसीदास एवं पाठक अथवा श्रोतागण। यही मानस के चार घाट हैं। कवि ने लिखा है—

सुठि सुन्दर सवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहरचारि॥

इस सवादशैली का मानस में आद्योपांत समुचित निर्वाह हुआ है। प्रायः प्रत्येक नवीन घटना के आरभ अथवा निष्कर्ष-कथन में विभिन्न सबोधनों का प्रयोग 'उमा' 'खगेस' 'उरगारी' आदि के रूप में हुआ है। स्मरण रखना

१—वही० श्रीकृष्णलाल, पृ० २५७।

२—दे० पीछे पृ० ७२।

चाहिए कि वक्ता-श्रोता की परम्परा अथवा कथान्तर रूप में पूर्वकथा की योजना तो प्राय काव्यों में मिलती है परन्तु एकाधिक वक्ता-श्रोताओं के जोड़े एवं जटिल प्रश्न-विधान की व्यवस्था पुराणों की ही विशेषता है, काव्यों में इसका अभाव ही दिखलाई पडता है। अस्तु मानस की उपरोक्त दोनों ही शैलियाँ अधिकांशतः पौराणिक हैं।

इसपर एक और दृष्टि से विचार किया जा सकता है। वस्तुतः मानस में वक्ताओं-श्रोताओं के प्रश्नोत्तरों की शैली और उसकी आत्मा भी धार्मिक अथवा पौराणिक हैं। इसे कतिपय काव्यों में व्यवहृत प्रश्नोत्तर की शैलियों को देखकर समझा जा सकता है। 'लीलावती' में कवि की पत्नी ने सायंकालीन मधुर शोभा से युक्त मदमस्त प्रकृति को देखकर अपने प्रियतम से कथा कहने का आग्रह किया है। फिर क्या उपयुक्त समय था ही और विना किसी भूमिका के कथा आरम्भ हो गई है। बीच बीच में 'प्रियतम' 'कुवलपदलाक्षि' आदि सम्बोधनों का प्रयोग मानस की भाँति होता चला है। 'कादम्बरी' में पूर्वकथा की विस्तृत परम्परा है—ऋषिकुमारों के प्रश्न का उत्तर जावालि ऋषि ने दिया है उनसे शुक ने कथा सुनी है और तत्पश्चात उसी को प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त किया गया है। फिर भी, शुक द्वारा जिस रूप में कथा कही जाती है वह सरल और साहित्यिक है। 'पृथ्वीराज रासो' में श्रोताओं के प्रश्न भी सरल और मानव चरित्र संबंधी हैं। 'कीर्तिलता' में भृङ्गी आदर्श-पुरुष की कथा भृंग से पूँछती है और वह आदर्श-पुरुष सम्बंधी मान-दडों को स्थिर करके कीर्ति सिंह की कथा आरभ कर देता है। परन्तु मानस के प्रश्नों में यह बात नहीं है। सभी पात्रों को राम के ब्रह्म-स्वरूप पर शका हुई है और उन शंकाओं के निवारणार्थ भक्त वक्ताओं ने तदनुरूप उपदेशात्मक शैली अपनाई है। मानसकार का मूल उद्देश्य राम का ब्रह्मत्व स्थापित करना और रामभक्ति का प्रचार करना ही रहा, जैसा 'उद्देश्य' नामक प्रकरण में दिखलाया जा चुका है। यही कारण है कि कहीं भक्त वक्ताओं द्वारा स्थल-स्थल पर राम-महिमा, राम कथा का माहात्म्य आदि कहा जाता है, कहीं उपदेश दिया जाता है तो कहीं हठपूर्वक अपनी बात मनवाई जाती है। यह सब कुछ पुराणों की विशेषता है। इसका एक नमूना पार्वती के प्रश्न एव शिव की उत्तर-शैली में देखा जा सकता है। पहले पार्वती का क्रिया-कलाप देखिए—

शिव भगवान कैलाश पर्वत पर एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उपयुक्त समय देखकर पार्वती शिव के पास चली गई। इसके पश्चात् पार्वती ने शिव की महानता और अपनी असमर्थता दिखलाकर अत्यन्त विनीत स्वर में शका प्रकट की कि—

प्रभु जे मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुं ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल कहहि रघुपति गुन गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहुँ अनग आराती॥
राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अगुन अलखगति कोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहं मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

प्रश्न के पश्चात् नाना प्रकार से पावती ने क्षमा-याचना की और तब कथा कहने का आग्रह किया।

अजहूँ कछु ससइ मन मोरे। करहु कृपा बिनवऊँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहिं बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
जदपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गुढउ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जंह पावहि॥

इसको सुनकर शिव ध्यान मग्न हो गए, राम की वदना किए, फिर पार्वती की प्रशसा करने लगे।

धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहि कोउ उपकारी॥
राम कृपा तें पारबति सपनेहु तव मन माहि।
सोक मोह सदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहि॥

परन्तु कथा सुनाने से पहले ही शिव ने राम को परब्रह्म न मानने वालों की यथा शक्ति निन्दा की और कहा कि ऐसे पुरुषों के कान के छिद्र साँप की बिल के समान हैं, नेत्र मोरपखी की चिन्त्तियाँ हैं, सिर कडुवी तुबी के समान हैं और जिह्वा मेढक के समान है आदि। यह भर्त्सना बारह चौपाइयों एव दो दोहों में समाप्त हुई है।[१] इतना कहकर शिव ने पार्वती को आज्ञा दे दी कि 'तजु ससय भजु राम पद'। भरद्वाज-याज्ञवल्क्य तथा काकभुशुण्डि-गरुड़ के

१—मानस, बालकांड, दो० ११२ से ११५।

प्रश्नोत्तर भी इसी शैली के हैं। इससे सहज ही आंका जा सकता है कि उपरोक्त काव्यों की प्रश्नोत्तर-शैली से मानस की शैली कितनी भिन्न है। पुराणों में ठीक इसी प्रकार की शैली मिलती है।

रामचरित मानस में कथा का समारम्भ ही जिन प्रश्नों को लेकर हुआ है उसका उत्तर स्वय उपदेशक-शैली का परिचायक है। कथानक में स्थान-स्थान पर वक्ताओं द्वारा उपदेशात्मक उक्तियाँ कही गई हैं। साथ ही कथा के पात्रों ने भी उधर से अरुचि नहीं दिखलाई है। जहाँ भी अवसर मिला है वहाँ छोटा अथवा बड़ा उपदेश जड़ दिया गया है। अधिकाश उपदेश प्रायः राम के ब्रह्मस्वरूप अथवा राम-भक्ति से ही संबंधित हैं परन्तु स्त्री-शिक्षा वर्णाश्रमधर्म लोक-नीति आदि विषयक उपदेश भी कम नहीं है। इनमें से अधिकाश, भागवत के कृष्ण के अनुकरण पर स्वय राम के मुख मे उच्चरित हुए हैं, शेष अन्य तप.पूत आत्माओं द्वारा कहे गए हैं। वक्ता की दृष्टि से इसे चार भागों में बाँटा जा सकता है। (१) पहिला कवि के कथन के रूप से (२) दूसरा, सभाओ अथवा दरबारों में संवादके रूपमें (३) तीसरा, विचार गोष्ठियो अथवा दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तरों के रूप में और (४) चौथा, बिना पूछे ही किसी पात्र द्वारा संदेश आदि के रूप में।) प्रथम का उदाहरण बालकाडका प्रस्तावना भाग है, द्वितीया का चित्रकूटकी सभा,अगद-रावण सवाद आदि है, तृतीय का वक्ताओं-श्रोताओं के संवादों में, लक्ष्मण के प्रश्न में, राम के कथनों में, धर्म-रथ आदि की व्याख्या में और ऋषि-मुनियों के वाक्यो के रूप में है और चतुर्थ का राम द्वार नगर-निवासियों को उपदेश आदि देने, लक्ष्मण द्वारा निषाद को समझाने आदि में हैं। अकेले राम ने १३ बार विस्तृत उपदेश दिया है जिसे एक शब्द में 'राम-गीता' के नाम से अभिहित किया जा सकता है।[१] वस्तुतः उपदेशों की योजना बुरी नहीं है पर अधिकता मात्र पुराणादि की ही विशेषता है।

१—ये राम गीताएँ निम्न पात्रों को सुनाई गई हैं—(१) राजधर्म के संबंध में भरत को (२) तत्व रहस्य एवं भक्तियोग के संबंध में लक्ष्मण को (३) नवधा-भक्ति की शबरी को (४) सन्त-रहस्य नारद को (५) अनन्यता के विषय में हनुमान को (६) मित्र महिमा सुग्रीव को (७) वर्षा एवं शरद्-वर्णन के अवलम्ब से धर्मनीति लक्ष्मण को प्रवर्षण गिरि पर

मानस में स्तोत्र एवं माहात्म्य कथन की भी प्रचुरता है। प्रत्येक समयोचित अवसर पर भक्तकवि का भावाकुल हृदय आराध्यदेव के स्तवन में फूट पड़ा है। कांडों के आरम्भ में तो कवि ने स्वयं स्तुति की है परन्तु अन्यत्र अन्य दिव्य पात्रों द्वारा यह कार्य संपन्न हुआ है। वस्तुतः राममक्ति के प्रचारोपरान्त रामानुज-सम्प्रदाय में अनेक उपनिषदों एवं धर्म-कथाओं की रचना हुई और उनमें राम-माहात्म्य, मंत्र और स्तुतियों की ही अधिकता रही है। अध्यात्म रामायण इसी परम्परा का धर्म-ग्रन्थ है। मानस एवं अध्यात्म रामायण के स्तोत्रों एवं माहात्म्य-कथन में पर्याप्त साम्य है। मानस में कुल लगभग १६ स्तोत्र हैं। इसमें भी १४ राम विषयक हैं, शेष दो में से एक सीता द्वारा पार्वती की स्तुति है और दूसरा विप्र द्वारा शिव-स्तोत्र (उत्तरकांड) है। राम के स्तोत्रों में से एक 'अवधिनृपति-सुत' के रूप में अवतरित होनेसे पूर्व ब्रह्माद्वारा उच्चरित हुआ है शेष इस प्रकार हैं—(१) कौसल्या द्वारा[1] (२) अहल्या द्वारा[2] (३) अत्रि द्वारा[3] (४) सुतीक्ष्ण द्वारा[4] (५) गीधराज द्वारा[5] (६) रावण-वध के पश्चात मुनियों द्वारा[6] (७) देवों द्वारा[7] (८) इन्द्र द्वारा[8] (९) शंभु द्वारा[9] (१०) राज्याभिषेक के अवसर पर वेदों द्वारा[10] (११) शंभु द्वारा[11] (१२) सनकादि द्वारा[12] और (१३) पुनःनारद द्वारा[13]।

यह तो हुई स्तोत्र चर्चा। अब माहात्म्य वर्णन को देखा जाय। मानस में राम-माहात्म्य, प्राकारान्तर से यत्र तत्र सर्वत्र है। हाँ जनक, निषाद, भरद्वाज शरभंग, अत्रि, बालि, विभीषण, मन्दोदरी (रावण को समझाते समय) अंगद रावण-संवाद) आदि के कथन विशेष महत्वपूर्ण हैं। शिव आदि का भी

(८) शरण्यता के सम्बन्ध में विभीषण के लिए सुग्रीव को (९) विभीषण को धर्म-रथ के सम्बन्ध में (१०) सत्संग एवं सत-असत के संबंध में भरत को (११) भक्ति-रहस्य की पुरजनों को (१२) भजनादि के विषय में वानरों को और (१३) भक्ति महिमा की काकभुशुंडि को।

१—बाल० कां० दो० १११। २—बाल० कां० २१०। ३—अरण्य० दो० ३। ४—अरण्य० दो० १०। ५—अरण्य० दो० ३१। ६—लंका० कां० १०२–६। ७—लंका दो० ११०। ८—लंका० कां० दो० ११०। ९—लंका० दो० ११४। १०—उत्तर कां० दो १२। ११—उत्तर कां० दो० १३। १२—उत्तर कां० दो० ३३। १३—उत्तर कां० दो० ६०।

माहात्म्य गाया गया है पर इनकी संख्या अत्यल्प है। इसके अतिरिक्त राम-भक्ति, राम-नाम एवं राम-कथा का भी माहात्म्य कम नहीं है। प्रस्तावना भाग में गोस्वामी जी ने तो राम-नाम का माहात्म्य, राम से भी बढ़कर बतलाया है और घोषणा की है कि—

भायँ कुभायँ अनरव आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

यह नाम महिमा केवल प्रस्तावना की ३७ चौपाइयों एव ६ दोहों में वर्णित है। राम-कथा के विषय में कवि का मत है कि—

बुध विश्राम सकल जन रजनि। राम कथा कलि कलुष बिभजनि॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिवेक पावक कहुं अरनी॥

इस प्रकार कथा की विस्तृत महिमा उत्कथित हुई है। भक्ति महिमा का वर्णन पीछे हो चुका है। इसके अतिरिक्त गुरु-पद-पूजा, विप्र-पूजा, पति-भक्ति तथा गगा तथा अन्य तीर्थों का भी माहात्म्य कहा गया है। काण्डों के अन्त में, उसका फल भी बताया गया है। यहाँ उदाहरण स्वरूप केवल उत्तरकांड का और तदुपरात सम्पूर्ण ग्रन्थ का फल नीचे दिया जा रहा है—

उत्तर काण्ड का फल है—

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मलि मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥

और अंत में सम्पूर्ण रामचरित मानस का फल इस प्रकार कहा गया है—

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंग घोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

साथ ही सभी काण्डों के अन्त में गद्य में इस प्रकार की पुष्पिका लिखी हुई है—

"इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलुषविध्वंसने···सोपान समाप्तः।"

विशुद्ध साहित्यिक काव्यों में इस शैली का सर्वथा अभाव रहता है, यद्यपि धर्म-भावना के प्राधान्य के साथ-साथ नायकों को अवतारी एवं कथा को पुण्यवती सिद्ध करने का कवियों का प्रयत्न कम नहीं रहा है। पृथ्वीराज को भगवत्स्वरूप

कहकर रासोकार ने धार्मिकता का पुट देना चाहा है। कीर्तिलता के कवि ने भी पाठकों को पुण्य-लाभ का प्रलोभन दिया है—"पुरुष कहाणी हौं कहौं जसु पत्थावे पुन्नु।" फिर भी इन सब काव्यों में माहात्म्यादि का वह स्वरूप कहाँ जो मानस में उपलब्ध है। यह शैली तो पुराणों की ही है।

मानस में पूर्व परम्परा का भी विस्तृत वर्णन हुआ है। रामकथा की परम्परा शिव, कुंभज, लोमस आदि से आती हुई नरहरिदास एव तुलसीदास तक पहुँच गई है, इस पर श्रोता-वक्ता-परम्परा शीर्षक पर ध्यान एकाग्र करते हुए विचार किया गया है। राम कथा के अतिरिक्त रामावतार की भी पूर्वकालीन परम्परा मनु-शतरूपा-तपस्या एवं नारद-मोह में वर्णित है। रावण और कुम्भकर्ण की जन्म-परम्परा, जय-विजय से लेकर प्रतापभानु-अरिमर्दन तक कही गई है। दशरथ, कौसल्या, पार्वती, वानरादि और काकभुशु डि की भी जन्म-परम्परा विस्तार में प्राप्त होती है। यह सब पौराणिक शैली है।

मानस में वंश-पराम्परा, भवान्तर एव अवान्तर वर्णनों की प्रचुरता है। मानस की वश - परम्परा इस अर्थ में विचित्र ढंग की है कि एक ही साथ वह भवान्तर वर्णनों के अन्तर्गत भी आ जाती है। इस दृष्टि से राम, दशरथ, कौसल्या, रावणादि, वानरादि, काकभुशु डि आदि की कथाएँ विचारणीय हैं। पौराणिक काव्य में यह प्रवृत्ति बड़ी प्रिय हो गई थी। रामायण में भगीरथ, अज, दशरथ आदि की तथा उत्तरकाड में राम-अगस्त्य-संवाद के रूपमें राक्षसों के जन्म की कथा कही गई है। जैन रामायणों में भी इसकी प्रचुरता है। पउमचरिउ के पूरे विद्याधर काड में इसको देखा जा सकता है। सच तो यह है कि भवान्तर वर्णन की प्रवृत्ति सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्र श के काव्यों में समान रूप से मिलती है। कौतूहल की 'लीलावती कहा', सोमदेव के 'कथासरित्सागर' आदि में इसकी अधिकता है। अपभ्र श काव्यो में इस दृष्टि से 'भविसयत कहा', 'जसहर चरिउ', णयकुमार जरिउ', 'करकण्ड चरिउ', 'सुदर्शन चरिउ' आदि मुख्य हैं।

अब अंतिम प्रश्न शेष रह गया है पुराणों एव मानस का धर्म-ग्रन्थ के रूप में समादरित होना। छान्दोग्य में पुराण को पंचम वेद कहा गया है और बृहदारण्यक एव शाकरभाष्य मे इसे वेदों की ही भाँति अयत्नज माना गया है।

मानस की भी गणना धर्म-ग्रन्थ के रूप में होती है। पाश्चात्य विचारकों ने प्रायः इसे बाइबिल के नाम से पुकारा है[1] और प्रसिद्ध आंग्ल विद्वान डा० जे० एम० मैक्फी ने तो अपनी पुस्तक का नाम ही 'दि रामायन आव तुलसीदास आर दि बाइबिल आव नार्दन इन्डिया' रख दिया है। वस्तुतः साधारण जनता को न तो वेद का ज्ञान है न उपनिषद् एव पुराणादि, का ही उसके लिए तो मानस ही वेद है, उपनिषद है, पुराण है और धर्म, नीति, दिनचर्या आदि सभी के तत्व इसमें पुँजीभूत हैं। इस दृष्टि से भी मानस में पौराणिकता स्पष्ट है।

परन्तु उपरोक्त विवेचन का आशय यह कदापि नहीं है कि मानस काव्य नहीं है। सच तो यह है कि राम चरित मानस, मानव-मन की गहराइयों को आलोड़ित करता चलता है—विराम-स्थलों पर रस की लहाछेह वर्षा होती चलती है। क्या नारद-प्रसग की नारद-विह्वलता, पुष्पवाटिका में सीता-राम के मूक उद्गार, रगभूमि का समाज एव सीता आदि की आतुरता, मथरा का त्रिया-चरित्र, भरत की आत्म-ग्लानि, ग्राम-वधुओं का सात्विक प्रेम और क्या चित्रकूट सभा की अलौकिक मर्यादा, सर्वत्र मन को बिलमा लेने वाली अमराइयों की अद्भुत सर्जना हुई है। यही है काव्य और काव्यत्व की सीमा। कवि-कर्म की सर्वाधिक सफलता इसमें है कि वह नाना संघातों के मध्य से प्रवाहित अजस्र जीवन-धारा में से, चिरंतन जीवन-सत्यों एवं शाश्वत साधनाओं की आधार-शिला पर उन सहज सवेद्य जीवन-दशाओं एवं गभीरतम अनुभूतियों का उद्घाटन करे जिसके प्रवाह में जन-मन, 'मैं मोर-तोर' के 'अह' से विमुक्त होकर, मानव-सा, मानव के दुख-सुख का रस ले सके। गोस्वामी जी इस कवि-कर्म के सच्चे पारखी थे। राम जन्म से चित्रकूट-सभा तक जिस स्वस्थ अनुभूति, सान्द्रता का प्रवाह मानवीय स्तर पर बहता चलता है वह अपरूप है। हां-इसके पश्चात तो भक्तिकवि की अपेक्षा मात्र भक्त तुलसीदास की लेखनी चलती है, कवि-रूप थोड़ा उपेक्षित-सा हो गया है—अन्यथा, इसके पूर्व सभी पात्र विशिट होते हुए भी समान्य हैं। जनक एव दशरथ में पिता का सच्चा हृदय उमड़ा है। राम सच्चे आज्ञापालक पुत्र, पति, भाई एवं स्वामी

1—George A, Grierson—The Modern Vernacular Literature and Hindustan, Chap, VI, P, 42-43 (Publishad by A, Society, 1889),

हैं, सुनैना, कैकेयी और कौसल्या के आँचल से दूध टपकता है। भरत लक्ष्मण भ्रातृ-प्रेम के प्रतीक हैं। इसपर आगे चलकर विस्तृत विचार किया जायगा।

यह तो मानस के काव्य-तत्व की बात हुई। यहा यह भी देखना है कि मानस में पुराणों की सभी शैलिया नहीं प्राप्त होती हैं। वर्णन-शैली की दृष्टि से पुराण एव मानस में महान भेद दिखलाई पड़ता है। पुराणों में कथा का अनावश्यक विस्तार मिलता। साथ ही कथा के भीतर कथा और उस उपकथा के भीतर भी कथा कहने की प्रवृत्ति विशेष होती है। इन कथाओं में किसी भी प्रकार की काट-छाट नहीं होती है। परन्तु मानस में यह बात नहीं है। मूल कथा के भीतर अवातार कथाए उल्लखित मात्र हैं, उनका विस्तार नहीं हुआ है, कथा के भीतर कथा कहने की तो कोई बात ही नहीं है। जो अवातर कथाए हैं भी—यथा जयत-कथा, शवरी, सम्पाती, मकड़ी आदि की कथा–वह मूलकथा अथवा नायक से सम्बद्ध हैं।

पुराणों में सम्पूर्ण कथा का परस्पर सम्बन्ध नहीं मिलता है। 'पद्म पुराण' 'विष्णु-पुराण' आदि की बिषय-सूची को देखकर, पाठक आसानी से मूल वर्ण्य-विषय का ज्ञान नहीं कर सकता है। पर मानस में यह बात नहीं है। मूलकथा सीधी और सरल है।

पुराणों में बहुत कुछ कह देने की धुन होती है—यथा, 'अग्निपुराण' में देवताओं की पूजा-विधि, देवालय निर्माण-विधि, राज्याभिषेक-विधि, शकुन-शास्त्र तत्र-मत्र, श्राद्ध, तीर्थ-व्रत, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल,पशु-विद्या, धनुर्वेद, आयुर्वेद, स्त्री-पुरुष-लक्षण, छन्द, अलकार और रस-शास्त्र, सगीत-शास्त्र, व्याकरण, दर्शन-शास्त्र, माहात्म्य-स्तोत्र आदि के विस्तृत विवरण दिए गए हैं, किन्तु मानस में इस प्रकार के वर्णनों का एकदम अभाव है।

पुराणों में मार्मिक स्थलों की पहचान अथवा रसात्मक वर्णन एकदम नहीं होते हैं। विष्णु पुराण, पद्म-पुराण, ब्रह्म-पुराण आदि का तो कहना ही नहीं स्वय 'अध्यात्म रामायण' (ब्रह्माण्ड पुराण के परिशिष्ट रूप में लिखित) में एक भी रसात्मक स्थल पर रमकर वर्णन नहीं हुआ है जब कि अहल्या प्रसग ४६ श्लोकों में कहा गया है।[1] मानस में ऐसे स्थल अनेक हैं। मथरा को लेकर जहाँ तुलसीदास ने सम्पूर्ण त्रियाचरित्र उडेल दिया है वहाँ अध्यात्म में मंथरा

१—अध्या०, अयो०, सर्ग ५, १६–६१ ॥

सर्वप्रथम दो श्लोकों में संबोधन करती है, फिर कैकेयी के पूछने पर एक सांस में अठारह श्लोकों में अपनी बात कह डालती है।[1] यहाँ भावनाओं का वह चढ़ाव-उतार नहीं है, जिसे मानस में प्रत्येक प्रसंग में देखा जा सकता है। उभय ग्रन्थों की यह विशेषता सर्वत्र दृष्टव्य है। यह है मानस और पुराण का अन्तर।

अलकृत छन्द-योजना, भाषा-सौंदर्य तथा इसी प्रकार के अन्य काव्यात्मक उपकरणों को पुराणों में ढूँढना व्यर्थ है, पर मानस में किसी भी पृष्ठ पर इनकी छटा देखी जा सकती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जहाँ प्रतिपाद्य विषय, उद्देश्य एवं शैली की दृष्टि से मानस पुराणों के पूर्ण समीप है वहीं उनसे पृथक भी है और काव्यत्व के निकट है। वस्तुत मानस में पुराण एवं काव्य का मणिकांचन योग हुआ है जिसे पुराण-काव्य के नाम से पुकारा जा सकता है।

अब अन्त में उपरोक्त काव्य-विधानों तथा काव्येतर शैलियों का आलोडन विलोडन करके सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानस चरितकाव्यों की शैली में लिखा गया एक पुराण काव्य है। नाम वही श्रेष्ठ होता है जिसके सुनने मात्र से उस वस्तुविशेष की समूची विशेषताओं का परिचय प्राप्त हो जाय। चरित्र काव्य तथा पुराण काव्य कहने से मानस के प्राण पक्ष और शरीर पक्ष, भाव-पक्ष और रूप पक्ष की जितनी स्पष्ट झलक प्राप्त हो सकती है उतनी मात्र महाकाव्य कहने से नहीं। साथ ही मानस को भक्तिग्रन्थ बनाए रखने, इसको साहित्य क्षेत्र में निष्कलुष बनाने और तुलसीदास के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक यही है कि इसे केवल महाकाव्य न कहा जाय। मानस को महाकाव्य कहना इसे सीमित घेरे में बाँध देना है। जहाँ तक इस ग्रन्थ के माहात्म्य का प्रश्न है, वह महाकाव्य की अपेक्षा उपरोक्त नाम से अधिक बढ़ेगा। भागवत आदि का जो माहात्म्य है वह किसी भी महाकाव्य का नहीं है, फिर जो भागवत की भी परम्परा में हो और रघुवंश जैसे महाकाव्य की भी परम्परा में हो, उसका कहना ही क्या!

१—वही०, अयो०, सर्ग २, ५०—७१।

मानस की राम-कथा का स्वरूप

३

गोस्वामी तुलसीदास ने नाना स्रोतों से राम-कथा का चयन किया है। मानस के आरम्भ में उन्होंने लिखा है कि—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोपि ॥
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥

राम-कथा पर निर्मित विपुल साहित्य में से अपनी आवश्यकतानुसार सामग्री सग्रहीत कर लेना, एक कला है। यहाँ यही देखना अभीष्ट है कि गोस्वामीजी ने मानस की कथा का कहाँ-कहाँ से चयन किया है, उसमें कितनी काट-छाट की है और फिर अपनी कतिपय नूतन उद्भावनाओं द्वारा किस प्रकार से कथा का समूचा वातावरण परिवर्तित कर दिया है। उद्देश्यानुसार कथा की समूची गति-विधि को आद्यत नियन्त्रित करने की पटुता को ही कवि की शिल्प-चातुरी और मौलिकता कहते हैं। अतः इस अध्याय में कथा-चयन, कथा में अपेक्षित परिवर्तन-परिवर्द्धन, कथा के स्थानान्तरण और इनके कारणों पर विचार किया जायगा। साथ ही कवि की नूतन उद्भावनाओं और ग्रन्थ में इनकी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला जायगा।

यहाँपर इतना कह देना आवश्यक है कि मानस न तो कवि की पूर्णतः मौलिक कृति है और न अनुकृति ही, इसे कवि ने स्वय ऊपर स्पष्ट कर दिया है। फिर भी कुछ दिन पूर्व बलिया से सस्कृत भाषा का एक रामायण प्रकाशित किया गया था और मानस को उसी की नकल बताया गया था। सं० १९७० में अपने एक लेख—क्या तुलसीदास का रामायण अनुवाद ग्रन्थ है—मे ग्रियर्सन ने उपरोक्त-मत का सबल विरोध किया था।[1] प्रसिद्ध विद्वान मैकफी ने तो यहाँ तक कहा है कि तुलसीदास जैसा महान व्यक्ति अनुकर्ता हो ही नहीं सकता है।[2] साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक है कि मानस की कथा किसी एक ही ग्रन्थ पर भी आधृत नहीं है। स० १९६९–७० में 'इन्डियन एँटिक्वरी' में प्रसिद्ध इटेलियन विद्वान एल० पी० तीसीटरी के एक लेख—'इल रामचरित मानस ए इल रामायण'—का अनुवाद प्रकाशित हुआ था जिसमें 'मानस' को वाल्मीकीय रामायण के अधिक निकट बताया गया था किन्तु जैसा कि डा० माताप्रसाद गुप्त का विचार है—रामायण से अधिक निकट तो आध्यात्म रामायण है।[3] वस्तुतः मानस की कथा सामग्री अनेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों से प्राप्त हुई है और स्वर्गीय शिवनन्दन सहाय ने प्रारम्भ में अपनी पुस्तक—'गोस्वामी तुलसीदास'—में इस ढग का अध्ययन भी किया है। हाँ, परिवतन-परिवर्द्धन आदि की जाच के लिए आवश्यक है कि वाल्मीकीय रामायण और 'आध्यात्म रामायण' को आधार ग्रन्थ के रूप में मान लिया जाय। कारण, मानस पर सर्वाधिक प्रभाव इन्हीं दोनों का ही है।

बालकाण्ड

(१) हेतु-कथाएं—अवतारवाद की प्रतिष्ठा के पश्चात अवतार के अनेक कारणों की भी कल्पना की गई। यहाँ भगवद्गीता की इस उक्ति का बहुत प्रभाव पडा—

1—R A S, J, 1970, P 133

2—Tulsidas is too great a poet to be a imitator—J M Macafie. The Ramayan of Tulsidas—Preface

३—डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास—पृ० ११।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

इस संबंध में अनेक शापों एवं वरदानों की कथा निर्मित की गई है—यहाँ तक की दुष्टों की दुष्ट प्रवृत्ति के मूल में भी किसी न किसी शाप की ही अवस्थिति मान ली गई है। मानस में भी वरदानों एवं शापों की इस प्रकार की एक लम्बी श्रृंखला जोड़ी गई। यहाँ इन्हीं पर विचार करना है।

(अ) वरः—

मानस में दो वरदानों की कथा हैः—

(क) कश्यप और अदिति की।
(ख) मनु-शतरूपा की।

(क) मानस में कश्यप-अदिति के प्रसंग में मात्र इतना ही उल्लखित हुआ है कि एक जन्म में ये ही भगवान के माता-पिता हुए और इन्हीं की मनकामना की परिपूर्ति के लिए भगवान को एक कल्प में मनुष्य-रूप में अवतार लेना पड़ा था।[१]

भागवत पुराण में यह कथा आई है। इसमें सुतपावृश्विन क्रमशः कश्यप, अदिति तथा वसुदेव-देवकी के रूप में प्रकट होते हैं। वाल्मीकीय रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में भी कश्यप की तपस्या और तदनुरूप वामनावतार में हरि को पुत्रवत् प्राप्त करने का उल्लेख आया है।

अर्वाचीन रामकथाओं में कश्यप और अदिति न तो वामनावतार में हरि को प्राप्त करते हैं और न वसुदेव-देवकी के रूप में जन्म ही लेते हैं। वे सीधे दशरथ तथा कौसल्या के रूप में प्रकट होते हैं। अध्यात्म रामायण,[२] रामचरितमानस[३] आदि में यही बात है।

१—बा० १२२, ७। २—बाल कां० सर्ग २, २५-२७।
३—बा० १२२-२।

(ख) मानस में मनु-शतरूपा की तपस्या और भगवान द्वारा उनके शरथ-कौसल्या होकर उत्पन्न होने पर उन्हीं की गोद से पुत्ररूप में स्वय अव-ोर्ण होने का वरदान, विस्तृत रूपसे वर्णित है ।[1]

मनु की तपस्या का प्रथम उल्लेख पद्मपुराण में मिलता है । १००० वर्ष क घोर तपस्या करने के पश्चात् उन्हें विष्णु से एक वर प्राप्त हुआ था जिसके ल पर वह तीन जन्म तक भगवान को पुत्र-रूप में प्राप्त करते रहे । पत्नी ।हित प्रथम जन्म में दशरथ कौसल्या हुए, द्वितीय में वसुदेव-देवकी और तृतीय [(कलियुग में) ब्राह्मण हरिगुप्त और देवप्रभा के रूप में उत्पन्न हुए । 'महा-ामायण' में भी यह प्रसग है जो सभवतः मानस की इस कथा का आधार है । ानस में मनु-शतरूपा तथा दशरथ-कौसल्या को अभिन्न बताया गया है । ध्यात्म रामायण में यह प्रसग नहीं है ।

घ) शापः—

मानस में दो शापों का भी उल्लेख हैः—

(क) भगवान को नारद का शाप और

(ख) जयविजय को ब्राह्मण (सनकादि) का शाप ।

(क) मानस में नारद के शाप की कथा विस्तार से कही गई है । इस था का प्रथम परिचय 'शिवपुराण' तथा 'अद्भुत रामायण' में मिलता है । अद्भुत रामायण' में नारद एवं पर्वत दोनों ही अंबरीष की कन्या श्रीमती को वयवर में प्राप्त करने के निमित्त, विष्णु भगवान से बारी-बारी एक दूसरे को कुरूप (वानरमुख) करने की प्रार्थना करते हैं । भगवान दोनों को ही बन्दर-मुख दे देते हैं और स्वयम्वर में स्वयं जाकर कन्या को ग्रहण कर लेते हैं । इस र नारद एव पर्वत विष्णु एवं श्रीमती को राम एव सीता के रूप में जन्म लेने ा शाप देते हैं । 'शिवपुराण' नारद-कथा एकदम मानस जैसी ही है । अन्तर ात्र इतना है कि मानस में अंबरीष की पुत्री श्रीमती के स्थान पर शीलनिधि ी पुत्री विश्वविमोहिनी है[2] 'रामायण-चम्पू' में भी राजा का नाम शील-निधि है ।

१—बाल कां १२६, १-२ । २—बा० १४१-१५१ ।

(ख) श्री हरि के जय-विजय नामक द्वारपाल विप्र के शाप से तीन जन्म के लिए राक्षस हो गए। अत भगवान ने इनके उद्धार के लिए शरीर-धारण किया।[1] यद्यपि कि मानस में स्पष्ट उल्लेख नहीं है पर रावण-रूप में उत्पन्न होने वाले पात्रों के आधार पर तीन जन्म इस प्रकार था (१) हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष (२) जलधर आदि (३) प्रतापभानु और अरिमर्दन (४) चौथे जन्म में यही रावण और कुंभकर्ण के रूप में उत्पन्न होकर भगवान द्वारा मुक्त किए गए। मानस में तीसरे जन्म अथवा प्रतापभानु की कथा का विस्तृत वर्णन है, अन्य का तो उल्लेख मात्र हुआ है। यह कथा संभवतः सुतीक्ष्ण द्वारा विरचित एक लाख बीस हजार श्लोकों के 'मञ्जुल रामायण' से ली गई है।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में कश्यप-अदिति के वरदान और भृगु-शाप की कथा मिलती है 'अध्यात्म रामायण' में केवल कश्यप-आदित के वरदान की कथा है। प्रश्न उठता है मानस में अन्य कथाओं का प्रयोजन क्या है और क्यों तीन ही कथा (मनु-शतरूपा, नारद और प्रतापभानु) का विस्तृत वर्णन हुआ है। प्रथम प्रश्न के उत्तर के लिए गोस्वामी जी के उस उद्देश्य को देखना है जिसके अनुसार उन्हें भगवान को भक्तवत्सल सिद्ध करना था। जहाँ एक ओर भगवान ने अपने भक्तों की इच्छानुसार उनका पुत्र तक होना स्वीकार किया वहाँ दूसरी ओर उन्होंने भक्तों के कल्याणार्थ, प्रिय-अप्रिय सभी प्रकार का कार्य किया, चाहे बदले में उन्हें शाप ही क्यों न भोगना पड़ा हो। वृन्दा और नारद के शाप के मूल में यही भावना छिपी हुई है। भगवान के इसी भक्तवत्सल स्वभाव के कारण तुलसीने बारम्बार 'ऐसेहुँ प्रभु' को न भजनेवालों को धिक्कारा है।

द्वितीय प्रश्न का उत्तर विशेष महत्वपूर्ण और कलात्मक है। यह मानस ग्रन्थ और ग्रन्थ के उद्देश्य की रीढ़ है। इन तीन कथाओं के द्वारा मानस की समूची कथा और ग्रन्थ के प्रायः सभी मुख्य पात्रों का परिचय प्राप्त हो जाता है। मनु-शतरूपा की कथा से दशरथ-कौसल्या के यहाँ भगवान के पुत्ररूप में अवतीर्ण होने की, नारद के शाप से पत्नी वियोग (सीताहरण) और वानरों की सहायता

1—बाल० कां० १२२-१।

की और प्रतापभानु की कथा से रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण आदि राक्षसों की उत्पत्ति की घटना स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण घटना और घटना में नियोजित पात्रों की प्रवृत्तियों का जैसा पूर्ण परिचय इन तीन कथाओं से हो जाता है वैसा अन्य समव नहीं है।

इन तीनों कथाओं के माध्यम से ग्रन्थ का उद्देश्य भी अनावृत होता है। प्रतापभानु की कथा के स्थान पर जय विजय, हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष अथवा जलन्धर की कथा विस्तृत की जा सकती थी। परन्तु ऐसा इसलिए नहीं किया गया कि इनमें से किसी के भी वृत्त को लेकर रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण के जीवन की वह पूर्वपीठिका न निर्मित की जा सकती जिसके आधार पर सभी, प्रकारान्तर से रामभक्त सिद्ध हो सकते, जैसा कि मानस में है। साथ ही इन कथाओं में धर्मरुचि जैसा कोई ऐसा अन्य प्रसिद्ध पात्र है भी नहीं जिसे मानस के विभीषण का पूर्वजन्मीय आत्मरूप सिद्ध किया जाता। धार्मिक भावना के प्राधान्य के साथ-साथ रावणादि को भी प्रच्छन्नरूप से भक्त सिद्ध करने का प्रयत्न तो काफी प्राचीन है पर इनके जीवन की इस भक्ति-वृत्ति को पूर्वजीवन के अनुसार निर्मित करने में गोस्वामी जी की सूझ अद्वितीय है। वाल्मीकि रामायण से भिन्न भृगु-शाप के स्थान पर नारद-शाप की कथा मर्यादावादी कवि ने भगवान की मर्यादा-रक्षा के लिए रख दी है। सम्भवतः इसीलिए वृन्दा-शाप को भी कवि ने अत्यन्त सक्षेप में और मर्यादापूर्ण ढंग पर प्रस्तुत किया है। नारद-शाप के माध्यम से भगवान के उस भक्तवत्सल रूप की भी परख हो जाती है जिसके अनुसार वे भक्त में अभिमान का अंकुर ही नहीं उगने देते हैं।

इसी प्रकार अवतीर्ण होने के कारणों में कश्यप-अदिति के वरदानों का उल्लेख होने पर भी मनुशतरूपा की विस्तृत कथा सोद्देश्य है। मानस में जैसा संकेतित है—यद्यपि स्पष्ट नहीं है—कश्यप-अदिति, मनु-शतरूपा एवं दशरथ कौशल्या जन्म जन्मान्तर में उत्पन्न होने वाले एक दूसरे के ही अभिन्न रूप हैं। चूँकि कश्यप अदिति प्रथम पुरुष (देव) थे और राम को पुत्र रूप में प्राप्त करने का उन्हें ही सर्वप्रथम वरदान प्राप्त हुआ था, अतः उन्हीं के वरदान का उल्लेख प्रत्येक दृष्टि से समीचीन रहा। 'पद्मपुराण' से एक संकेत भी प्राप्त होता है जिसमें कश्यप अदिति को भगवान ने तीन जन्म तक अपने को पुत्र-रूप

में प्राप्त करने का वरदान दिया था। यदि यह बात सत्य है तो इस आधार पर मानस में इस प्रथम वरदान का मात्र संकेत करना ही ठीक लगता है। हाँ, विस्तृत वर्णन तो वर्तमानकाल अथवा निकटवर्ती जीवन का ही उपयुक्त है। इसीलिए जहाँ मनु-शतरूपा की विस्तृत कथा वर्णित है वहाँ कश्यप-अदिति का उल्लेख मात्र हुआ है।

उपरोक्त विवेचन में तुलसीदास की सतर्कता स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है।

(२) शिवचरित—हेतु कथाओं के अतिरिक्त मानस की प्रस्तावना के आरम्भ में शिवचरित का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ में शिव-उमा का विवाह उल्लखित है। ऋषि लोमश कृत 'लोमश रामायण' में सती मोह और शम्भुद्वारा उनका त्याग, मदन-दहन और पार्वती विवाह की कथा मिलती है। मानस का शिव चरित भी ठीक इसी ढंग पर वर्णित है।

मानस के प्रारम्भ में शिव चरित का विशेष स्थान है। मानसकार का स्पष्ट मत है कि रामभक्ति के पूर्व शिवभक्ति आवश्यक है। इसीलिये राम-कथा सुनने से पूर्व याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज की भक्ति-भावना की परीक्षा के लिए शिव की कथा सुनाई थी। ज्ञात होना चाहिए कि ब्रह्मावैवर्त पुराण, नृसिंह पुराण, शिवपुराण, देवीभागवत प्रभृति साम्प्रदायिक पुराणों में शिव और विष्णु में समन्वय स्थापित करने का जो कार्य न हो पाया था वह कार्य बहुत कुछ अशों में पूववर्ती ग्रन्थों से होता हुआ मानस में पूर्ण हो गया। अतः इस दृष्टि से भी शिवचरित का विशेष महत्त्व है। जहाँ तक ग्रन्थ में शिव के वक्ता रूप का प्रश्न है वह तो आदिरामायण 'महारामायण' से ही चला आ रहा है। 'अध्यात्मरामायण' की भी कथा शिव ने ही कही है।

स्थानान्तरण—

मानस के प्रस्तावना भाग में ही रावण चरित का वर्णन है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसग रावण-बध के पश्चात् उत्तर काण्ड में आया है। अन्त की अपेक्षा आरंभ में ही इस चरित की उन समूची विशेषताओं को दिग्दर्शित करा देना आवश्यक था जिसके कारण भगवान को भी अवतार लेना पड़ा। संभवतः इसी लिए गोस्वामी जी ने इसका स्थानान्तरण किया है। आरंभ का

यह प्रसग बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। 'अध्यात्म रामायण' में भी यह प्रसग उत्तरकांड में है।

(३) पुत्रेष्टि-यज्ञ —मानस में राजा दशरथ ने शृ गी ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराया है। यज्ञ में साक्षात अग्निदेव ने प्रकट होकर हविष्यान्न दिया है। और इसके प्रभाव से तीनों रानियां गर्भवती हो गई हैं।

पुत्रेष्टि यज्ञ की परम्परा बहुत प्राचीन नहीं प्रतीत होती है। प्राचीन महापुराणों में अर्थात् हरिवश, विष्णुपुराण, वायुपुराण तथा भागवत पुराण में जो संक्षिप्त रामकथा प्राप्त होती है उसमें पुत्रेष्टि-यज्ञ का निर्देश नहीं है। बौद्ध तथा जैन रामकथाओं में भी इसका अभाव है। लगता है कि यह विधान धार्मिक भावना की अधिकता के साथ चल पड़ा है। वाल्मीकि रामायण में दो यज्ञों–अश्वमेधयज्ञ और पुत्रेष्टियज्ञ—का वर्णन है पर कुछ विद्वान पुत्रेष्टि यज्ञ को वाद में प्रक्षिप्त मानते हैं। वादकी धार्मिक भावना से ओतप्रोत कथाओं में केवल इसी पक्ष का वर्णन मिलता है—यथा रघुवश, जानकीहरण, पद्मपुराण, अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस आदि में।

अनेक रामकथाओं में पुत्रेष्टि यज्ञ में स्वयं विष्णु भगवान उपस्थित होकर पायस देते हैं पर नृसिंह पुराण, आनन्दरामायण, अध्यात्म रामायण की भांति मानस में विष्णु के स्थान पर अग्निदेव प्रकट होते हैं। यही ठीक भी है। कारण विष्णु द्वारा दशरथ सुत के रूप में अवतीर्ण होने की आकाशवाणी के पश्चात् उनका पुनः यज्ञ में उसी कार्य के लिये प्रकट होना कोई तुक नहीं रखता है।

(४) राम-जन्म—अवतारवाद के प्रथमरूप के अनुसार विष्णु ने चार अशों में (चारों भाइयों के साथ) अवतार धारण किया था—यथा हरिवश, विष्णुपुराण, वायुपुराण आदि में। पर अर्वाचीन अधिकाश रचनाओं में चारो भाई—राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न क्रमशः विष्णु, शेष, शख और सुदर्शन के अवतार माने गए हैं—यथा उदारराघव, अध्यात्मरामायण, पद्मपुराण, आनदरामायण आदि में। रामचरितमानस में भी यही वात है।

अध्यात्मरामायण के विष्णु परब्रह्म के रूप में आए हैं। मानस में थोड़ी गड़बड़ी हो गई है। इसमें राम विष्णु से परे परब्रह्म कहे गए हैं पर देखने में विष्णु ही लगते हैं। ऐसा अध्यात्म रामायण के प्रभाव से हो गया है।

१—वाल० १८८-२

राम जन्म के समय अनेक अलौकिक घटनाओं का विधान स्वाभाविक है। परन्तु अनेक रामकथाओं में अपने जन्म के समय राम का अपनी माता कौसल्या को विष्णु-रूप दिखलाना भागवत का प्रभाव है, जहाँ कृष्ण वसुदेव-देवकी को अपना विष्णु-रूप दिखलाते हैं। राम के विषय में यह वर्णन सम्भवत अध्यात्म-रामायण' से चला है। मानस में यह प्रसग अध्यात्मरामायण से ही लिया गया है।

मानस में राम की बाल लीला 'अध्यात्मरामायण' के ढग पर है जिस पर भागवत का प्रभाव पड़ा है। पर, 'अध्यात्मरामायण' के राम की भाँति मानस के राम छींका आदि नहीं फोड़ते हैं[1]।

कृष्णलीला के अनुसरण पर अध्यात्म में राम की वन-क्रीड़ा का[2] उल्लेख है पर मानस में सत्योपाख्यान के आधार पर राम द्वारा पशुओं को मारकर देवलोक भेजने का सकेत है।[3]

(५) विश्वामित्र के राम तथा लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षार्थ माँगने की कथा प्रायः सर्वत्र समान है। मानस की यह विशेषता है कि पूर्व वर्णनों की भाँति इस प्रसंग का मर्यादापूर्ण और चलताऊ वर्णन हुआ है।

(६) ताड़का-वध—विश्वामित्र के साथ जाते समय मार्ग में ताड़का मिलती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह राम के बाणों से बिद्ध होकर पृथ्वी पर गिरती है और मर जाती है। मानस में अध्यात्म रामायण के आधार पर देवलोक जाती है।

(७) मारीच और सुबाहु—का प्रसग अध्यात्म रामायण जैसा ही है।

(८) अहल्या का उद्धार—शतपथ-ब्राह्मण से लेकर वैदिक साहित्य की अनेक रचनाओं तक अहल्या की कथा का बीज मिलता है। वाल्मीकि रामायण में अहल्या के दुराचार एवं उद्धार की कथा दो बार आई है (बाल० का० और उत्तर का० में) यहाँ अहल्या शिला न बनकर अदृश्य हो गई है। आगे चलकर इसमें परिवर्तन हो गया और उसका शिला होना मान्य रहा। यह रूप सभवतः पहले पहल रघुवश में आया है। 'अध्यात्म रामायण' में वह अदृश्य

१—वही० बा० सर्ग ३, ५३। २—वही० बा० सर्ग ३, ६२–६३।
३—वही २०४–२।

होकर शिला पर खड़ी है। मानस में वह शिला हो गई है साथ ही यहाँ केवल उद्धार की कथा प्रस्तुत हुई है, दुराचार की नहीं। ऐसा गोस्वामी जी के आदर्श के कारण रहा है।

(९) पूर्वराग और स्वयंवरः—अनर्घराघव, प्रसन्नराघव आदि परवर्ती नाटकों के आधार पर मानस में वाटिका-प्रसंग और पूर्वरागोदय का विधान है। आठवीं शताब्दी ई० से लेकर बाद तक विवाह के पूर्व राम तथा सीता के परस्पर आकर्षण और प्रेमका उल्लेख मिलता है। कुछ ग्रन्थों में तो अश्लीलता भी है। वाल्मीकि रामायण अथवा अध्यात्म रामायण में यह प्रसग नहीं है।

धनुर्भंग स्वयवर की घटना भी मानसमें आधार ग्रन्थों से भिन्न है। वाल्मीकि रामायण में राम स्वयवर समाप्त होने के पश्चात् मिथिला जाते हैं और धनुर्भंग करते हैं। 'अध्यात्मरामायण'में विदेह नगर के ऋषि-आश्रम में ही जहाँ विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण ठहरे थे, जनक की आज्ञा से धनुष मँगवाया जाता है और राम उसे टूक करके सीता जी को प्राप्त करते हैं। 'महावीर चरित' में भी धनु-र्भंग इसी प्रकार से होता है। परन्तु मानस में धनुर्भंग स्वयंवर और अन्य राजाओं की उपस्थिति में होता है। स्वयंवर में धनुष चढ़ाने की प्राचीनतम कथा जैन 'पउमचरिउ' में प्राप्त होती है।

धनुर्भंग के समय पहले तो रावण के दूत की कल्पना की गई थी फिर बाद में स्वय रावण ही उपस्थित होने लगता है। महावीर चरित में रावण का एक दूत उपस्थित है, अनर्घराघव में शौष्कल है, और सत्योपाख्यान में प्रहस्त है। ये दूत रावण के लिए सीता को दे देने का जनक से प्रस्ताव करते हैं। किन्तु प्रसन्न राघव, आनन्द रामायण, बाल रामायण आदि में स्वय रावण धनुप चढ़ाने में असमर्थ रहता है। तत्पश्चात् वह सीता के अपरण का सकल्प प्रकट करके चला जाता है। मानस में यह प्रसग यहीं से लिया गया है।

(१०) परशुराम प्रसंगः—राम-परशुराम की भेंट के वृत्तान्त में आगे चलकर कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है। कहीं-कहीं परशुराम का तेज भंग हो जाता है और भगद्गीता के अनुकरण पर राम परशुराम को अपना विश्वरूप दिखलाते हैं—यथा 'अद्भुत रामायण' में। 'नृसिंह पुराण' में परशुराम का वैष्णव तेज राम में प्रवेश करता हुआ दिखाया गया है।

वाल्मीकि रायायण, अध्यात्म रामायण तथा अधिकाश प्राचीन काव्यों में विवाह के उपरान्त अयोध्यावासियों की वापसी के समय रामसे मार्ग में परशुराम मिलते हैं परन्तु महावीर चरित से लेकर अधिकाश राम-नाटकों में—यथा बाल रामायण, प्रसन्नराघव, महानाटक आदि—मिथिला में ही परशुराम का आगमन हो जाता है। गोस्वामी जी ने इस प्रसग को इन्हीं नाटकों से लिया है।

रामभक्ति के प्रभाव से आगे चलकर परशुराम द्वारा राम की स्तुति को बहुत महत्व दिया गया। यहाँ अत में परशुराम रामभक्ति की याचना करते हैं। अध्यात्मरामायण के आधार पर यही बात मानस में भी व्यवहृत है।

(११) विवाहः–वाल्मीकि रामायण एवं 'अध्यात्मरामायण' की ही भाँति मानस में भी दशरथ के यहाँ विवाह का समाचार भेजा जाता है, राजा बारात सहित जाते हैं और रामादि चारों भाइयों का विवाह होता है। विवाह का प्रसग मानस में अत्यन्त विस्तृत और सरस है।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

(क) वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में कुछ ऐसी भी कथाएँ हैं जिनका वर्णन मानस में नहीं हुआ है। यथा रामायण के निम्न प्रसग मानस में नहीं हैं—

(१) प्रारभ में अयोध्या का वर्णन, राजा नागरिक और मत्री का वर्णन[१] (२) ऋष्यशृंग की कथा[२] (३) ऋष्यशृग द्वारा अश्वमेघ यज्ञ[३] (४) गगा-सरयू के सगम पर विश्वामित्र द्वारा कामदहन की कथा[४] (५) सिद्धाश्रम पर वामनावतार की कथा[५] (६) विश्वामित्र के वश की कथा[६] (७) हिमवान की पुत्रियों, एव गगा के स्वर्गारोहण की कथा[७] (८) समुद्र मथन की कथा[८] (९) विश्वामित्र की कथा[९] (१०) धनुष की तथा सीता जन्म की कथा[१०]

१—वही बा० सर्ग ५–७। २—बा० सर्ग ९–११।
३—बा० सर्ग १२–१४। ४—बा० सर्ग २३।
५—बा० सर्ग २४। ६—बा० सर्ग २९।
७—बा० सर्ग ३५–३६। ८—बा० सर्ग ४५-४८।
९—बा० सर्ग ५१-६५। १०—बा० सर्ग ६६।

अध्यात्मरामायण के भी निम्न प्रसग मानस में नहीं हैं—(१) बालक राम के वर्तन फोड़ने एव बछड़े के पीछे दौड़ने का प्रसंग ।[१] (२) राम वनगमन से पूर्व एतदर्थ अयोध्या में नारद के आने एव वन जाने के निमित्त राम से प्रार्थना करने का प्रसग ।[२]

(ख) आधारग्रन्थों की बहुत-सी विस्तृत कथाओं का मानस में उल्लेख मात्र हुआ है । वाल्मीकि रामायण की निम्न कथाएँ देखी जा सकती हैं—(१) यज्ञ-रक्षा के लिये विश्वामित्र से राम-लक्ष्मण को माँगने की कथा[३] (२) ताड़का-वध[४] (३) मारीच और सुबाहु की कथा[५] (४) गंगावतरण की कथा[६] (५) अहल्या की कथा[७] । अध्यात्म रामायण के भी निम्न प्रसगों का उल्लेख मात्र हुआ है—यथा (१) राम को विश्वामित्र को देने के लिए वसिष्ठ का जनक को समझाना (२) अहल्या-प्रसग आदि ।

(ग) मानसकार ने अपनी कथा में जो परिवर्तन किया है उसे भी देख ले आवश्यक है । सुविधा के लिए यहाँ अध्यात्मरामामण को लिया जा रहा है (१) आर्त्त गऊरूपा पृथ्वी के प्रसंग में 'अध्यात्म' में शकर नहीं हैं पर मा[नस] में हैं । (२) मानस में गऊ की गुहार पर आकाशवाणी होती है किन्तु अध्[यात्]म रामायण में भगवान स्वयं प्रकट होते हैं और स्थान भी क्षीरसागर का तट [हो]ता है (३) मानस में देवता ब्रह्मा के परामर्श से स्वयं बन्दर हो जाते हैं किन्तु [अ]ध्यात्म रामायण में देवता वानर-जाति से संतान उत्पन्न करते हैं (४) मानस [की] भांति 'अध्यात्म रामायण में 'मास दिवस कर दिवस' है और न तो नर में अयोध्या म शिव भगवान के जाने की चोरी ही है (५) मानस में धनुर्भंग [स्व]यम्वर में होता है न कि अध्यात्म रामायणकी भाति ऋषि-आश्रम में ।

([घ]) गोस्वामी जी ने जहाँ बहुत सी कथाओं को छोड़ दिया और बहुतों का मात्र उल्लेख किया है वहाँ उन्होंने बहुतसे प्रसगों से हटने का नाम भी नहीं

१—[वा]० सर्ग ३, २६-४७, ५४ । २—वही० अयो० सर्ग १,६–३६ ।
३—[वा०] सर्ग १६–२१ । ४—वा० सर्ग २५-२६ ।
५—सर्ग ३० । ६—वा० सर्ग ३८–४४ ।
७—[वा०] सर्ग ४८–५० ।

लिया है। वाटिका-प्रसग,धनुर्भंग-प्रसग और विवाह वर्णन के प्रसग उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं। वस्तुतः बालकाड के उत्तरार्द्ध में इन्हीं तीन पर कवि ने जमकर लेखनी चलाई है, अन्य का तो अनुकथन मात्र हुआ है।

अब देखना है कि उपरोक्त हेर-फेर के मूल में कौन सा उद्देश्य वर्तमान था। जहाँ तक कथाओं अथवा प्रसगों को छोड़ देने का प्रश्न है उसके विषय में यही कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी की दृष्टि चातक की भाँति आराध्य देव राम पर ही केन्द्रित रही है। अतः जो प्रसंग राम से सम्बन्धित नहीं रहे उन्हें कवि ने निश्चिन्त भाव से छोड़ दिया है—यथा ऋष्यशृंग की कथा, काम दहन की कथा आदि। इसी आधार पर कवि ने किसी कथा का सक्षेपण भी किया है। कथा के जितने अश से नायक राम का सम्बन्ध था उतने अश को तो ग्रहण कर लिया और शेष अश की सूचना मात्र दे दी। अहल्या की कथा, ताड़का की कथा को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। कथा-प्रसगों में किंचित परिवर्तन, सभावना और धार्मिक भावना के कारण हुआ है—यथा, सूर्य के रथ का रुकना और दर्शन हेतु, शिव की चोरी राम के परब्रह्म पर प्रकाश डालने के लिये है; गऊ की गुहार के समय ब्रह्मा के साथ शिव की उपस्थिति राम और शिव के सबध की दृढता के लिए है, प्रकट न होकर आकाशवाणी करना और स्थान क्षीरसागर का तट न होना परिस्थिति को गभीर बनाने एव राम को विष्णु के साथ न सम्बन्धित करने के लिए है। इसी प्रकार अन्यत्र भी हुआ है।

विस्तृत प्रसगों पर थोड़ा विस्तृत विचार आवश्यक है। इन प्रसंगों का मूल केन्द्र है धनुर्भंग और राम विवाह। नगर भ्रमण, वाटिका-प्रसंग इसकी भूमिका है और विवाह अथवा बारात-वर्णन इसकी पूर्णाहुति है। कवि ने केन्द्र-विन्दु, उसकी भूमिका और उसकी पूर्णाहुति—तीनों ही को पर्याप्त स्थान दिया है। धनुर्भंग के प्रसग को अधिक मार्मिक बनाने के लिए कवि ने कई पद्धतियाँ अपनाई हैं। प्रथम द्वारा उसने राम के नगर-भ्रमण का वर्णन करके उनके रूप पर मुग्ध मिथलापुरवासियों से इच्छा प्रकट कराई है कि—

'जेहि बिरचि रचि सीय सवारी। तेहि स्यामल बरू रचेउ बिचारी'।

द्वितीय पद्धति के द्वारा कवि ने वाटिका के अन्तर्गत उभय सीता के हृदय में प्रेमाङ्कुर उगाया है। तृतीय पद्धति के द्वारा कवि ने स्वयवर-भूमि में उपस्थित राम की रूप-माधुरी का वर्णन करके वहाँ के अधिकांश जनसमूह को राम का हित बना दिया है। इसी आधार पर कवि ने, नायक की मगलाशा करने वाले 'सहृदयों' (पाठकों) में भी राम से सीता के विवाह की अभिलाषा उत्पन्न कर दी है। एक ही लक्ष्य पर सबकी दृष्टि केन्द्रित करके कवि ने सबकी भावनाओं को अधिकाधिक झकझोरने और उद्भुत विह्वलता (suspense) उत्पन्न करने का कार्य किया है। मखशाला में राम के आगमन से लेकर धनुर्भंगतक उपस्थित व्यक्तियों की मुखरित अथवा अमुखरित विकलता का जैसा चित्रण गोस्वामी जी ने दिया है, वह अद्वितीय है। इसी पीठिका पर सबके मनोवांछित फल-रामविवाह का सागोपाग वर्णन करके गोस्वामी जी ने अद्भुत कला प्रदर्शित की है। उपरोक्त सभी प्रसंग एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, एक के भी अभाव में दूसरे का प्रभाव मन्द पड़ जाता है।

यहाँ पर दो प्रकार की शकाएँ भी प्रकट की जा सकती हैं—(१) यदि वाटिका प्रसग न होता तो प्रभावोत्पादन में कौन सा व्यवधान पड़ जाता ? और (२) यदि राम के नगर-भ्रमण के ही अवसर पर 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित महल की खिड़की पर बैठी सयोगिता और पृथ्वीराज के साक्षात्कार एव प्रेम प्रस्फुरण की भाँति ही सीता और राम का भी प्रेम प्रस्फुरण हो जाता तो क्या हानि होती ? किन्तु यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि प्रथम पद्धति के अभाव में धनुर्भग के साथ विह्वलता को (suspense) उभाड़ने की समूची योजना लूली पड़ जाती। वहाँ भी राम और सीता का आकर्षण हो सकता था पर वह लालसा ही होती, प्रीति नहीं। अतः फल की प्राप्तिविषयक तीव्रता में कमी होती। द्वितीय पद्धति गोस्वामी जी के मर्यादावाद के प्रतिकूल है, साथ ही आधार के रूप में 'प्रसन्नराघव' आदि सामने भी थे।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन-परिवर्द्धन सदैव सोद्देश्य और कलापूर्ण है।

स्थानान्तरण :—

मानस में परशुराम का प्रसग मिथिलापुर में ही आ गया है जबकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण में अयोध्या लौटते समय आया है।

इसके क्या कारण हैं ? वस्तुत यह प्रसग नाटकीयता लाने के लिए ही नाटकों से लिया गया है। अनेक भावात्मक परिस्थितियों के बीच धनुष के टूटने पर दुष्ट राजाओं द्वारा जिस प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न कर दी गई थी उसे शात करने के लिए इसी अवसर पर परशुराम का आगमन आवश्यक था।

परशुराम के आगमन से वातावरण तो शात हो गया किन्तु राम की मगलाशा चाहने वालों की विह्वलता भी दूनी बढ गई। लक्ष्मण की अधिक ढिठाई पर नगरवन्धुओं की यह उक्ति हमारे कथन का समर्थन करती है:—

थर थर कापहिं पुर नर नारी। छोट कुमार खोट वड भारी।।

एक बार उमड़ी विह्वलता को चरम सीमा पर पहुँचा देना और तत्पश्चात विवाह का मगलविधान करना ही सबसे बड़ी कला है। विवाह के विस्तृत वर्णन और तदुनुकूल अदम्य उछाह के बीच पुन· मार्ग में भय अथवा विह्वलता की परिस्थिति निमित करना, कवि को इष्ट नहीं था। इसीलिये यह नाटकीय विधान हुआ। अन्य स्थलों पर भी कवि ने नाटकीयता की रक्षा की है। राज बहादुर लमगोड़ा का तो कहना है कि अयोध्याकांड तक नाटकीयता ही नाटकीयता है।[१]

वीरगाथा काव्य की परम्परा के अनुसार नायिका पर नायक की अधिकाधिक छाप डालने के लिए सबल प्रतिद्वन्दी की पराजय आवश्यक थी। पूर्ववर्ती ग्रन्थों की इस मनोवृत्ति का प्रभाव मानस पर भी हो सकता है।

इस प्रसंग के स्थानान्तर का एक और कारण तुलसी की भक्ति-भावना में भी ढूँढा जा सकता है। यत्र तत्र सर्वत्र देखा जाता है कि भगवान राम का प्रभाव अधिक से अधिक लोगों पर डालने के लिए भक्त तुलसीदास सदैव सतर्क रहते हैं। इस दृष्टि से जनकपुर की रगशाला अधिक उपयुक्त जगह थी—अपेक्षाकृत उस जगह के जहाँ अन्य ग्रन्थों में बारात के लौटते समय परशुराम आते हैं। जनकपुर के प्राय सभी प्रसंग राम के प्रभाव को अधिकाधिक उभाड़ने के लिए ही रचित हैं और परशुराम का यह प्रसंग भी इसका अपवाद नहीं है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कथा-चयन में गोस्वामी जी की सतर्कता और कला देखी जा सकती है।

१—दे० राजबहादुर लमगोड़ा—विश्वसाहित्य में रामचरितमानस (प्रथम भाग)

अयोध्या कांड

अयोध्याकांड की कथा में अपेक्षाकृत कम विकास हुआ है। इस कांड की प्रायः सभी रामकथाओं पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव स्पष्ट है। यत्र तत्र थोड़ी हेर-फेर हुई है जिसे यहाँ दिखा देना उचित है। इसके पश्चात् परिवर्तन-परिवर्द्धन आदि पर विचार किया जायगा।

(१२) राम के निर्वासन का कारण:—वाल्मीकि रामायण में राम के निर्वासन के लिए कैकेयी के दो वरदान कारण-रूप में बताए गए हैं। आगे चलकर इस वरदान-प्राप्ति की अनेक कथाएँ और कैकेयी के दोष-निवारण के अनेक उपाय प्रचलित हो गए। मानस में वरदान-प्राप्ति की कथा नहीं है अतः यहाँ द्वितीय पर ही विचार करना ठीक है। 'महावीर चरित' में स्वय शूर्पणखा मंथरा का रूप ग्रहण करके जनकपुर चली जाती है और कैकेयी के वरदान की की बात करती है। वहीं से राम वन भी चले जाते हैं। अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण आदि में नारद, भगवान को उनके अवतार के उद्देश्य का स्मरण दिलाते हैं और राज्य न लेने का अनुरोध करते हैं। मानस में इस ढंग के प्रसंग नहीं आए हैं, किन्तु अध्यात्म रामायण अद्भुत रामायण की भाँति यहाँ भी देवता, मथरा एव कैकेयी की मति विभ्रम कर देते हैं और स्वय कैकेयी वरदान माँगती है। रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ में कैकेयी 'शाप दोष मोहिता' होकर वरदान माँगती है।

(१३) सीता का वनगमन—अनामकम् जातकम् में केवल राम-लक्ष्मण वन जाते हैं। कुछ विदेशी कथाओं में—यथा तिब्बती रामायग—केवल राम के जाने का उल्लेख है पर अन्यत्र सीता भी साथ जाती हैं। वाल्मीकि रामायण में राम के साथ वन जाने के लिए सीता जी कहती हैं कि—ब्राह्मणों ने मेरा वनवास अनिवार्य बताया है।[१] "अध्यात्म रामायण' में वह कहती हैं कि—मैंने जितने रामायण सुने हैं सब में सीता वन जाती है।[२] 'आनन्द रामायण' में सीता ने चूँकि राम को प्राप्त करने के लिए १४ वर्ष के वनवास का व्रत लिया था इसीलिए वन जाती हैं। परन्तु मानस में इन सबसे भिन्न सीता पत्नी-धर्म के नाम पर वन जाती है।

१—वही०, अयो, सर्ग २१,८–९। २—वही०, सर्ग ९, ७७–७८।

(१४) भक्त केवट का प्रसंग:—भक्तों में राम के चरण को धोने वाले केवट का विशेष महत्व है। इस केवट के वृत्तान्त का सर्वप्रथम उल्लेख 'अध्यात्म रामायण' में मिलता है उसमें यह प्रसग अहल्ला-उद्धार के ठीक बाद आया है। रामलिंगामृत में यह प्रसंग सीता की खोज करते समय आया है। मानस में भक्त केवट को शृ गवेरपुर के निषादराज के साथ एक कर दिया गया है।

(१५) चित्रकूट में जनक का आगमन:—वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण आदि में इस प्रसग को न देखकर लोग इसे तुलसीदास की मौलिक उद्भावना कहते हैं किन्तु १ लाख २५ हजार श्लोकों वाले 'श्रवण-रामा-'रामायण' में यह प्रसग आ चुका है।

(१६) दशरथ को पिंडदान—वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण आदि में केवल पिंडदान देने का वर्णन है पर अन्यत्र स्वय दशरथ द्वारा मुक्ति-हेतु पिंडदान माँगने का उल्लेख किया गया है यथा ब्रह्मपुराण, स्कद पुराण आदि। मानस में अध्यात्म रामायण का ही अनुगमन है।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

(क) वाल्मीकि रामायण के निम्न प्रसग मानस में नहीं हैं:—

(१) सुमत्र, महामात्य सिद्धार्थ और वसिष्ठ का कैकेयी से विवाद[1] (२) वनवासी राम के रथ के पीछे दशरथ एव कौसल्या का नगे पाव दौड़ना[2] (३) सुमत्र को विदा करने के पश्चात् प्रथम रात्रि राम लक्ष्मण और सीता का चिन्ताकुल होकर बिताना और रात्रि-जागरण करना।[3] (४) सौम्य मुहूर्त के ध्रुवसज्ञक दिन को राम का मृगमास से वास्तुदेव की पूजा करना।[4] (५) जिस प्रकार इन्द्र शची का मनबहलाव करता है उसी प्रकार राम का सीता का मनबहलाव करना और गोदावरी में जल-क्रीडा करना।[5] चित्रकूट की सभा में उपस्थित जाबाली द्वारा लोकायत सिद्धान्त का उपदेश करना।[6] (६) राक्षसों के अत्याचार से त्रस्त मुनियों का चित्रकूट को छोड़ना।[7]

१—वही०, सर्ग, ३५, ३६, ३७। २—वही०, सर्ग ४०,३६-४४।
३—व०ी०, सर्ग ५३। ४—वही०, सर्ग ५६,२२-२६।
५—वही०, सर्ग, ६४,१-२, सर्ग ६५,१४।
६—वही०, सर्ग १०८, १-१८। ७—वही०, सर्ग ११६,१८-१६।

मानस में अध्यात्म रामायण के भी एकाध प्रसंग नहीं हैं यथा-(१) भगवान राम से राज्य न लेने के लिए नारद का अनुरोध करना।[१] (२) कैकेयी के वशीभूत राजा दशरथ की मति विभ्रम न हो जाय इसके लिए कौसल्या द्वारा दुर्गा की पूजा करना।[२] (३) वनगमन से पूर्व राम को दान देना।[३] (४) राम वनगमन के समय दुखित पुरजनों के सम्मुख कामदेव द्वारा राम के ब्रह्मत्व की कथा कहना।[४] (५) वन जाने के लिये सीता द्वारा ज्योतिषी की बात कहना।[५] (६) वाल्मीकि की आत्म-कथा का अनुकथन होना।[६] (७) दशरथ का कौसल्या को ऋषिकुमार (श्रवण कुमार) के शाप की कथा सुनाया।[७] वसिष्ठ का भारत से राम के परब्रह्म होने की बात कहना और इसी आधार पर भरत को समझाना।[८] (८) कैकेयी द्वारा राम के ब्रह्मरूप का स्तवन और क्षमा-यचना करना तथा राम का उसे भक्ति का उपदेश देना।[९]

(ख) आधार ग्रन्थों के वे प्रसंग जिनका मानस में चलताऊ वर्णन हुआ है निम्न हैं :—वाल्मीकि रामायण के निम्न प्रसंग देखे जा सकते हैं। (१) राम के युवराज्याभिषेक की तैयारी[१०] (२) अंध-मुनि-पुत्र-वध की कथा[११] (३) दशरथ मरण और विलाप।[१२] आध्यात्मरामायण के भी निम्न प्रसंग देखे जा सकते हैं- (१) वसिष्ठ द्वारा राम का विस्तृत स्तवन[१३] जो कि मानस में मात्र इतने में है-'*बरनी राम गुन सीलु सुभाऊ*। (२) माता से आज्ञा लेते समय रामने लक्ष्मण को २६ श्लोकोंमें समझाया है[१४] पर मानसमें यह कुछ ही चौपाइयों में समाप्त हो गया है।[१५]

(ग) अध्यात्मरामायण की अपेक्षा मानस के निम्न प्रसंग परिवर्तित हैं- (१) अध्यात्म रामायण में राजा दशरथ के मन में राम को राज्य देने का सङ्कल्प

१—अध्या०, सर्ग १, ३२-३५। २—वही०, सर्ग ३, ७६-८०।
३—वही०, सर्ग ४, ८१-८४। ४—वही०, सर्ग ५, ६-२६।
५—वही०, सर्ग ४, ७४-७५। ६—वही०, सर्ग ६, ५६-८६।
७—वही०, सर्ग ७, १६-४५। ८—वही०, सर्ग ७, ६३-१०८।
९—वही०, सर्ग ६, ५५-६७। १०—वा०अयो०सर्ग ३ से ६ तक।
११—वही० सर्ग ६३, ११-५३। १२—वही सर्ग ६५, १—२८।
१३—अध्या०, सर्ग, २, २७-३५। १४—अयो० सर्ग ६, १७-४३ तक
१५—अयो० १०-१४।

एकाएक उठता है पर मानस केदशरथ में दर्पण में श्वेत वालों को देखकर होता है।[१] (२) अध्यात्म के दशरथ राम के राज्याभिषेक के लिये गुरु वसिष्ठ को एक प्रकार से आज्ञा देते हैं पर मानस के दशरथ निवेदन करते हैं[२] (३) अभिषेक का समाचार सुनकर अध्यात्म के राम लक्ष्मण से कहते हैं कि—तुम्हीं राज्य करना मैं तो निमित्त मात्र रहूँगा पर मानस के राम इसलिये चिंतित होते हैं कि जब सभी भाई साथ-साथ उत्पन्न हुए तब फिर बड़े ही को क्यों राज्य दिया जा रहा है[३] (४) अध्यात्म के दशरथ अपने को कामुक कहते हैं पर मानस में यह बात नहीं है।[४] (५) सुमत्र कैकेयी के कहने पर राम को बुलाने नहीं जाते वरन् दशरथ के कहने पर ही जाते हैं।[५] मानस में यह बात नहीं है। (६) अध्यात्म में वनवास का समाचार सुनकर राम लक्ष्मण साथ ही राजा के पास रथ से जाते हैं। किन्तु मानस में राम अकेले सुमंत के साथ जाते हैं।[६] (७) अध्यात्म में राम सीता के महल में जाते हैं पर मानस में सीता कौसल्या के ही पास है।[७] (८) अध्यात्म में गुहराज शृंगवेरपुर में ही रह जाता है। पर मानस में यमुना-तट तक साथ जाता है[८]। (९) अध्यात्म में राम के रहने के लिये चित्रकूटमें वाल्मीकि ने एक विशाल पर्णशाला बनवाई परन्तु मानस में वाल्मीकि ने रहने का स्थान ही निर्देशित किया, पर्णशाला तो कोलकिरात वेष में देवताओं ने बनवाई।[९] (१०) राम के वन जाने पर अध्यात्म रामायण की कौसल्या दशरथ की भर्त्सना करती है पर मानस में ऐसा नहीं होता।[१०] (११) अध्यात्म के भरत पिता को कामी, मूढबुद्धि आदि कह कर राम से उनकी आज्ञा को सत्य न मानने का अनुरोध करते हैं पर मानस में यह बात नहीं है।[११]

१—अध्या० अयो०, सर्ग २, २–३॥ मानस० अयो०, १, ३–४॥

२—अध्या० वही० सर्ग २, १-७॥ मा० वही० २, ४, ३, १॥

३—अध्या० वही० सर्ग २, ३६-३७॥ मा० वही०, ९, ३–४।

४—अध्या० वही० सर्ग ३, ६०॥

५—अध्या० वही० सर्ग ३, ४६–४७।

६—अध्या० वही, सर्ग ३, ५०। मानस० वही०, ४–३८।

७—अध्या०, सर्ग ४, ५३॥ मा०, अयो०, ६०॥

८—अध्या० वही०, सर्ग ६, २७॥ मा० वही०, १११।

९—अध्या० वही०, सर्ग ६, ६८६–९०॥ मा०, वही०, १३२–४॥

१०—अध्या० वही०, सर्ग ७, १५-१७।

११—अध्या० वही०, सर्ग ९, ३२–३३।

(घ) मानस में चित्रकूट प्रसंग का सर्वाधिक विस्तार हुआ है। यों तो अध्यात्म रामायण की अपेक्षा सभी सरस प्रसंग मानस में विस्तृत हैं पर चित्रकूट प्रसंग वाल्मीकि रामायण से भी बड़ा है।

मानस में दास्यभक्ति और तदनुकूल उच्चकोटि का मर्यादावाद आद्यंत व्याप्त है। मानस के किसी भी सत्पात्र में किसी प्रकार की ऐसी अधीरता नहीं है जो उसके चरित्र को कलंकित बना दे। मानस में और मानस के आधारग्रन्थों में यहीं मतभेद था जिसके फलस्वरूप मानसकार को बहुत से प्रसंगों को छोड़ देना पड़ा और बहुतों का चलताऊ वर्णन करना पड़ा। आधार ग्रन्थों में वर्णित वनवासी राम की विह्वलता और भरत के आमरण अनशन जैसे प्रसंग इसीलिए तुलसी की लेखनी से अछूते रहे और इसी कारण गुरु वसिष्ठ तथा माता कैकेयी को राम की स्तुति भी नहीं करनी पड़ी है। यहाँ तुलसीदास ने लोकधर्म का निर्वाह किया है। राम के भक्तवत्सल स्वरूप को भी मानसकार ने अधिकाधिक प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। मानस के राम, नारद के शाप को सार्थक करने के लिए अध्यात्म के राम की भाँति नारद के कहने पर वन नहीं जाते, वे तो स्वयं जाते हैं। नारद तो अरण्यकाण्ड में तब आते हैं जब देखते हैं कि उनके शाप को अंगीकार करके भगवान नाना कष्ट सहन कर रहे हैं। राम को परब्रह्म सिद्ध करने की धुन में अध्यात्म की भाँति मानस के भरत को वसिष्ठ यह नहीं समझाते हैं कि राम ब्रह्म हैं; भरत तो उनके अंश ही हैं, फिर उन्हें इस प्रकार का समझाना कैसा? रामदेव भी अध्यात्मरामायण की भाँति मानस के पुरवासियों को समझाने नहीं आते हैं। वस्तुतः तुलसीदास ने अपने को ऐसी असंगतियों से सर्वथा बचाया है। परिवर्तन भक्ति-भावना एवं आदर्शवाद के आधार पर हुआ है किन्तु कहीं भी उसमें से धृष्टता, कर्तव्यच्युतता और लोक-पराङ्मुखता की गंध नहीं आती है। इसे तुलसीदास के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप का ही परिणाम कहा जा सकता है।

जहाँ तक चित्रकूट प्रसंग के परिवर्तन का प्रश्न है इसके विषय में यही कहा जा सकता है कि समाज के विभिन्न वर्गों को एक स्थल पर उपस्थित करके उनके बीच मर्यादावाद की उच्चातिउच्च छटा दिखाना ही कवि का अभिप्रेत था। सभी वर्गों और समस्त सम्बन्धों की योजना को पूर्ण बनाने के निमित्त विदेहराज भी

सदलबल उपस्थित हो जाते हैं। इस स्थल पर काव्यात्मकता भी अधिक है। यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि अयोध्याकाड तक कवि उतना भक्त नहीं हो पाया है जितना कि अरण्यकांड से हो जाता है। इसी आधार पर कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि सर्वप्रथम रामजन्म से लेकर चित्रकूट प्रसग तक की ही कथा निर्मित हुई थी। बाद में कई कारणों से कवि का दृष्टिकोण विशेष साम्प्रदायिक होता गया और तदनुकूल अन्य काडों की रचना में वह कवि से अधिक भक्त हो गया।

स्थानान्तरण

मानस में दो प्रसंगों का स्थानान्तरण हुआ है (१) भक्त केवट का प्रसंग अध्यात्म रामायण की भाँति अहल्योद्धार के पश्चात न आकर शृंगवेरपुर के गुहराज के साथ ही आता है (२) अत्रि के यहाँ मानस के राम अरण्यकाड में जाते हैं जबकि अध्यात्म में यह कथा अयोध्याकाड के अंत में आती है।

प्रथम स्थानान्तरण इसलिए हुआ कि गोस्वामी जी ने भक्त केवट और गुहराज का एकीकरण कर दिया। ऐसा करने से पुनरावृत्ति दूर हो गई। वस्तुतः दोनों ही केवट भक्त ही थे फिर दो बार उसी प्रसग को कहना ठीक नहीं था। दूसरा स्थानान्तरण सभवतः अरण्यकाड के अन्य मुनियों के साथ अत्रि मुनि के प्रसग को भी जोड़ने की दृष्टि से हुआ है।

नूतन उद्भावनाएँ

(१) राम वनगमन के समय मार्ग में ग्रामवासियों एव ग्रामवधुओं की योजना और (२) यमुना के तट पर राम से एक भक्त तापस का मिलन, तुलसी की नूतन उद्भावना है।

भक्ति युग में भगवान के तीन रूप—शक्ति, शील और सौंदर्य–में से सौंदर्य रूप ही प्रमुख हो गया था। हो सकता है, ऐसा गोपालकृष्ण के प्रभाव से हुआ हो। रामायण के राम की अपेक्षा मानस के राम में भी सौंदर्य अधिक है। शत्रु तक इनके सौंदर्य से विमोहित हो जाते हैं—यथा खर-दूषण। इसी सौंदर्य रूप की विवृत्ति के लिए यह प्रसग रचित हो सकता है—कारण सम्पूर्ण ग्रामवासी राम के सौंदर्य से अभिभूत हैं। दूसरे कारण के रूप में तुलसी की दास्य भक्ति भावना को भी माना जा सकता है। तुलसी के आराध्यदेव बन्धु एव पत्नी के

साथ नगे पाँव भटकते हों, यह भक्त को सह्य नहीं था। अतः ग्रामवासियों के रूप में स्वयं भक्त कवि ने अपने हृदय के उफान को उड़ेला है। उसने दो-दो बार एक ही बात, दो भिन्न स्थलों पर, ग्रामवासियों के मुख से कहलवाई है—'ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे॥' इस प्रसंग को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार पूरी की पूरी चौपाई की पुनरावृत्ति नहीं हुई है। यहाँ इसे तुलसी की भावना का विस्फोट ही कहा जा सकता है। चूँकि यहाँ भक्त कवि का हृदय उबल पड़ा है, अतः स्वभावतः इस प्रसंग में बड़ी ही सरसता और मार्मिकता है।

जहाँ तक यमुना के तटपर तापस वेष में एक भक्त के उपस्थित होने का प्रश्न है, इसके विषय में कहा जा सकता है कि वहाँ अपनी जन्मभूमि के पास तापस-वेष में स्वयं तुलसीदास ही उपस्थित हैं-यद्यपि कुछ इस प्रसंग को प्रक्षिप्त मानते हैं और कुछ तापस-वेष में चित्रकूट आदिका आना मानते हैं। जो भी हो,यदि तुलसीदास की जन्मभूमि वहीं है तो फिर वह भक्त निर्विवाद रूप से दूसरा कोई नहीं स्वयं तुलसीदास ही हैं। किन्तु जबतक जन्मभूमि का प्रश्न नहीं सुलझ जाता, तबतक के लिये तो इतना ही कहकर सतोष किया जा सकता है कि तुलसीदास ने सम्पूर्ण मानस में, सामान्य परिस्थिति में राम को सेवक विहीन होकर नहीं घूमने दिया है, और इसी उद्देश्य से गुहराज के लौट जाने पर यहां इस भक्त को उपस्थित होना पड़ा है। इस प्रकार का सेवक सदैव उनके परिवार के व्यक्तियों से भिन्न रहा है।

अरण्य कांड

अरण्यकाण्ड की सामग्री में कोई विशेष विकास नहीं हुआ है। परवर्ती धार्मिक भावना के प्राबल्य के अनुसार सभी पात्रों को—चाहे वह ऋषि हो अथवा रावण—भक्त बना दिया गया है और वास्तविक सीता का हरण न दिखलाकर मायामय सीता का अपहरण दिखाया गया है। शेष सब ज्यों का त्यों है। भक्ति-ग्रन्थ होने के नाते मानस में भी इस धार्मिक भावना की अधिकता है। समान कथा के होते हुए भी उसके वातावरण में किस प्रकार परिवर्तन किया गया है यहाँ हमें देखना ही अभीष्ट है।

(१७) जयंत-कथा वाल्मीकिरामायण के सुन्दरकाड में इस काकवृत्तान्त को सीता ने अभिज्ञान-स्वरूप हनुमान को सुनाया था। किसी समय राम सीता की गोद में सो रहे थे। उसी समय एक काक (इन्द्र का पुत्र) सीता के स्तनों पर आघात करने लगा। जगने पर राम ने उस पर ब्रह्मास्त्र चलाया। कहीं भी शरण न पाकर अत में काक ने राम के यहां शरण ली और एक आख देकर अपनी रक्षा की।

जयत काम-रूप पर अनेक कथाएँ निर्मित की गई हैं पर चूँकि मानस में उसने काक-रूप स्वेच्छा से ग्रहण कर लिया था अत इस पर यहाँ विचार करना ठीक नहीं है। यहाँ दो ही बातें देखनी हैं (१) काक ने कहाँ पर चोंच मारी है और (२) यह प्रसग रामकथा में किस स्थान पर आता है। वाल्मीकि रामायण में चोंच का स्तन पर मारना वर्णित है पर बाद में भक्तों ने इसे चरण पर निर्दिष्ट किया— यथा, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण आदि में। मानस में भी ऐसा ही है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसग भरत के चित्रकूट में आने के पूर्व है, कालिदास ने इसे रघुवश में भरत के लौटने के पश्चात् स्थान दिया है। नृसिंह पुराण, पद्मपुराण में ऐसा ही है। मानस में इसी का अनुकरण है।

(१८) राम का ऋषियो को दर्शन देना:—वाल्मीकि रामायण में ऋषि-आश्रमों में राम का सत्कार केवल अतिथि के रूप में होता है लेकिन अर्वाचीन रामकथाओं में राम की भगवान के रूप में स्तुति की जाती है। मानस पर इसी का प्रभाव है।

(१९) विराध तथा कबंध की कथा–भक्ति भावना के आवेग में राक्षसों को भी प्राकारान्तर से भक्त बना दिया गया है। राम का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए उनके वाण से आहत प्राणी की मुक्ति दिखाना भी धार्मिक प्रभाव है। अध्यात्म रामायण के आधार पर मानस में भी यही बात है।

(२०) जटायु प्रसंग:—वाल्मीकि रामायण में राम जटायु को सीता की खोज करते देखते हैं और उसे सीता का भक्षण करने वाला राक्षस समझते हैं। अध्यात्म रामायण में भी यही बात है। बाद की कथाओं में जटायु का प्रसग दो बार आता है—सीताहरण के पूर्व और फिर बाद में, यथा अध्यात्म

रामायण में। मानस में भी यह प्रसंग दो बार आया है पर इस जटायु को राम कभी भी राक्षस के रूप में नहीं देखते हैं।

(२१) मायामय सीता—वाल्मीकि रामायण में सीताहरण बड़ा ही उग्र और किंचित घृणास्पद है। इसको दूर करने के लिए राम-कथा-साहित्य में दो विधियाँ व्यवहृत हुई हैं। एक के अनुसार रावण सीता का अपहरण करते हुए भी उनका स्पर्श नहीं करता है यथा नृसिंह पुराण, गुणभद्रकृत उत्तर पुराण आदि में। इसके लिए अनेक कथाएँ रच ली गई हैं। दूसरी विधि के अनुसार छाया सीता का ही हरण होता है और वास्तविक सीता अग्नि में निवास करती है। माया सीता के हरण का वृत्तान्त पहले पहल कूर्म्म पुराण के पतिव्रतोपाख्यान में मिलता है जिसमें एकाकी सीता रावण से भयभीत होकर अग्नि की शरण लेती हैं। अग्नि ने माया सीता का निर्माण कर दिया और रावण ने उसी का हरण किया। ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीमद्देवीभागवतपुराण आदि में किंचित परिवर्तन के साथ स्वयं अग्निदेव राम के पास आते हैं और अपहरण की सूचना देकर उनसे सीता को माँग लेते हैं। भक्तों ने राम की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए अग्नि का महत्व भी राम एवं सीता को ही दे दिया। यहाँ राम की ही इच्छा से सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं और अग्नि-परीक्षा के समय स्वयं उसमें से निकल आती हैं। अध्यात्म रामायण में और उसी के अनुकरण पर मानस में भी यही बात है।

(२२) सीताहरणः—सीता हरण के कारणों में कनकमृग की कथा प्रायः सर्वत्र मिलती है। कनकमृग के आख्यान को तर्कसम्मत बनाने के लिये भासकृत प्रतिमा नाटक में एक नयी युक्ति ही निकाली गई है जिसका यहाँ उल्लेख ठीक नहीं है। कनकमृग के पीछे राम-लक्ष्मण के जाने के बाद रावण सीता का कैसे अपहरण करता है इसके लिये नृसिंहपुराण, बृहद्धर्मपुराण, उत्तरपुराण आश्चर्य-चूड़ामणि नाटक आदि में अनेक आख्यान निर्मित किए गए हैं। यहाँ रावण संन्यासी के बजाय कहीं-कहीं राम-लक्ष्मण के वेष में आकर सीता से अयोध्या चलने के लिये कहता है और रथ पर बैठा लेता है। 'सूरसागर', केशवकृत 'रामचन्द्रिका' आदि में लक्ष्मण द्वारा खींची गई धनुष-रेखा को न पार कर सकने के कारण रावण नाना छद्मवेष से सीता को उसके बाहर निकलवाता है। भक्तों के

बीच रावण सीताका हरणमोक्ष प्राप्त करनेके लिये करता है, इसका प्रथम उल्लेख रामतापनीयोपनिषद् में मिलता है। बाद में अध्यात्मरामायण,पद्मपुराण, आनन्द रामायण आदि में भी इसी का उल्लेख मिलता है। मानस में भी यही बात है। अध्यात्म में रावण सीता के चरण के पास की मिट्टी खोदकर साथ ले जाता है और माता के समान पालन करता है–'मातृवत पालयामास'। मानस में हरण के पूर्व प्रणाम करता है–*'मन महु चरन बदि सुख माना'* ।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

(क) गोस्वामी जी ने आधारग्रन्थों के बहुत से प्रसंगो को छोड़ दिया है। ये प्रसग वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में लगभग एक ही प्रकार के हैं अतः यहाँ अध्यात्मरामायण को ही लिया जा रहा है। छूटे प्रसग निम्न हैं:—

(१) अगस्त्य का राम को एक इन्द्रधनुष, कभी न खाली होने वाला एक तरकस और एक रत्नजटित खड्ग देना।[१] (२) सीता का लक्ष्मण को कटु वचन कहना।[२] (३) सीता का रावण को अपना परिचय देना।[३] (४) मायामय हरिण को मारकर लौटते समय लक्ष्मण को आते देखकर राम का अपनी लीला के विषयमें सोचना।[४]

(ख) इसी प्रकार आधार ग्रन्थों के बहुत से प्रसगों का मानस में उल्लेख मात्र हुआ है। ये प्रसंग रामायण एव अध्यात्म रामायण दोनों ही में प्राय समान रूप से विस्तृत हैं, अत यह अध्यात्म से उदाहरण दिया जा रहा है। (१) अध्यात्म में विराध की विस्तृत कथा है पर मानस में उल्लेख मात्र हुआ है[५] (२) अध्यात्म के विपरीत मानस में अगस्त्य की स्तुति छोटी है[६]

१—वहीं, अरण्य, सर्ग ३, ४५ ॥ २—वहीं, सर्ग ७, ३१-३४ ॥
३—वही०, सर्ग ७, ४२–४४ ॥ ४—वही०, सर्ग ८, १–७ ॥
५—अध्या०, अरण्य०, सर्ग, १, १७–४५ ॥
मानस, वही०, ६ (ख), ३–४ ॥
६—अध्या०, वही०, सर्ग ३, १७–४६ ॥
मा०, वही०, १२, ३–८ ॥

(४) 'अध्यात्म' मे शूर्पणखा रावण से पूरी कथा कहती है पर मानस में अति संक्षेप में सब बात कह देती है[1] (५) इसी प्रकार अध्यात्म रामायण में रावण मारीच से पूरी कथा कहता है[2] जिसका मानस में इस प्रकार संकेत है— 'दसमुख सकल कथा तेहि आगे, कही सहित अभिमान अभागे।' (६) मानस में विराध-प्रसंग भी बहुत छोटा है (७) अध्यात्म की भाँति मानस में शबरी की आत्मकथा नहीं है।[3]

(ग) अध्यात्म रामायण के निम्न प्रसग मानस में परिवर्तित हो गए हैं— (१) 'अध्यात्म' में राम अत्रि से मार्ग दर्शक माँगते हैं और कुछ ब्रह्मचारी साथ जाते हैं पर मानस में ऐसा नहीं है[4] (२) विराध प्रसंग के पूर्व, 'अध्यात्म' में राम ब्रह्मचारियों द्वारा बनाई हुई डोंगी से नदी पार करते हैं पर मानस मे नदी पार करने का प्रसग नहीं है। उसमें मात्र इतना है कि नदी-नाले सभी प्रभु को पहिचानकर मार्ग दे देते थे।[5] (३) 'अध्यात्म' में शरभग की योग समाधि के पश्चात् ऋषिगण राम से कहते हैं कि 'आप ब्रह्म हैं, आपने इसीलिए अवतार लिया है, अतः चलकर ऋषियों की अस्थियों को देखिए और फिर रावण का नाश करिए'। पर मानस के राम से ऐसा नहीं कहना पड़ता, वे स्वयं जाते हैं और अस्थि समूह को देखकर राक्षसों के नाश की प्रतिज्ञा करते हैं[6] (४) अध्यात्म के सुतीक्ष्ण की अपेक्षा मानस के सुतीक्ष्ण अधिक भक्त हैं।[7] रामागमन सुनकर नाचने तक लगते हैं। (५) 'अध्यात्म' में राम के कहने पर सुतीक्ष्ण अगस्त्य को

१—अध्या० वही० सर्ग ५, ४०-४४, ४६-५६
मा०. वही०, २१ (ख) १-६ ॥

२—अध्या० वही० सर्ग ६, ७-१३, २०-२५ ॥

३—अध्या० सर्ग १०, १०-१६; ३४-४० ॥

४—अध्या०, वही०, १, १-५ ॥ मानस, वही०, ६, ६ ॥

५—अध्या०, वही०, सर्ग १, ७-६ ॥ मा०, वही०, ६, २ ॥

६—अध्या०, वही०, सर्ग २, १४-१७ ॥ मा०, वही०, ८ ॥

७—अध्या०, वही०, २, २७-३४ मा०, वही०, ६, १ से दो-११ तक ॥

सूचना देने जाते हैं पर मानस में स्वय जाते हैं।[१] (६) अध्यात्म के राम गृद्ध को पहले राक्षस समझते हैं पर मानस में यह बात नहीं है।[२] (७) मानस में लक्ष्मण से कही गई रामगीता सरस और भक्तिपरक है जबकि 'अध्यात्म' की नीरस और विशुद्ध साम्प्रदायिक है।[३] (८) 'अध्यात्म' की शूर्पणखा गौतमी नदी के तीर पर पद्म, वज्र और अंकुश की रेखाओं से युक्त राम के पद-चिह्नों को देखकर मोहित होती है और अपने मुख से अपना परिचय देती हुई अपने को नर-भक्षिका कहती है, पर मानस में यह बात नहीं है, यहाँ वह एकाएक घूमती हुई परमसुन्दरी के रूप में आती है।[४] (९) 'अध्यात्म' में शूर्पणखा राम एव लक्ष्मण से सम्भोग करने का प्रस्ताव करती है पर मानस में मात्र विवाह का करती है।[५] (१०) 'अध्यात्म' में शूर्पणखा राम के यहाँ से लक्ष्मण के यहाँ एक ही बार जाती है पर मानस में दो बार लौटनेपर क्रुद्ध होती है।[६] (११) मानस की भाँति 'अध्यात्म' में खरदूषण एव राम का परस्पर सवाद नहीं है। (१२) अध्यात्म का रावण मारीच से राम को ब्रह्म बतलाता है पर मानस का नहीं।[७] (१२) 'अध्यात्म' में राम के बाण से मरे मारीच का तेज राम के मुख में समा जाता है पर मानस में उसे परमपद प्राप्त होता है।[८] (१४) अध्यात्म में कबंध को अष्टावक्र का शाप है पर मानस में यह शाप दुर्वासा का है।[९] (१५) 'अध्यात्म' में राम के सामने शवरी जल जाती है [१०] पर मानस में यह बात नहीं है।

१—अध्या०, वही०, सर्ग ३, ५–६ ॥ मानस, वही०, ११, ३-४ ॥
२—अध्या० वही० सर्ग ४, १–२ ॥
३—अध्या०, वही०, सर्ग ४, ३०-५१ ॥ मा०, वही०, १४–१६ ॥
४—अध्या०, वही०, सर्ग ५, १–७ ॥ मा०, वही० १६, ४ ॥
५ - अध्या०. वही०, सर्ग ५, ११ ॥
६ —अध्या०, वही०, सर्ग ५, १३=१७ ॥ मा०, वही०, १६, ५–१० ॥
७ –अध्या०, वह०, सर्ग १, ३०–३२ ॥
८—अध्या०, वही०, सर्ग ७, २० ॥ मा०, वही०, २६, ६ ॥
९—अध्या०, वही०, सर्ग ६, १२ ॥ १०—अध्या०, वही०, सर्ग, ४१०॥

(घ) मानस में आधार-ग्रन्थों की अपेक्षा किसी प्रसंग का अधिक विस्तार नहीं हुआ है। हाँ, अध्यात्म की अपेक्षा मानस का खरदूषण प्रसंग अवश्य कुछ बड़ा है।

मानस में जो कुछ भी परिवर्तन-परिवर्द्धन हुआ है उसके मूल में अध्यात्म रामायण की अपेक्षा मानसकार की उत्कट भक्ति-भावना और मर्यादावाद ही है। भक्त गीध को राक्षस कहना अथवा प्रभु के सामने शूर्पणखा से सम्भोग का प्रस्ताव रखवाना, तुलसीदास को सह्य नहीं था। साथ ही राम के चरित्र को अधिकाधिक उदात्त और भक्तवत्सल बनाने का तुलसीदास का प्रयत्न भी रहा है। तभी वह अगस्त्य के यहाँ स्वयं जाते हैं, सुतीक्ष्ण से समाचार नहीं भिजवाते हैं। इसी प्रकार राक्षसों के अत्याचार को देखने के लिए ऋषियों की प्रार्थना पर नहीं वरन् स्वयं अपनी इच्छा से अस्थि-समूह तक जाते हैं। घटना को स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक बनाने के लिये भी मानसकार सचेष्ट है: तभी वह एक ही बार लौटने पर शूर्पणखा को क्रुद्ध नहीं करता, क्रुद्ध तो वह कई बार लौटने के उपरांत होती है। इसी प्रकार राम और खर-दूषण के युद्ध की भयंकरता प्रदर्शित करने के निमित्त युद्ध के पहले खर दूषण एवं राम का संवाद होता है। भक्त होने पर भी मानस का रावण किसी दूसरे के सामने राम को कभी भी ब्रह्म नहीं कहता है। यही कारण है कि राम और रावण के युद्ध की गंभीरता और भयंकरता कहीं भी नष्ट नहीं होने पाई है। यही नहीं, वरन् गोस्वामीजीको निरर्थक आवृत्ति अथवा फालतू प्रसंगों से भी चिढ़ है, अतः वे ऐसे प्रसंगों का उल्लेख मात्र करते हैं। मानस के अन्य अनेक प्रसंगों की काट-छाँट को भी तुलसीदास की इसी कला अथवा वृत्ति की ओट में परखा जा सकता है। तुलसीदास की यह वृत्ति कहीं भी कुंठित नहीं हुई है।

स्थानान्तरण

अध्यात्मरामायण की तुलना में मानस में स्थानान्तरित प्रसङ्ग दो हैं (१) अध्यात्म में सीता का माया रूप कनक मृग दिखाई पड़ने के बाद का है पर मानस में पहले का है।[१] (२) 'अध्यात्म' में पंपा-सरोवर का वर्णन किष्किन्धा-कांड में है पर मानस में यह प्रसंग अरण्य कांड में ही है।[२]

१—अध्या०, वही०, सर्ग ७, ७—३॥ २—मा०, वही०, ७३, १॥

वाल्मीकि रामायण के काक-प्रसंग और मानस के काक-प्रसंग में भी स्थान का अन्तर पड़ गया है।

कनकमृग के पूर्व मानस में सीता का अग्नि में वास अधिक स्वाभाविक है। अन्तर्यामी भगवान तो पहले से ही जान सकते हैं, देखकर मानना कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। किष्किधा के आरम्भ में पंपा-सरोवर का वर्णन न होकर अरण्य काड के अन्त में होना नाटकों की शैली पर है।

जयंत की कथा वाल्मीकि रामायण में है पर इसका अनुकथन सुन्दरकाड में हुआ है। मानस में राम के कर्म क्षेत्र में प्रविष्ट होने के पूर्व (अरण्यकाड के आरम्भ से) काक का वृत्तान्त राम की अलौकिक सत्ता का विजयघोष है। राम के वैरी को त्रिलोक में भी शरण नहीं मिल सकती है इसे दिखाने की दृष्टि से यह प्रसंग यहाँ बहुत ही उपयुक्त है।

किष्किन्धाकांड

किष्किन्धाकाड की सामग्री में अत्यल्प परिवर्तन हुआ है। इधर उधर जो किंचित परिवर्तन हुआ है उसी पर यहां विचार किया जायगा।

(२३) वालि वध—अधिकाश अर्वाचीन कथाओं में वालि राम-भक्त माना गया है। उसे राम के स्वरूप का ज्ञान था, तभी वह स्वर्ग प्राप्त करता है। अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, रामचरितमानस आदि में ऐसा ही हुआ है। महाभारत के रामोपाख्यान तथा नृसिंहपुराण की राम-कथा में वालि और सुग्रीव के एक ही द्वन्द्वयुद्ध का उल्लेख है जबकि वाल्मीकि रामायण में दो का वर्णन है। मानस में भी दो का उल्लेख है। वालि को अनायास मारने में राम के अक्षत्रियोचित कार्य की कालिमा को धोने के लिए कई युक्तियाँ काम में लाई गई हैं। यह प्रयत्न सम्भवतः नाटकों से चला है। महावीर चरित में माल्यवान के उभाड़ने पर द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत वालि का बध होता है। अनर्घराघव, महानाटक, जानकीपरिणय आदि में भी यही बात है पर भक्तिग्रन्थों में वध का मुख्य कारण वालि का भ्रष्टाचार है। अध्यात्मरामायण, मानस आदि में यही तथ्य उभड़ा है।

(२४) ऋतु वर्णन—पुराणों में वर्षा और शरद् को ही स्थान मिला है, अन्य ऋतुओं के दर्शन नहीं होते। यह एक ऐसी परम्परा है जिसका कारण

अज्ञात है। मानस में भी इन्हीं दो ऋतुओं का वर्णन है। यह वर्णन वाल्मीकि की भाँति प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र न होकर उपदेशात्मक ही है।

(२५) वानरों द्वारा सीता की खोज—वाल्मीकि रामायण में सीता की खोज के लिए बन्दर चारों दिशा में जाते हैं और विन्ध्यपर्वत में भटकते रहते हैं। अध्यात्मरामायण में भी अंगदादि विन्ध्यप्रदेश में घूमते हैं परन्तु मानस में इसका उल्लेख नहीं है। सीता की प्रतीति के लिए कनक मुद्रिका हनुमान को दी जाती है, बाद में सीता हनुमान को अपना चूड़ामणि देती हैं और काक-वृतान्त सुनाती हैं। अभिनन्दन कृत रामचरित में राम हनुमान को अपनी वंशावली सिखाते हैं। आनन्द 'रामायण में सीता के भाल पर तिलक लगाने का अपना वृत्तान्त सुनाते हैं, पर मानस में इस ढंग का कोई भी वृत्तान्त नहीं सुनाया गया है।

२६) नारी (स्वयंप्रभा) का वृत्तान्तः—स्वयंप्रभा के विभिन्न नाम मिलते हैं किन्तु कथा सर्वत्र समान है। महाभारत में उसका नाम प्रभावती है, नृसिंह पुराण में प्रभा है, अग्निपुराण में सुप्रभा और रामायण एवं अध्यात्म रामायण में स्वयंप्रभा ही है, परन्तु मानस में इसका नाम ही नहीं है। यहाँ 'नारी' की संज्ञा से इसका उल्लेख किया गया है।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

(क) मानस के इस काण्ड की कथा तथा वाल्मीकि रामायण की कथा और अध्यात्मरामायण की कथा में कोई अन्तर नहीं है जो अन्तर है भी वह केवल दोनों की भिन्न भिन्न भावना का अन्तर है। अतः यहाँ भी सुविधा के लिए अध्यात्म को ही लिया जा रहा है। अध्यात्म के निम्न प्रसंग मानस में नहीं हैं।

(१) हनुमान के मुख से शुद्ध संस्कृत भाषा सुनकर राम का उन्हें पंडित व्यक्ति समझना।[१] द्वितीय बार सुग्रीव के द्वन्द युद्ध के लिए तत्पर वालि से तारा का वन में सुनी हुई अंगद की बात कहना।[२] वालि-वध के पश्चात् नगर

१—अध्या०, किष्कि०, सर्ग १, १७-१८ २—वही०, सर्ग २, २७-३२

रक्षा के लिए तत्पर बन्दरों का तारा से अंगद को राजा बनाने के लिए कहना[1] विन्ध्याचल में भटकते हुए बन्दरों द्वारा राक्षस का वध होना।[2] सुग्रीव का राम से अपनी सेना का वर्णन करना।[3] स्वयंप्रभा की विस्तृत कथा एवं वन्दना।[4]

(ख) अध्यात्म के वे प्रसग जिनका मानस में उल्लेख मात्र हुआ है निम्न हैं—

(१) राम से सुग्रीव की अति विस्तृत प्रार्थना जो मानस में बहुत ही छोटी है।[5] (२) तारा-राम सम्वाद जो मानसमें सक्षिप्त है।[6] (३) स्वयं प्रभा की कथा[7] मानस में अध्यात्म जैसी विस्तृत नहीं है। (४) वानरों का सम्पाती से गीध की मृत्यु की कथा कहना। मानस में यह इस प्रकार है . कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई।[8] (५) सम्पाति की आत्मकथा में चन्द्रमा मुनि का उपदेश जिसका मानस में इस प्रकार उल्लेख है—बहु प्रकार तेहि ग्यान सुनावा। देह जनित अभिमान उड़ावा।[9]

(ग) अध्यात्म रामायण की तुलना में मानस के निम्न प्रसङ्गों में परिवर्तन हुआ है। (१) अध्यात्म के हनुमान राम के गुणों का वर्णन करके उन्हें ब्रह्म-सा अनुमानित करते हैं पर मानस के हनुमान को निश्चय हो जाता है।[10] (२) अध्यात्म के हनुमान राम-लक्ष्मण को बीच ही में एक स्थल पर ठहरा कर सुग्रीव को सूचना देने जाते हैं, पर मानस में ऐसा नहीं है।[11] (३) अध्यात्म

१—वही०, सर्ग ३, १-३
२—वही०, सर्ग ६, ३१-३२
३—वही०, सर्ग ६, ५-१६
४—वही०, सर्ग ६, ५०-७१
५—अध्या०, वही०, सर्ग १, ७६-९३ मा०, वही०, ६, ८-११
६—अध्या०, वही०, सर्ग ३, ८-३५ मा०, वही०, १०, ३-४
७—अध्या०, वही०, सर्ग ६, ५०-७७ मा०, वही०, २४, १-४
८—अध्या०, वही०, सर्ग ७, ३६-४५ मा०, वही०, २६
९— अध्या०, वही०, सर्ग ८, ११-५२ मा०, वही०, २७, ३
१०—अध्या०, वही०, सर्ग १, १२—१६॥ मा०, वही०, १, ३—४॥
११—अध्या०, वही०, सर्ग १, २०—२१।

की तारा राम के विषय में अंगद से समाचार पाती है, पर मानस की पहिले से ही जानती है।[1] (४) अध्यात्म का वालि राम को कटु शब्द कहता है, पर मानस का ऐसा नहीं करता है।[2] (५) मानस के राम वालि को अचल करने के लिए कहते हैं पर अध्यात्म के राम नहीं कहते हैं।[3] (६) अध्यात्म की भाँति मानस में लक्ष्मण को सुनाई गई राम गीता नहीं है, जो कुछ उपदेश है वह प्रकृति वर्णन के माध्यम से व्यक्त किया गया है।[4] (७) सीता की खोज में शिथिल वानरों (वानरराज) के ऊपर कुपित लक्ष्मण को अध्यात्म के हनुमान कड़ा उत्तर देते हैं पर मानस में यह उत्तर सेवक की भाँति है।[5]

उपरोक्त परिवर्तन-परिवर्द्धन के मूल में अरण्यकाण्ड जैसी तुलसी की भक्ति-भावना और मर्यादावाद ही है। पुनुरुक्ति के भय से कथाओं को संक्षिप्त कर दिया गया है। हनुमान के चरित्र को तुलसी ने खूब परिष्कृत किया है। मानस की कथा राम ही के चारों ओर रहती है, इधर उधर कम भटकती है।

(घ) किसी प्रसंग का विशेष ढग पर परिवर्द्धन अथवा स्थानान्तरण आदि इस कांड में नहीं है।

सुन्दर कांड

मानस से सम्बन्धित सुन्दरकाण्ड की राम कथा में निम्न परिवर्तन-परिवर्द्धन हुआ है।

(२७) हनुमान का छद्मवेष —वाल्मीकि के अनुसार हनुमान ने विडाल के आकार के छोटे बन्दर के रूप में लंका में प्रवेश किया था। परवर्ती अनेक राम कथाओं में वह वास्तव में विडाल बन जाते हैं, यथा बृहद्धर्मपुराण में (ओतु भूत्वा)। अन्य राम कथाओं में हनुमान के भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं;

१—अध्या०, वही०, सर्ग २, २५-२९ ।
मा०, वही०, ६, १४-१५॥

२—अध्या०, वही०, सर्ग २, ५१-५८॥
मा०, वही०, ८, ३॥

३—मा०, वही०, ९, १॥

४—अध्या०, वही०, सर्ग ४, ११-२०॥
मा०, वही०, १३ से दो० १७ तक

५—अध्या०, वही०, सर्ग ५, ५४-५६
मा०, वही०, १८, ५॥

यथा गुणभद्रकृत उत्तर पुराण में भ्रमर का रूप, वह्निपुराण में मूषक का रूप और पंजाब की एक लोक-गीत में काक का रूप है। अध्यात्म रामायण में केवल सूक्ष्म रूप का ही संकेत है।[1] रामचरित मानस में अध्यात्म रामायण का ही अनुगमन हुआ है।

(२८) लंकिनी की कथाः—वाल्मीकि रामायण में लंका देवी राक्षसी के रूपमें हनुमान को रोकती है। रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में हनुमान से पराजित होकर वह कहती है कि स्वयंभू ने उससे कहा था—तुम्हारी पराजय के बाद राक्षसों का नाश होगा। अध्यात्मरामायण में यह बात ब्रह्मा के मुख से कही गई है। बृहद्धर्मपुराण आदि में लंका देवी के रूप में चण्डिका है। शिव के रूप में अवतरित हनुमान चण्डिका से लंकापुरी को छोड़ देने की प्रार्थना करते हैं और वह तदनुसार छोड़ देती है। मानस में अध्यात्मरामायण का अनुकरण किया गया है, पर यहाँ अध्यात्म की भाँति ब्रह्म द्वारा राम-जन्म, वनवास, सीताहरण सुग्रीव-मैत्री, हनुमान-युद्ध आदि का वृतान्त न वर्णित होकर इतना कहा गया है कि 'जब तू बन्दर के मारने से मूर्छित हो जाना तब लंका का विनाश समझ लेना।[2]'

(२६) हनुमान-विभीषण-मिलापः—वाल्मीकि रामायण में हनुमान और विभीषण का मिलन नहीं हुआ है अध्यात्म रामायण में भी यह बात है। जैनरामकथाओं में सम्भवतः सर्वप्रथम हनुमान और विभीषण का मिलन दिखाया है। पउमचरिउ में विभीषणने हनुमान का स्वागत किया था और साथ ही सीता को लौटा देने के लिए रावण से आग्रह करनेकी प्रतिज्ञा भी की थी। गुणभद्रकृत उत्तरपुराण में जब हनुमान द्वितीय बार लंका जाते हैं तो पहले-पहल विभीषण से ही मिलते हैं। अर्वाचीन राम-कथाओं में भक्ति-भावना की अधिकता के साथ विभीषण को भक्त सिद्ध किया गया है। विभीषण के राम नाम संकीर्तन करते समय हनुमान स्वयं उसके स्थान पर पहुँचते हैं, जैसा आनन्द रामायण में है। मानस में भी यही बात है। अध्यात्मरामायण में हनुमान को सीता का समाचार देने का जो कार्य लंकिनी ने किया है वही कार्य मानस में विभीषण ने किया है।

१—अध्या०, सुं०, सर्ग १, २१ ॥

२—मा० सु ०, ३, ४ ॥

(३०) सीता का आत्महत्या का प्रयत्न—वाल्मीकि रामायण में सीता आत्महत्या का विचार करती है। इसके लिए वह अपनी लम्बी-लम्बी वेणी से फाँसी लगाना चाहती है। अध्यात्म रामायण में भी यही बात है। पर अन्यत्र थोड़ा परिवर्तन किया गया है। प्रसन्नराघव तथा आश्चर्यचूड़ामणि में तो सीता पानी में कूदने की तैयारी करती है। मानस में इन सबसे भिन्न सीता त्रिजटा से चिता तैयार करने का अनुरोध करती है।

(३१) विभीषण की शरणागति—विभीषण की शरणागति के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की गई हैं। राम की शरण में आने का तात्कालिक कारण कहीं तिरस्कार है तो कहीं पद-प्रहार आदि। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में रावण विभीषण का तिरस्कार ही करता है पर मानस में पद-प्रहार भी करता है। वाल्मीकि रामायण के गौडीय पाठ में विभीषण रावण से पृथक होने के पश्चात पहले अपने भाई वैश्रवण से परामर्श करने के लिए कैलास जाता है पर अध्यात्मरामायण,'मानस' आदि में वह सीधे राम की शरण में जाता है।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

(क) वाल्मीकि रामायण के निम्न प्रसंग मानस में नहीं हैं :—

(१) सीता की खोज के लिए हनुमान के लंका में भ्रमण करते समय लंका का वर्णन।[१] (२) सीता को समझाने के लिए किए गए राक्षसियों के प्रयास की विस्तृत विवृत्ति।[२] (३) हनुमान के अशोकवाटिका में पहुँचने पर सीता को होने वाले शकुन का वर्णन।[३] (४) हनुमान का सीता से उनका परिचय पूछना और सीता का परिचय देना।[४] (५) हनुमान का राक्षसों के मंदिर का जलाना।[५] (६) हनुमान द्वारा प्रहस्त-पुत्र जंबुमाली का वध।[६]

१—रा०, सु०, सर्ग ४, ५ और ६।

२—रा०, वही०, सर्ग २३ और २४।

३—रा०, वही०, सर्ग २६। ४—रा०, वही०, सर्ग ३३।

५—रा०, वही०, सर्ग ४३, १७-१८।

६—रा०, वही०, सर्ग ४४।

(७) हनुमान द्वारा अमात्य पुत्र का वध ।[१] (८) पंच सेनापतियों—विरुपाक्ष यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण का वध ।[२] (९) हनुमान की पूँछ अग्नि से न जले इसके लिए अग्निदेव से सीता की प्रार्थना और पूँछ न जलने पर हनुमान का आश्चर्य ।[३] (१०) हनुमान के प्रत्यागमन के पश्चात समुद्र-तट पर स्थित अंगद द्वारा सीता-मुक्ति का प्रस्ताव, जाम्बवान का विरोध आदि ।[४]

अध्यात्मरामायण के भी निम्न प्रसंग मानस में नहीं हैं—(१) सीता को प्रताड़ित करने के लिये आने के पूर्व रावण को राम-दूत के आगमन का स्वप्न ।[५] (२) राक्षसियों द्वारा सीता को दिया गया त्रास ।[६] (३) अशोक वाटिका में हनुमान की विध्वंस लीला देखकर उनके विषय में राक्षसियों का सीता से प्रश्न पूछना ।[७] (४) हनुमान को दंड देने के लिए अक्षयकुमार को भेजने से पूर्व रावण का पांच सेनापतियों और फिर मन्त्रिपुत्रों को भेजना ।[८]

(ख) वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में ऐसे बहुत से प्रसंगों का विस्तृत वर्णन मिलता है जिनका मानस में उल्लेख मात्र हुआ है। वाल्मीकि रामायण का तो कहना ही नहीं अत्यन्त संक्षेप में लिखित अध्यात्म रामायण से भी मानस के बहुत से प्रसंग संक्षिप्त हैं। कुछ ये हैं: (१) अध्यात्म में लंकिनी हनुमान से पूरी कथा कहती है पर मानस में ऐसा नहीं है।[९] (२) अध्यात्म रामायण में रावण सीता से राम की निन्दा करता है पर मानस में इसका संकेत मात्र है।[१०] (३) अध्यात्म रामायण में हनुमान सीता से राम की पूरी कथा कहते हैं पर मानस में मात्र इतना है उल्लिखित है कि—'आदिहुँ

१—रा०, वही०, सर्ग ४५ । २—रा०, वही०, सर्ग ४६ ।
३—रा०, वही०, सर्ग ५३, २८, ३०, ।
४—रा०, वही०, सर्ग ६०, १५-२१ ।
५—अध्या० सु , सर्ग २, १५-१७ ।
६—अध्या०, वही०, सर्ग २, ४४-४६ ।
७—अध्या०, वही०, सर्ग ३, ७२-७३ ।
८—अध्या०, वही०, सर्ग ३, ८३-८८ ।
९—अध्या०, वही० सर्ग १, ४१-५८ ।
१०—अध्या, वही०, सर्ग २, २२-२८ । मा०, वही, ८, २ ।

तें सब कथा सुनाई'।[१] (४) अध्यात्म में सीता के इस प्रश्न *'वानराणां मनुष्याणां संगतिर्घटते कथम्'*—का विस्तृत उत्तर है पर मानस में सब कुछ मात्र इतने में कहा गया है—*'कही कथा संगति भइ जैसे'*। (५) लंका से लौटने के पश्चात हनुमान राम को विस्तृत विवरण देते हैं पर मानस में अत्यन्त संक्षेप में पूरी बात कह डालते हैं[२] (६) अध्यात्म में प्रत्याभिज्ञान स्वरूप सीता हनुमान को जयंत की पूरी कथा सुनाती हैं पर मानस में इतना ही कहती हैं—*'तात सक्रसुत कथा सुनाएहु'*।

(ग) अध्यात्मरामायण के निम्न प्रसंग मानस में परिवर्तित हो गए हैं—(१) अध्यात्म में सुरसा हनुमान से प्रथमतः मुख में प्रविष्ट होने तदुपरांत बाहर निकलने के लिए कहती है पर मानस में ऐसी बात नहीं है। (२) अध्यात्म में सुरसा पहले तो दूना फिर डेढगुना शरीर-विस्तार करती है पर मानस में सदैव द्विगुणित होने का ही उल्लेख है। इसी कारण शरीर-विस्तार संबंधी संख्याओं में अन्तर है। (३) अध्यात्म की भाँति मानस में राक्षसी का नाम सिंहिका नहीं है। (४) अध्यात्म में पहले लंकिनी हनुमान को मारती है पर मानस में पहले ही हनुमान उसे मारते हैं।[३] (५) अध्यात्म में रावण सीता को दो मास की अवधि देता है। मानस में यह अवधि एक ही माह की है।[४] (६) अध्यात्म में सीता वेणी से फाँसी लगाने का प्रयत्न करती हैं पर मानस में चिता में भस्म होने का।[५] (७) अध्यात्म में हनुमान सीता के सम्मुख प्रकट होने के पश्चात प्रतीति हेतु मुद्रिका देते हैं पर मानस में सीता की अग्नि याचना के समय ही मुद्रिका गिरा देते हैं, तत्पश्चात प्रकट होते हैं। (८) अध्यात्म की सीता (हनुमान से) राम के पुरुषार्थ का वर्णन तब करने को कहती है जब उसे वह हस्तगत कर लें पर मानस में ऐसी बात नहीं है।[६] (९) मानस की सीता

१—अध्या० वही० सर्ग ३, ४-१४। मानस वही०, १२, ३।
२—अध्या० वही०, सर्ग ५, ३६, ५६।
मा०, वही०. दो ३० से ३१ तक
३—अध्या०, वही, सर्ग २, ४१-६०।
४—अध्या० वही०, सर्ग १, १०।
५—अध्या०, वही० सर्ग १, २०   मा० वही, १, ९-१।
६—अध्या०, वही० १, ४१।   मानस, सु० ३, २।

'अध्यात्म' की सीता से अधिक भक्त है। (१०) अध्यात्म में रावण हनुमान से प्रश्न पूछने के लिए प्रहस्त को संबोधित करता है पर मानस में स्वयं पूछता है।[१] (११) अध्यात्म के हनुमान तत्वचिंतक की भाँति रावण को समझाते हैं पर मानस में मात्र भक्त हैं।[२] (१२) अध्यात्म के हनुमान अपने को 'कार्य करनेवाला' कहते हैं पर 'मानस' के भक्त हनुमान तो अपने को साधन मात्र मानते हैं।

(घ) मानस में आधारग्रन्थों की अपेक्षा किसी प्रसंग का विशेष परिवर्द्धन नहीं हुआ है। अतः यहाँ इस पर विचार करना ठीक नहीं है।

यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो यह भलीभाति स्पष्ट हो जायगा कि गोस्वामीजी के प्रत्येक परिवर्तन-परिवर्द्धन निश्चित उद्देश्य के अनुसार हुए हैं। गोस्वामी जी ने अवातर प्रसगों और कथा की पुनरावृत्ति से अपनी कथा को यथेष्ट बचाया है। इसीलिए जहाँ एक ओर वे लंका-वर्णन, सीता के शकुन वर्णन आदि को छोड़ देते हैं वहाँ दूसरी ओर एक बार कही हुई कथा का पुनः उल्लेख मात्र ही करते हैं। उनकी भक्ति-भावना सदैव उनके साथ रहती है, तभी वे राक्षसियों द्वारा सीता को दिए गए त्रास, रावण द्वारा राम की की गई निंदा, आदि का सकेत ही दे पाते हैं। यहीं नहीं अपितु गोस्वामीजी ने भक्तों को सदैव आदर्श साँचे में ढालने का प्रयास किया है तभी जहा एक ओर मानस के भक्तों में किसी प्रकार की गर्वोक्ति नहीं है वहीं दूसरी ओर उनका कोई कुछ बिगाड़ भी नहीं सका है। अध्यात्म में लकिनी हनुमान पर प्रहार करती है पर मानसकार के लिए तो यह असह्य है। इसके विपरीत राक्षसों के साथ गोस्वामी जी की कोई सहानुभूति नहीं है। 'अध्यात्म' में दरबार-शिष्टाचार के अनुसार रावण हनुमान

२—अध्या०, वही०सर्ग २, ४१। मा० वही०, ६, ५।
३—अध्या० वही०, सर्ग ३, १–२। मा०, वही०, ११–२।
४—अध्या० वही० सर्ग ३, ३५। मा०, वही०, १२।
५—अध्या०, वही, सर्ग ३, ४२–४३।
६—अध्या०, वही सर्ग ४, ४। मा०, वही० २० १।
७—अध्या०, वही०, सर्ग ४, १६–२५।
८—अध्या०, वही०, सर्ग ५, ५६–५६। मा०, वही, ३२, ४–५।

से स्वयं प्रश्न नहीं पूछता है वरन् प्रहस्त से पूछने को कहता है पर मानसकार के लिए तो रावण से महान हनुमान जी ही हैं। मानस में उक्तियों का निर्वाह भी हुआ है। अध्यात्म रामायण में सुरसा पहले अपने शरीर का द्विगुणित विस्तार अच्छे ढंग से करती है, किन्तु बाद में डेढ़ गुना करने लगती है। मानस में विस्तार सर्वत्र दुगुना ही होता है। मानसकार ने घटना को नाटकीय और प्रभावशाली भी बनाना चाहा है। मुद्रिका (लाल नग जटित) के रूपसादृश्य को लेकर नाटकीय प्रभाव एवं परिस्थितिजन्य विह्वलता दिखलाने के लिये चिता की योजना जितनी उपयुक्त है, उतनी वेणी द्वारा गला फांसकर आत्महत्या करने की नहीं। कोमल किसलयों से अग्नि की याचना की यही सार्थकता है। चिता जलाने के निमित्त अग्नि की कामना का प्रसंग यदि हटा दिया जाय तो फिर मुद्रिका के गिरने से इस स्थलविशेष पर उमड़ने वाला समूचा बाँकपन ही गायब हो जायगा। अध्यात्म के विपरीत मानस में रावण का सीता को एक ही मास की अवधि देना भी सीता की विह्वलता और उद्धारार्थ राम के प्रयासों की तीव्रता दिखाने के लिए अधिक उपयुक्त है। इसी प्रकार अन्य प्रसंगों को भी देखा जा सकता है।

स्थानान्तरण

(ट) आधार ग्रन्थों के तीन प्रसंगों का मानस में स्थानान्तरण हुआ है (१) वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्मरामायण में सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत लंका से हनुमान के प्रत्यागमन तक की कथा वर्णित है। सेतुबन्ध की प्रक्रिया का वर्णन युद्धकांड के आरम्भ में है। किन्तु मानस में सेतुबन्ध का प्रसंग सुन्दर काण्ड में ही है। (२) रामायण तथा अध्यात्मरामायण में काक-वृत्तान्त हनुमान और सीता की प्रथम भेंट में आ गया है किन्तु मानस में यह प्रसंग हनुमान के विदा होते समय कहा गया है। (३) अध्यात्म में सुरसा की परीक्षा के पश्चात मैनाक का प्रसंग आता है किन्तु मानस में यह इससे पूर्व ही आ गया है।

सेतुबन्ध की कथा के स्थानान्तरण का मूल कारण यह है कि मानस में छठें काण्ड का नाम युद्धकांड न होकर स्थान के आधार पर लंका काण्ड है। सेतुबन्ध की योजना लङ्का में न होकर समुद्र के इसी पार हुई थी। अतः यह स्थानान्तरण पूर्णतः ही स्वाभाविक है। वाल्मीकि रामायण में 'युद्धकांड'

नाम के कारण सेतु-बंध की प्रक्रिया भी युद्ध की तैयारी के अन्तर्गत आती है, इसलिए यहाँ पर सेतु-बन्ध का वर्णन युद्ध-कांड के अन्तर्गत ही उचित है। हनुमान और सीता की प्रथम भेंट में प्रतीति के लिए मुद्रिका दी जा चुकी थी। अब केवल राम की प्रतीति के लिए किसी वस्तु अथवा घटित आख्यान के सस्मरण की आवश्यकता थी जिसे सीता ने लौटते समय हनुमान को सुनाया था। पहली ही बार काक वृत्तान्त का सुनाना अधिक उपयुक्त नहीं है। मानस में सुरसा के पूर्व मैनाक का प्रसग आना भी बड़ा वैज्ञानिक है। समुद्र की सीमा में प्रविष्ट होते ही स्वागतार्थ मैनाक का उपस्थित होना अधिक सारयुक्त है। कारण लंका पहूँचने के लिए हनुमान को केवल समुद्र-सन्तरण करना था अतः उड़ान भरते ही मैनाक का प्रसग आवश्यक हो जाता है। देवताओ द्वारा परीक्षा कुछ बाद में होने पर अस्वभाविक नहीं है। इस क्षेत्र में मानस आधारग्रन्था से अधिक सफल है।

(च) इस कांड में कोई उल्लेखनीय नूतन उद्भावना नहीं है।

लंकादहन

युद्ध से सम्बन्धित सामग्री में यथेष्ट परिवर्तन-परिवद्धन हुआ है और सर्वथा नवीन सामग्री भी जोड़ दी गयी है। फिर भी वाल्मीकि रामायण की मुख्य कथा वस्तुओं में कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ है। यहाँ विकसित होनेवाले कुछ प्रसंगों पर विचार किया जा रहा है।

(३२) हनुमान का पर्वत से औपधि ले आनाः—वाल्मीकि रामायण में हनुमान का हिमालय मे औषधि पर्वत लाना लगभग तीन बार वर्णित है। अन्तिम बार-लक्ष्मण-शक्ति के समय के वर्णन में गौडीय पाठ में भरत हनुमान सवाद और गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय दोनों पाठों में कालनेमि वृत्तान्त का वर्णन किया गया है। अध्यात्मरामायण में भी यही बात है। अन्तर मात्र इतना है कि अध्यात्म में स्थान हिमालय न होकर क्षीरसागर है और पर्वत का नाम धौलागिरि नहीं द्रोणाचल है। उसमें पर्वत लाने का उल्लेख दो ही बार मिलता है, तीन बार नहीं। हनुमान की वीरता प्रदर्शित करने के लिए महानाटक में इस प्रसग का विशेष रोचक वर्णन है। सम्भव है कि मानस पर उपरोक्त ग्रन्थों की अपेक्षा महानाटक का अधिक प्रभाव पड़ा हो।

(३४) सीता की अग्नि परीक्षाः—प्राचीन पुराणों-उपपुराणों में अग्नि परीक्षा का निर्देश नहीं मिलता है, यथा हरिवंश, विष्णुपुराण, वायुपुराण भागवतपुराण आदि में। कुछ विद्वानों का तो मत है कि वाल्मीकि कृत आदि रामायण में भी यह प्रसंग नहीं था। जो भी हो, बाद में इस प्रसंग को बड़ा महत्त्व दिया गया और प्रायः सर्वत्र किंचित हेर-फेर के साथ इसका वर्णन हुआ है। मानस में भी इस प्रसंग को स्थान मिला है।

(३५) रावण-वध के पश्चात देवताओं की स्तुति :—धार्मिक भावना के प्राधान्य के साथ साथ देवों की संख्या और इनकी भाव-भक्ति में परिवर्तन होता गया, इसका स्पष्ट उदाहरण अध्यात्मरामायण में देखा जा सकता है। धार्मिक-ग्रन्थ होने के कारण मानस में देवों की स्तुति को प्रमुख स्थान मिला है।

परिवर्तन-परिवर्द्धन

(क) वाल्मीकि रामायण के निम्न प्रसंग मानस में नहीं हैं (१) विद्युज्जिह्व का राम के मायामय शीश को सीता को दिखलाना।[१] (२) सरमा द्वारा सीता को रावण-सभा का समाचार मिलना।[२] (३) युद्ध के पूर्व कुम्भकर्ण से युद्ध की मंत्रणा करना।[३] (४) रावण द्वारा सुग्रीव को अपनी ओर मिलाने का उद्योग।[४] (५) युद्धारम्भ से पूर्व रावण और सुग्रीव के बीच युद्ध होना।[५] (६) रावण का सीता को पुष्पक से भेज कर शर-शय्या पर पड़े राम लक्ष्मण को दिखलाना और सीता का विलाप करना।[६] (७) अगस्त्य का राम को आदित्य हृदय नामक स्तोत्र सिखाना आदि।[७]

अध्यात्मरामायण के भी निम्न प्रसंग मानस में नहीं हैं: (१ वानरों को जिलाने के लिए हनुमान का लगभग दो बार क्षीर-सागर से द्रोणाचल पर्वत को ले जाना।[८] (२) शुक का आत्म-चरित वर्णन करना।[९] (३) लमाके बीच रावण

का राक्षसों से ब्रह्मा की बात कहना और तदनुसार राम को परब्रह्म घोषित करना और इन्हीं के बाण से मृत्यु प्राप्त करके मुक्ति की कामना करना। कुम्भकर्ण द्वारा भी रावण की ही भाँति नारद की बात कहना और राम को परब्रह्म मानना (४) अंगद का मन्दोदरी का केश पकड़ कर उसे राम की मखशाला में ले जाना और उसकी कंचुकी फाड़ देना आदि।

(ख) विशालकाय होने के कारण रामायण के प्रायः प्रत्येक प्रसंग मानस की अपेक्षा अधिक विस्तृत हैं, अतः कथा-चयन के कौशल को देखने के लिए अध्यात्म रामायण के उन प्रसंगों को देखना ही ठीक है जो मानस में अत्यन्त संक्षिप्त हैं। वे ये हैं. (१) अध्यात्मरामायण में कालनेमि रावण को बड़ी विस्तृत शिक्षा देता है। किन्तु मानस में यह शिक्षा कुछ अर्द्धालियों में ही उत्कथित है।[१] (२) रावण की मृत्युसे दुखी विभीषण को अध्यात्मरामायण में लक्ष्मण बड़ी लम्बी-चौड़ी शिक्षा देते हैं[२] किन्तु मानस में यह इस प्रकार है—'लछिमन तेहि बहुविधि समझायो'। इसी प्रकार एकाध अन्य प्रसंगों को भी देखा जा सकता है।

(ग) अध्यात्मरामायण के बहुत से प्रसंगों से मानस के प्रसंग थोड़े भिन्न हैं: (१) अध्यात्म में रावण के बाण से विभीषण को बचाते समय लक्ष्मण मूर्छित होते हैं पर मानस में रावणकी सेल से विभीषण को स्वयं राम बचाते हैं[३] और रावण की सेल से लक्ष्मण को मूर्छा उससे प्रत्यक्ष युद्ध करते समय आती है।[४] (२) अध्यायमें कालनेमि के मायासर में स्थित मकड़ी हनुमान को निगलने का प्रयास करती है पर मानसमें मात्र पैर पकड़ती है[५] (३) अध्यात्म में हनुमान क्षीरसागर से द्रोणाचल पर्वत ले आते हैं पर मानस में पर्वत और औषधि

१—अध्या०, युद्ध०, सर्ग ६, ८-२-६२।
मा० लंका ५५ २-४।
२—अध्या०, वही० सर्ग १२, १०-२८।
३—अध्या०, वही० सर्ग ६,६-१०।
मा०, वही०, ६३, १-२।
४—मा०, वही०, ८२, छन्द।
५—अध्या०, वही०, सर्ग ७, २२-२३। मा०, वही०, ५७।

का नाम नहीं दिया गया है।[1] अध्यात्म में राम लक्ष्मण गरुडास्त्र का प्रयोग कर के मेघनाथ के नागशर से परित्राण पाते हैं पर मानस में उसके लिए स्वय गरुड को आना पड़ता है।[2] रावण-वध और राज्याभिषेक के पश्चात स्तुति करने के लिए उपस्थित देवताओं के विषय में दोनों ग्रन्थों में थोड़ी भिन्नता है।

(घ) अध्यात्म रामायण में अंगद का दौत्य कार्य नहीं उल्लखित हैं पर रामायण और मानस में इसका प्रसग आया है। मानस में 'धर्मरथ' का भी वर्णन है जो अध्यात्म आदि में नहीं है।

मानस में प्रसंगों में परिवर्तन और परिवर्द्धन की आधार-शिला बड़ी ही सुनिश्चित और व्यावहारिक है। राम और सीताके सम्मुख राक्षसों द्वारा मायामय सिर का प्रदर्शन रामायण के पूर्ववर्ती और परवर्ती ग्रन्थों में प्राय: समान रूप से चलता रहा है पर स्वय मायापति के सम्मुख इसका प्रदर्शन और तदनुसार उनकी विह्वलता थोड़ी अस्वाभाविक लगती है। इसी से यह प्रसंग मानस में नहीं आया है। हनुमान की रामभक्ति, उनकी कार्यपटुता और साथ ही भरत की शक्ति दिखाने के लिए मानस में महानाटक की परम्परा व्यवहृत हुई है। मानस में कथा की रोचकता और साहित्य-रस की रक्षा का यह भी यथेष्ट प्रयत्न हुआ है। तभी अध्यात्म के रावण की भाँति मानस का रावण सभा के मध्य में राम को ब्रह्म नहीं कहता है। साथ ही युद्ध के गाम्भीर्य को स्पष्ट करने के लिए 'रावन रथी विरथ रघुवीरा' की बात भी उठती है और नीतिवादी राम 'धर्मरथ' की व्याख्या करते हैं। मानस में मर्यादा की सर्वत्र रक्षा हुई है। मानस में अंगद में इतनी विचारहीनता कहाँ जो कि वे अध्यात्म के अंगद की भाँति मन्दोदरी की कंचुकी फाड़ते? भक्त और भगवान की ओर मानसकार की सदैव दृष्टि रही है। तभी मकरी मात्र हनुमान का पैर पकड़ती है और रावण की सेल से विभीषण को लक्ष्मण नहीं स्वयं भक्तवत्सल राम बचाते हैं।

स्थानान्तरण

मानस में भरत-राम मिलाप से (अयोध्या में) लेकर राज्याभिषेक तक का प्रसग उत्तरकाड में आया है जबकि 'रामायण' एव अध्यात्म रामायण में यह युद्ध काड के ही अन्तर्गत है।

वस्तुत. भरत और राम के मिलन तथा राज्याभिषेक का न तो लका से कोई सम्बन्ध है और न युद्ध (युद्धकाड) से ही। सम्भवतः इसीलिए यह प्रसग उत्तरकांड में है। साथ ही उत्तरकाड में मूल कथा के इस थोड़े से प्रसग के रहने के कारण यह कांड मूलकथा से उसी प्रकार असम्बद्ध नहीं होने पाया है जिस प्रकार अन्यान्य अवान्तर प्रसंगों के बीच थोड़ी-सी मूलकथा रहने के कारण बालकाड।

नूतन उद्भावना

रावण की विजय सुनकर सीता के हृदय में जो भाव उठे थे उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन तुलसीदास ने यहाँ किया है। यहाँ भक्त तुलसी की अपेक्षा कवि तुलसी अधिक उभड़े हैं।

उत्तरकांड

मानस के उत्तरकांड की कथा वाल्मीकि रामायण और अध्यात्मरामायण से पूर्णतः भिन्न है। रामराज्याभिषेक तक की घटना का तो इन ग्रन्थों से साम्य है किन्तु काकभुशु डि और गरुड़ की कथा के रूप में ग्रन्थ का उपसहार-कथन मानस की अपनी कल्पना है।

(३६) काकभुशुडि की कथा—इस कथा की सर्वप्रथम चर्चा योगवासिष्ठ में हुई है, किन्तु इसमें इनके पूर्वजन्म की कथा अथवा इनकी राम-भक्ति का उल्लेख नहीं है। सत्योपाख्यान में रामभक्त काकभुशु डि राम को शष्कुलि खाते देखकर उनके नारायणत्व पर सदेह करते हैं और परीक्षा हेतु उसे उनके हाथ से छीनकर भागते हैं। राम गरुड़ पर चढकर पीछा करते हैं। अन्त में काक राम की शरण में आते हैं और निश्चल भक्ति का वरदान पाते हैं। शिवपार्वती के संवाद में कहे गए ५६ हजार श्लोकों के 'रामायण महामाला' में शिवजी का मराल वेष में नीलगिरि पर निवास, मराल

होने का कारण, काक से रामकथा-श्रवण, गरुड़-मोह और काक द्वारा उपदेश आदि का विस्तृत वर्णन है। मानस पर इन्हीं सब का प्रभाव पड़ा है।

मानस में भागवत की शैली पर समूची कथा की संक्षिप्त विवृत्ति करने और सम्पूर्ण कथन का निष्कर्ष निकालने के उद्देश्य से काक-गरुड़ संवाद अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। यह मानसकार की अद्वितीय सूझ है। बालकांड के उपक्रम भाग में कथ्य अथवा कथा की जो पूर्व पीठिका निर्मित की गई थी, उत्तरकांड में उन सबका यथोचित उपसंहार दिखाया गया है। गरुड़ एवं काकभुशुंडि के माध्यम से इस उपसंहार को प्रस्तुत करने में गोस्वामी जी का अद्भुत कौशल सन्निहित है, जिसे आगे चलकर दिखाया जायगा। यहाँ इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि यदि बालकांड का आदि भाग किसी विशाल प्रासाद की नींव का पत्थर है, और सम्पूर्ण मध्यभाग साक्षात प्रासाद है, तो उत्तरकांड का उत्तरभाग उस प्रासाद की अकथित गरिमा है, उसकी दीप्ति है, शिल्पी के शिल्प की चरम अभिव्यक्ति है।

नूतन उद्भावना

मानस में राज्याभिषेक के पश्चात् राम-राज्य की आदर्श कल्पना की गई है। यह कल्पना अपने में पूर्ण और उद्देश्यानुकूल है, इसी से इसका पृथक महत्व है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कथा-चयन के विषय में मानसकार की अद्भुत सतर्कता देखी जा सकती है। सम्पूर्ण मानस में एक भी प्रसंग इस ढंग का नहीं आया है जो कि ग्रन्थ के उद्देश्य के प्रतिकूल पड़ता हो। इसके लिये गोस्वामी जी की दृष्टि किसी एक ही ग्रन्थ पर स्थिर न होकर सर्वत्र से मधु-संचयन करती रही है, इसे ही प्रणेता की शिल्प-चातुरी और मौलिकता कह सकते हैं।

मानस की राम-कथा का संगठन

४

मूलकथा —मानस की मूलकथा का समारम्भ राम-जन्म से होता है। 'रामचरितमानस' राम के चरित्र का भावमय अनुकथन है। इसमें राम और राम का सगुण चरित्र ही मुख्य विषय है और यही ग्रन्थ का प्रतिपाद्य भी है। मानस के श्रोताओं को राम पर नहीं दाशरथि राम पर शका होती है। भरद्वाज ने इसे स्पष्ट रूप से कहा है कि–'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि'। इसी शका के निवारणार्थ मानस में दाशरथि राम अथवा सगुण राम की लीलाओं का वर्णन हुआ है। निर्गुण राम से सगुण राम का अविछिन्न सम्बन्ध स्थापित करने अथवा अवतार-ग्रहण के कारणों को निर्देशित करने के लिए जिन प्रसगों अथवा कथाओं की सजना हुई हैं, वे असदिग्ध रूप से प्रस्तावना भाग के अन्तर्गत आती हैं। अतः मानस की मूलकथा का आरम्भ राम-जन्म से ही मानना चाहिए।

कुछ विद्वानों ने मानस-कथा का आरम्भ राम-जन्म से न मानकर अन्यत्र से माना है। डा०शम्भूनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी में महाकाव्य का स्वरूप विकास' –में मूलकथा का प्रारम्भ रावण-चरित एवं आकाशवाणी से स्वीकार किया है। रावण के अत्याचार वर्णन से यज्ञ-रक्षा तक की कथा को उन्होंने

'आरम्भ' नामक कार्यावस्था के अन्तर्गत निर्देशित किया है। उनकी इस मान्यता का आधार सम्भवतः आरम्भ का रावण-चरित है। किन्तु समझना यह चाहिए कि रावण का अत्याचार भगवान राम के अवतरित होने का एक हेतु है। वाल्मीकिरामायण और अध्यात्म रामायण में यह रावण चरित उत्तरकांड में उपसंहार के अन्तर्गत आया है जबकि मानस में बालकांड में प्रस्तावना के ही अन्तर्गत आ गया है। साथ ही, मानस की मूलकथा दाशरथि राम से सम्बद्ध है, निर्गुण राम से नहीं। निर्गुण राम से दाशरथि राम में अभेद दिखाने का जो आरम्भिक कार्य है वह प्रस्तावना भाग है न कि मूलभाग। पार्वती ने शिव से जो प्रश्न पूछा था, उसमें से प्रथम और द्वितीय प्रश्न स्पष्ट भूमिका भाग से तथा शेष प्रश्न राम कथा से सम्बन्धित हैं। पार्वती की मुख्य इच्छा भी रघुपति कथा सुनने की। उन्होंने स्पष्ट कहा है—'अति आरति पूछउ सुरराय। रघुपति कथा कहहु कर दाया।' निर्गुण ब्रह्म किस कारण से सगुण हो गया अथवा राम के अवतार का क्या कारण रहा, यह प्रश्न मूल प्रश्न अथवा मूल कथा की पीठिका मात्र है। अतः जैसा कि ग्रन्थ का नाम है उसके अनुसार रामचरित ही इसका मूल विषय होना चाहिए, और है। आकाशवाणी का कार्य निर्गुण राम से सम्बद्ध है अत इसे प्रस्तावना भाग के अन्तर्गत मानना अधिक उपयुक्त है। यदि निर्गुण राम के कार्यों को भी मूलकथा में सम्मिलित किया जाय तब भी कथा का आरम्भ आकाशवाणी एवं रावण-चरित से न होकर पार्वती के प्रश्न और शिव के उत्तर से होना चाहिए। बीच से आरम्भ मानना तो कोई तुक ही नहीं रखता है।

प्रत्येक योजना इस दृष्टि से हुई है कि भक्त और भगवान के सम्बन्धों पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ सके। मानस में भी यही बात है। मानस के प्रायः सभी पात्र भक्त हैं। सबका जन्म अथवा कार्य किसी न किसी वरदान अथवा शाप का प्रतिफल है। भक्तवत्सल भगवान् राम ने इन्हीं वरदानों और शापों की पूर्ति परिपूर्ति के लिए अवतार ग्रहण किया है। मानस की कथा और पात्र केवल एक धुरी के चारों ओर घूमते हैं और यह धुरी है—राम। अत रामचरित से सम्बन्धित सभी पात्र और उनके कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाली समूची कथा मूलकथा के अन्तर्गत है। राम जन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का सम्पूर्ण भाग मूल कथा के नाम से अभिहित किया जा सकता है। वाल्मीकि रामायण की भाँति अहल्या, गुहराज, शबरी आदि की कथाए मानस में प्रासंगिक कथाओं की सूची में न जा कर मूलकथा की सीमा में आती हैं। इस प्रकार का परिवर्तन मानस में ही नहीं अपितु समस्त भक्त ग्रन्थों में हुआ है।

मानस की मूलकथा की परिसमाप्ति उत्तर कांड के ५१वें दोहे में हो जाती है। राज्याभिषेक के पश्चात भरत[1] को एव पुरवासियों[2] को सुनाई गयी राम गीता तथा सनकादि, वसिष्ठ तथा नारद द्वारा की गई राम की स्तुति एव भक्ति-याचना मानसकार के मूल उद्देश्य के अनुसार है अत यह भाग भी मूलकथा के अन्तर्गत ही है।

स्वय भगवान् के नायकत्व एव भक्ति-रस की प्रधानता के कारण मानस की मूलकथा का स्वरूप कुछ अधिक अनियन्त्रित है। अन्य ग्रन्थों की भाँति मानस की मूलकथा में यह बात नहीं है कि किसी एक आख्यान अथवा प्रसग को निकाल लेने से कथा की समूची शृंखला विशृंखलित हो जाय। यहाँ तो अहल्या, गुहराज, जयन्त आदि जैसे कितने ही प्रसग को पृथक किया जा सकता है और इन्हीं की तरह के दस पाँच को बिना किसी व्यवधान के जोड़ा भी जा सकता है। इनके पृथक अथवा सम्पृक्त होने से कथा के मूल उद्देश्य पर किसी प्रकार का आघात नहीं पड़ सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि इनके रहने से कवि के उद्देश्य की पूर्ति कुछ अधिक सरल और प्रभावोत्पादक ढग से सम्भव हो जाती है।

प्रासगिक कथाएँ:—मानस की प्रायः सभी प्रासंगिक कथाएँ राम-जन्म के पूर्व और राम के राज्याभिषेक के पश्चात् ही आई हैं। इन कथाओं से ग्रन्थ की पूर्व पीठिका और निष्कर्ष की पट-भूमि निर्मित की गई है। अतः इनका अपना अलग महत्व है। राम-जन्म से पूर्व प्रस्तावना भाग के अन्तर्गत छः प्रासंगिक कथाएँ अन्तर्भुक्त हैं। प्रथम है शिवचरित, द्वितीय है नारद-शाप, तृतीय है मनु-शतरूपा का बरदान, चतुर्थ है प्रताप-भानु एव कपटीमुनि की कथा, पचम है पृथ्वी रूपी गऊ की कथा और षष्ट है रावण चरित। इसके अतिरिक्त कुछ और भी कथाएँ हैं जिनकी सूचना मात्र प्राप्त होती है। इनमें जय विजय, हरिण्यकशिपु-हरिण्याक्ष, कश्यप-अदिति और जलन्धर एव सती वृन्दा की कथाएँ। इसी में प्रास्ताविक कथा के रूप में भरद्वाज और याज्ञवल्क्य की कथा भी ली जा सकती है। उपसंहार भाग में केवल दो प्रासागिक कथाएँ हैं जो ऊपर से एक ही हैं। इन दो कथाओं में मे एक है गरुड़-मोह और काक भुशुन्डि से कथा-श्रवण की कथा और दूसरी है काक भुशुन्डि के आत्मचरित की कथा।

कथा के मूल भाग में भी कुछ प्रासगिक कथाए आ गई हैं। यह दो प्रकार की हैं (१) अन्तकथा के रूप में और (२) आत्मकथा के रूप में। प्रथम के अन्तर्गत नहुष, गालव, हरिश्चन्द्र, ययाति, शिवि आदि की कथाएँ ली जा सकती हैं जिनका मानस में इनके पात्रों के नाम से उल्लेख मात्र हुआ है। द्वितीय के अन्तर्गत केवल एक आत्म कथा आती है और वह है सम्पाती की कथा। सुग्रीव की आत्मकथा इसके भीतर नहीं आ सकती है क्योंकि इसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से मूलकथा अथवा भक्तवत्सल राम के भावी कार्य से है। अहल्या, कबन्ध आदि के पूर्व जीवन की कथाएँ भी प्रासगिक कथा की परिधि में नहीं आ सकती हैं। कारण इन कथाओं का उतना ही अश मानस में वर्णित है जितने का राम से सम्बन्ध है, शेष का कवि ने एकाध शब्दो में सकेत मात्र कर दिया है। यों तो मानस के सभी पात्र किसी न किसी वरदान अथवा शाप के भुक्तभोगी हैं और सबके पूर्व जीवन की कोई न कोई कथा है। अतः उन पूर्व कथाओं को जिनका मानस में वर्णन ही नही हुआ है प्रासगिक कथा के अन्तर्गत मानना उपयुक्त नहीं है।

इस प्रकार मानस में पाँच प्रकार की प्रासंगिक कथाएँ उपलब्ध होती हैं (१) हेतु कथाएँ—यथा जय-विजय की कथा, हरिण्यकशिपु की कथा, जलन्धरवृन्दा की कथा, नारद-शाप की कथा, मनु-शतरूपा के वरदान की कथा, कश्यपअदिति के वरदान की कथा, प्रताप भानु के शाप की कथा और आर्त गऊ की पुकार की कथा। (२) प्रास्ताविक कथाएँ—यथा भरद्वाज की शंका और याज्ञवल्क्य द्वारा समाधान की कथा, पार्वती का संदेह और शिव द्वारा प्रबोध की कथा तथा गरुड़ के भ्रम और काक भुशुण्डि द्वारा उसके निवारण की कथा। (३) अन्तर्कथाएँ—यथा नहुष, गालव, हरिश्चन्द्र, ययाति आदि की कथाएँ (४) आत्मकथा—सम्पाति की आत्म कथा । (५) चरित—शिवचरित, रावण-चरित और काकभुशुण्डि चरित।

अब देखना यह है कि मानस की मूलकथा के साथ इन कथाओं की संगति किस प्रकार से बैठाई गई है और किस रीति के इनका सम्बन्ध-निर्वाह कराया गया है। यहाँ प्रथमत हेतु कथाओं पर विचार करना अधिक उपयुक्त है। तुहेकथाओं के अन्तर्गत चार का विस्तृत वर्णन हुआ है अतः इन्हीं के सम्बन्ध निर्वाह को देखना ठीक है। मनु-शतरूपा ने भगवान को पुत्र रूप में प्राप्ति करने और वात्सल्य रस की सुखानुभूति प्राप्ति करने का जो वरदान उपलब्ध किया था उसका निर्वाह मानस में आद्यत हुआ है। मानस के प्राय सभी पात्र राम के स्वरूप से परिचित हैं किन्तु दशरथ और कौसल्या प्राकारान्तर से परिचित होते हुए भी पूर्णतः अपरिचित हैं। द्वैतभाव अथवा वात्सल्यभाव की प्रीति के ही कारण ही दशरथ की मुक्ति नहीं हुई। इसकी सूचना रावण-वध के पश्चात् प्राप्त हुई है।[1] ठीक यही दशा कौसल्या की भी है। राम द्वारा ताड़का सुबाहु आदि के वध और धनुभंग को वह गुरु के आशीर्वाद का फल समझती हैं। रावणादि की पराजय पर स्वय आश्चर्य चकित हो जाती हैं उन्हें विश्वास ही नहीं होता है कि अत्यन्त भीषण राक्षसों का वध इन सुकुमार बच्चों द्वारा कैसे हो सका।[2] नारद-शाप का भी इसी प्रकार निर्वाह हुआ है। अध्यात्म रामायण में राज्याभिषेक के पूर्व नारद अयोध्या आकर राम से वन जाने के लिए विनय

१—वही०, लंकाकांड, दो० १११, ३ ॥

२—वही०, बालकांड दो० ३५६, १—२ ॥

करते हैं परन्तु मानस के नारद को ऐसा नहीं करना पड़ता है। यहाँ भगवान राम शाप को पूर्ण करने के लिए स्वयं जाते हैं और नारद उस समय आते हैं[१] जबकि राम विरही की भांति इधर-उधर घूमते और विलाप करते हैं। राक्षसों का तो पूरा समाज प्रतापभानु के समाज से साम्य रखता है भुजबल में कुम्भकर्ण अरिमर्दन का ही दूसरा रूप है—अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा। विभीषण में धर्मरुचि के सभी गुण सन्निविष्ट हैं—यथा

नृपहितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना।
सचीव धरमरुचि हरिपद प्रीती। नृप हित सिखव नित नीती॥

बल-वीर्य में शापग्रस्त प्रतापभानु भी रावण का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुत. राक्षसकुल में उत्पन्न रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण आदि का भक्तिभावसे परिपूर्ण चरित इसलिए अस्वाभाविक नहीं लगता है कि प्रताभानु की कथा द्वारा उनके जीवन की पूर्वपीठिका सामने आ जाती है। प्रतापभानु की कथा में जिन पात्रों की जो-जो विशेषताएँ रही हैं वही-वही विशेषताएँ रावण-कुल में उत्पन्न पात्रों की भी हैं। पृथ्वीरूपी गऊ की पुकार का भी आद्यंत निर्वाह किया गया है। पाप और पापी के नाश तथा भक्तों की रक्षा में ही भगवान राम का सम्पूर्ण समय व्यतीत हुआ है।

प्रास्ताविक कथा के रूप में उपस्थित भरद्वाज एवं गरुड़ के आख्यान का भी मानस में समुचित निर्वाह हुआ। राम के परब्रह्मत्व पर संदेह करने वाले भरद्वाज और वनगमन के समय राम के सत्यस्वरूप से भिज्ञ होने वाले भरद्वाज में कहीं द्विरूपता न आ जाय इसके लिये गोस्वामी जी ने याज्ञवल्क्य की यह उक्ति प्रस्तुत की है।

रामभगत तुम मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुने राम गुन गूढा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अतिमूढा॥

गरुड़ की शंका को भी ठोस आधार देने के लिए या नागपाश में आबद्ध राम-लक्ष्मण को विमुक्त करने के निमित्त गरुड़ को जाना पड़ा है। अध्यात्म-

---

१—वही० उत्तरकांड, दो० ६, ४॥ २—वही० अरण्य, दो० ४०, ४॥

रामायण में गरुड की जगह गरुडास्त्र का प्रयोग हुआ है किन्तु मानस में अध्यात्म से भिन्न पद्धति का अनुसरण इसी दृष्टि से हुआ है। प्रास्ताविक के रूप में पार्वती का तो पूरा जीवन-चरित ही मानस में लिपिबद्ध है और प्रथमतः स्वय शिव के 'मानस' से ही प्रसृत होने के कारण राम कथा के साथ इनकी सगति भी अच्छी तरह से बैठ गई है।

अन्य कथाओं का मानस में उल्लेख मात्र हुआ है अतः मूलकथा के साथ इनके सबध-निर्वाह का प्रश्न ही नहीं उठता है। इन्हें प्रासगिक कथा की सीमा से निकाला भी जा सकता है।

सम्पाती की आत्मकथा का मानस की मूलकथा से कोई सीधा सबध नहीं स्थापित हो पाया है। यदि मानसकार चाहता तो बिना किसी अड़चन के इसे छोड़ भी सकता था। सम्पाती की कथा से मानस में दो कार्य सम्पन्न हुए हैं एक है राम के अवतार पर प्रकाश डालने का कार्य और दूसरा है अशोक वाटिका में सीता की उपस्थिति बताने का कार्य। परन्तु इन दोनों ही कार्यों के के उल्लेख से ग्रन्थ के उद्देश्य में कोई नया मोड़ नहीं आता है। हनुमादिक बन्दर इन दोनों ही तथ्यों से परिचित थे। साथ ही अशोकवाटिका मे सीता की उपस्थिति का समाचार हनुमान को पुनः विभीषण से भी प्राप्त करना पड़ा था।

मानस मे वर्णित चरितों में शिवचरित स्पष्टत रामकथा की भूमिका के रूप में आया है और काकभुशुडि चरित निष्कर्ष कथन के रूप में। याज्ञवल्क्य ने शिवचरित को राम-कथा के अधिकारी की पहचान की कसौटी निर्देशित किया है।[1] सम्पूर्ण ग्रन्थ में इस तथ्य का सबल प्रतिपादन हुआ है। स्वय राम ने अपनी भक्ति के लिए शिवभक्ति को आवश्यक बताया है।

सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुं मोंहि न भावा॥

काकभुशुडि के चरित द्वारा जिस भक्तिपथ का मडन हुआ है वह तो ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय ही है और सर्वत्र उसकी विवृत्ति हुई है। मानस में वही पात्र श्रेष्ठ है जो भक्त है—चाहे वह निषाद ही क्यों न हो।

१—बालकांड, दो० १०४।

चरित। मानस की प्रस्तावना में वर्णित रावण-चरित का हूबहू परिचय अरण्यकांड से मिलते लगता है। यह अवश्य है कि भक्ति भावना के प्राबल्य ने अरण्यकाड से सम्मुख आने वाले रावण-चरित को थोड़ा नपुंसक बना दिया है। ग्रन्थ के आरम्भ का रावण ग्रन्थ के मध्य और अन्त के रावण से थोड़ा भिन्न लगता है। किन्तु भक्ति-क्षेत्र में यह सब कुछ क्षम्य है।

इस प्रकार सहज ही देखा जा सकता है कि मानसकार ने मूलकथा से इतर प्रासगिक कथाओं की अनावश्यक भीड़भाड़ से अपने ग्रन्थ को बचा लिया और कहीं भी मूल भाव के आयत्तीकरण में इन कथाओं के द्वारा अवरोध नहीं उपस्थित होने दिया है। मुख्य रूप से ग्रन्थ के आरंभ और अंत में ही आनेवाली इन प्रासगिक कथाओं का मूलकथा के साथ समुचित निर्वाह होता रहा है। वस्तुतः इन्हीं कथाओं को मानस की आधार-भूमि भी कहा जा सकता है। मानस ग्रन्थ का समूचा सौष्ठव और उद्देश्य-प्रतिपादन की समूची सफलता इन प्रासंगिक कथाओं पर अवलम्बित है। इन कथाओं के आधार पर ही 'मानस' वाल्मीकि रामायण, अध्यात्मरामायण आदि से पृथक एक मौलिक और गौरवपूर्ण कृति है।

मानस में तुलसी का प्रबंध कौशल

५

मानस की प्रस्तावना

प्रारम्भिक स्तुति से लेकर राम-जन्म तक का समस्त अश प्रस्तावना भाग के अन्तर्गत आता है। एक सौ सत्तासी दोहों में विस्तृत यह प्रस्तावना सम्भवतः विस्तार और कार्य दोनों ही क्षेत्रों में विश्वसाहित्य में अद्वितीय है। मानस की सम्पूर्ण गति-विधि का जितना सांगोपाग और सुनियोजित परिचय इसके द्वारा हुआ है उतना किसी अन्य ग्रन्थ की प्रस्तावना द्वारा सम्भव नहीं हो सका है, यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता और श्रेष्ठता की सबसे बड़ी सूझ है। मानस की साध्य-सम्प्राति का अधिकांश श्रेय इस प्रस्तावना भाग को दिया जा सकता है। अत प्रबन्धकौशल के अन्तर्गत इसके उपयोग का अध्ययन विशेष उपयोगी है।

सुविधा की दृष्टि से इस अति विस्तृत प्रस्तावना को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) स्तुति अथवा माहात्म्य खड और (२) कथा का समारम्भ खण्ड। प्रथम के अन्तर्गत मगलाचरण, गुरु-वन्दना, ब्राह्मण-सन्त-वन्दना, खल-निन्दा, सन्त-असन्त वन्दना एव भेद, रामरूप से जीवमात्र की वन्दना, तुलसीदास की दीनता और राममक्तिमयी कविता की महिमा,

वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, देवता, शिवपार्वती आदि की वन्दना; रामनाम-माहात्म्य, रामचरित और राम-कथा की महिमा; मानस-निर्माण की तिथि और मानस के रूपक और माहात्म्य का विशद वर्णन है।

इसके बाद कथा का समारम्भ होता है। इस भाग में श्रोता-वक्ता के प्रश्न और उत्तर की योजना है। आरम्भ में मुनि भरद्वाज महर्षि याज्ञवल्क्य से राम रूप पर प्रश्न करते हैं और महर्षि ठीक इसी प्रकार की सती की शंका पर शिव के उत्तर का उल्लेख करते हुए कुमार-जन्म तक का समूचा वृतान्त सुना देते हैं। इसके पश्चात् पार्वती के वे प्रश्न आते हैं जिनका उत्तर शिव जी ने काकभुशुण्डि एवं गरुड़ संवाद के रूप में दिया है। यहाँ प्रथमत पार्वती के इन्हीं प्रश्नों पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। पार्वती का प्रश्न है कि:—

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिवाही। राम तजा सो दूषन काहीं॥
बन बसि कीन्हीं चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंसमनि, किमि गवने निज धाम॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥

सम्पूर्ण मानस में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। निर्गुण के सगुण धारण करने तथा राम के अवतार के कारणों को छोड़कर शेष प्रश्न प्राय: मूल-था से सम्बन्धित हैं। यहाँ प्रस्तावना में शिव ने कल्प-भेद से निर्गुण के अनेक वतार और राम के अवतार के भी अनेक कारण निर्देशित किए हैं। उनमें कश्यप-अदिति एव मनु-शतरूपा के वरदानों तथा जय-विजय, नारद और तापभानु के शापों का वर्णन करके तात्कालिक कारण के रूप में रावण के

अत्याचारों से त्रस्त गऊरूपी पृथ्वी की गुहार का उल्लेख हुआ है। यहीं पर मानस की प्रस्तावना समाप्त हो जाती है।

इस प्रस्तावना का प्रथम खंड अथवा स्तुति एवं माहात्म्यादि खंड स्पष्टत: 'चरित-काव्यों' की परम्परा में है जबकि द्वितीय खंड पुराणों की शैली का अनुगमन है। इन दोनों शैलियों की अन्विति ने उद्देश्य-सम्प्राप्ति में अद्‌भुत योग दिया है। आरंभ में वर्णित संत महिमा, खल-निन्दा, राम-नाम-माहात्म्य और राम-कथा-माहात्म्य के माध्यम से जहाँ एक ओर कवि ने राम-भक्त को ही संत घोषित करके राम पर संदेह न करने की प्ररोचना दी है वहीं दूसरी ओर स्वयं अपने को और रामकथा को भी 'विषम बतकही' से विलग कर लिया है। मानस का रूपक बाँधते हुए कवि ने यह कहकर छिद्रान्वेषियों का मुख बन्द कर दिया है कि :—

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुं मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥
(बाल० का० ३८)

पर इस प्रकार की उक्ति द्वारा कवि ने पाठकों को हताश भी नहीं होने दिया है। उसने स्पष्ट कहा है कि:—

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होंहि कुबस्तु सुबस्तु जग लखहि सुलच्छन लोग॥ बाल० ७॥

तत्पश्चात् 'भाय कुभाय अनख आलसहूँ' में भी 'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ' की सरलतम पद्धति द्वारा पाठकों को आकर्षित करके कवि ने विशिष्ट श्रोताओं द्वारा पाठकों की हृदयस्थ शंका को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है और असाधारण वक्ताओं के मुख से उसका जिस प्रकार समाधान दिया है, वह राम-विषयक संदेहाङ्कुर को निर्मूल करने और प्रतीति-बीज को उत्पन्न करने में अत्यन्त सहायक है। राम-कथा के पूर्व, राम-कथा के अधिकारी की पहिचान के लिए सती-चरित, एवं शिव-चरित तो और भी महत्त्वपूर्ण है। सती की शंका और तदनुकूल उसके जीवन के भीषण परिणाम को देखकर किसी पाठक में साहस ही नहीं हो सकता कि वह राम अथवा रामचरितमानस पर किसी प्रकार की शंका कर

सके। यहाँ प्रभावोत्पादन के लिए स्पष्टतः भयोत्पादन का सहारा लिया गया है। जो भी हो, इतना असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि चरितकाव्यों एवं पुराणों की शैली से मानस में 'एक पंथ दुइ काज' की सिद्धि हुई है। परम्परा-पालन भी हुआ है और भक्ति-रस के अविरल प्रवाह के लिए आवश्यक भूमिका भी बन गई है।

मानस की प्रस्तावना अपने में एकदम पूर्ण है। ग्रन्थ के सभी पात्रों, उनकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियों, मानस-कथा के सम्पूर्ण अवयवों और साथ ही ग्रन्थ के उद्देश्य का परिचय इस भाग के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से हो जाता है। शेष ग्रन्थ में विस्तृत व्याख्या एवं रसात्मक भाव-योजना के अतिरिक्त कोई भी नई बात नहीं आई है। पात्रों में से प्राय सभी निश्चित कारण और ध्येय के अनुसार जन्म पाते हैं और तदनुकूल कार्य कते हैं। इसलिये इनकी विचारधारा और कार्यप्रणाली पूर्णत सुनिश्चित है। राम के परब्रह्मत्व और उनकी भक्ति के विषय में भी स्पष्ट निर्देश हो गया है। यही नहीं कवि की सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि समस्त मान्यताओं का बीजारोपण भी इसी भाग में हो जाता है। यहाँ तक कि इस भाग में कथा की संक्षिप्त रूपरेखा भी दो बार स्पष्ट की जा चुकी है। रूसी विद्वान् वरान्निकोव ने इस प्रवृत्ति को भारतीय रसवादी परम्परा की वह विशेषता बताया है जिसमें कौतूहल अथवा सक्रियता के निमित्त कथा-वृन्त के सगोपन की वृत्ति न होकर कथा के पूर्ण अनुकथन की रुचि झलकती है।[1]

अतः जिस किसी भी दृष्टि से देखा जाय मानस की प्रस्तावना में प्रदर्शित कौशल अपरूप सिद्ध होगा। इस भाग को निकाल देने पर समूचा मानस या तो विकलांग हो जायगा या इसमें कोई नवीनता ही नहीं रह जायगी।

वक्ता-श्रोता का महत्व

मूलतः मानस में दो ही तत्व निहित हैं—एक है प्रश्न और दूसरा है उसी का उत्तर। यह प्रश्न मात्र वक्ताओं का ही हो, ऐसी बात नहीं, यह तो प्रत्येक व्यक्ति का प्रश्न है जिसका समाधान मानस की सवाद-शैली में इतने कलात्मक

१–मानस की रूसी भूमिका–वराज्ञिकोव, अनु० के० ना० शुक्ल, पृ०७२

एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि वही भ्रम और वही संदेह विश्वास एवं प्रतीति के रूप में परिणत होकर प्रणेता के प्रतिपाद्य में द्विगुणित आस्था उत्पन्न करता है। यही मानसकार के प्रबंध-कौशल एव सूझ की सबसे बड़ी सफलता है जिसका इतना अन्यतम उपयोग पुराण को काव्य बनाने में कहीं भी न हो सका है।

घटनात्मक वृत्त के अभाव में भी संभावना के आधार पर निश्चयात्मक प्रतीति की उत्पत्ति में संवाद-शैली का महत्व क्या धार्मिक क्षेत्र, क्या साहित्यिक क्षेत्र और क्या व्यावहारिक क्षेत्र सर्वत्र स्वीकृत है। यही कारण है कि वीर-युग (Heroic age) में सूत-मागधादि की इस शैली का पुराणों में समुचित महत्व स्पष्ट रूप से स्वीकृत होकर लगभग 'चरित काव्यों' के युग तक निरन्तर चलता रहा। परन्तु मानस की इस परम्परा में भी एक विशेषता है जो इसका सर्वस्व है। मानस की कथा अथवा इसका उत्तर चिरन्तन काल से एक ही है और उसके मूल स्रोत भी एक ही—शिव हैं। अन्य सभी लोगों को इन्हीं से यह कथा प्राप्त हुई है।

प्रश्न उठता है कि तब एक ही कथा का चार वक्ताओं द्वारा कहने का तात्पर्य क्या है? इसी प्रश्न के उत्तर में तुलसीदास की समूची कला सन्निहित है। इसके लिए पात्र, विचारधारा और कथा के स्थान, तीनों ही का अनुशीलन अपेक्षित है। पात्रों के २ वर्ग हैं—(१) देव वर्ग और (२) मानव वर्ग। देववर्ग में आदिदेव महादेव एवं आदिभक्त काकभुशुण्डि वक्ता हैं और आदिशक्ति पार्वती तथा विष्णु के वाहन गरुड़ श्रोता हैं। मानव वर्ग में परम-ज्ञानी याज्ञवल्क्य एव दीन सेवक तुलसीदास वक्ता हैं तो मुनिवर भरद्वाज एव सज्जनगण श्रोता हैं। देववर्ग की कथा क्रमश कैलास पर्वत एवं सुमेर गिरि पर होती है तो मनुष्य वर्ग की तीर्थराज प्रयाग और यत्रतत्र सर्वत्र होती है। मात्र स्थान एवं पात्र के आधार पर जो प्रभाव पड़ता है वह दो प्रकार का है एक तो यह कि जिस तथ्य को याज्ञवल्क्य से लेकर शिव तक कह रहे हैं और जो प्रयाग से लेकर कैलासादि तक अनुकथित हो रहा है वह निर्विवाद रूप से मान्य और ग्राह्य है। दूसरा यह कि जिस तथ्य को लेकर तर्काधार पर पार्वती एव भरद्वाज जैसे लोगों को भी संदेह हो सकता है, उसपर हम जैसे माया-शवलित

लोगों का क्या कहना ! इस प्रकार इस पद्धति से जहाँ एक ओर राम के परब्रह्मत्व की पुष्टि होती है वहीं दूसरी ओर राम-भक्ति के प्रचार का भी सबल प्रतिपादन होता है; और यही ग्रन्थकार का चरम साध्य है।

श्रोताओं एवं वक्ताओं की प्रकृति के अनुसार हिन्दू धर्म और हिन्दू मान्यता की भी विवृत्ति हुई है जिससे समाज में सदाचार और भक्ति की नींव दृढ होती है। इस दृष्टि से चारों संवाद चार भिन्न दिशाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रोताओं की वैयक्तिक योग्यताओं तथा वक्ताओं के साथ उनके सामाजिक संबंधों के अनुसार शंका-समाधान की पद्धतियाँ भी पृथक् पृथक् हैं। भरद्वाज जैसे श्रोता को प्रबोध देने के निमित्त याज्ञवल्क्य के कथन में स्वभावत हिन्दू समाज के सदाचार एवं कर्मकाण्ड का वर्णन अधिक हो गया है। इसके विपरीत पार्वती के समाधान में दाम्पत्य भाव का पुट छिपा है। यही नहीं, श्रोताओं की शंकाओं की कोटि के अनुसार, समाधान की शैली में भी वैभिन्य आ गया है। भरद्वाज की शंका ऋजु और सरल थी किन्तु पार्वती की गूढ़ और क्यों, कैसे में थी। अतः यहाँ वक्ता ने तर्क शैली अपनाई है। सर्वत्र बहुत समझा बुझाकर चलना पड़ा है। यहाँ ज्ञान कांड है। काकभुशुण्डि का संवाद लक्ष्य एवं शैली दोनों में भिन्न है। यहाँ वक्ता-श्रोता के संबंध भी कुछ दूसरे ढंग के हैं। इसीसे न तो यहाँ याज्ञवल्क्य के श्रुति-पंथ की बात है और न तो शिव के विषय निरूपण की ही। यहाँ तो निजी अनुभूति का वर्णन है—भक्तिकांड का वर्णन है। तुलसी के श्रोता सज्जन हैं, अत यहाँ मात्र तुलसी की अपनी ही तरह की दैन्यभक्ति का प्रलोभन अधिक है इसे दैन्य-काड अथवा उपासनाकाड कहा जा सकता है। इस प्रकार मानस में कर्मकांड, ज्ञानकाड, भक्तिकाड और उपासनाकाड की विचार-पद्धति के कारण ग्रन्थ के उद्देश्य को ग्राह्य करने में संदेह नहीं रह जाता है। पं० चन्द्रबली पाडे कर्म, ज्ञानादि के इस समिश्रण को नहीं स्वीकार करते हैं।[१]

इस पौराणिक शैली की जटिल श्रोता-वक्ता युक्त सवाद शैली का उपयोग मुख्यतः पाँच प्रकार से हुआ। (१) निश्चयात्मक प्रतीति एवं कथन को

१—चन्द्रबली पांडे—तुलसीदास पृ० ६२ (१९५८)।

प्रभावोत्पादक बनाने के लिए। (२) निष्कर्ष-कथन एवं कथा-प्रवाह के अंतर्गत राम की लीला से भ्रमित पाठक को सचेत करने के लिए। (३) कथा की एकरूपता एवं नीरसता को बचाने के लिए। (४) कथा के अन्तर्गत नए मोड़ लाने एवं नए प्रसगों के आरभ के लिए। (५) कतिपय कार्यों का कारण देने के लिए। प्रथम पर ऊपर थोड़ा विचार किया जा चुका है। यहाँ शेष चार को देखना है।

द्वितीय प्रणाली का मानस में अत्यधिक प्रयोग है। यहाँ तक कि कुछ इसे असाहित्यिक भी बताते हैं। पर देखना यह चाहिए कि जहाँ इस पद्धति से उद्देश्य प्रतिपादन में सहायता प्राप्त हुई है वहाँ काव्यत्व की रक्षा भी हुई है। सवाद शैली के अभाव में इस प्रकार के कथन पूर्णत अस्वाभाविक और अनपेक्षित ही लगते। यहाँ निष्कर्ष-कथन और सचेतक उक्तियों का एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

निष्कर्ष-कथनः—शिवजी कहते हैं—

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥
सुनहु उमा! ते लोग अभागी। हरि तजि होंहि बिषय अनुरागी॥

(अरण्य—३२, १—२)

सचेतक उक्तिः—राम को नागपाश में बँधा हुआ देखकर गरुड़ की भाँति पार्वती (पाठक) को भी भ्रम न हो जाय इसलिए शिव जी कहते हैं —

रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो॥
गिरिजा! जासु नाम जपि मुनि काटहि भव पास।
सो कि बध तर आवइ व्यापक बिश्व निवास॥

(लका कां० ७३)

बीच-बीच में संबोध्य के आने अथवा निष्कर्ष-कथन आदि से पाठक को थोड़ा विराम मिल जाता है और कथा की नीरसता भी समाप्त हो जाती, यद्यपि कुछ इसे रस-निष्पत्ति में बाधक मानते हैं, परन्तु इस ढंग का विचार मानस के काव्य रूप एव उद्देश्य के अनुसार ही करना अधिक उपयोगी हो सकता है। रसात्मक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र इसका विरामोपयोगी अस्तित्व तो एक प्रकार से सभी स्वीकार कर सकते हैं।

निष्कर्ष-कथन के बाद संबोधनों का सर्वाधिक प्रयोग नए प्रसंगों को आरंभ ने के निमित्त हुआ है, यथा, वायस वेष में सुरपतिसुत का प्रसंग समाप्त होने घटना के आगे बढ़ने के पूर्व शिव कहते हैं—

सुनि कृपालु अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी॥

(आरण्य० १–७)

इसी प्रकार गीध प्रसंग के अन्त में है—

सुनहु उमा! ते लोग अभागी। हरि तजि होंहि विषय अनुरागी॥
पुनि सीतहि खोजत दौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥

(आरण्य० ३२, २)

यत्र तत्र इसी माध्यम से किसी कार्य का कारण भी दिया गया है, यथा, नुमान जैसे बलवान राजदूत के नागपाश में बँधने का कारण शिव जी तलाते हैं—

जासु नाम जपि सुनहु भवानी!। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बँध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

(सुन्दर० १६–२)

आश्चर्य तो यह है कि वक्ता-श्रोता की इतनी जटिल और विस्तृत परम्परा एव सवाद-शैली के आत्यन्तिक प्रयोग पर भी कथा में विशेष व्यवधान नहीं आ पाया है। कवि ने इसको विविध कड़ियों के जोड़ने में विशेष कौशल से काम लेया है। प्रसंगों के अनुसार संबोधनों के प्रयोग और उसमें भी अधिकांशतः शिव के ही सबोधक रूप में आने से किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं होने पाई है। यदि सच पूछा जाय तो विविध वर्ण्य विषयों की अधिकता के फलस्वरूप ही हम कथा में संबोधनों के विविध रूप देखते हैं।

वस्तुत वक्ता-श्रोता की कलात्मक एवं सुनियोजित प्रणाली के कारण ही मानस पुराण भी हो सका है और उत्कृष्ट काव्य भी।

कथानक गठन

एस० एस० बर्टन ने काव्य की परख के लिए तीन तत्वों को आवश्यक बताया है (१) कवि का कथन क्या है (२) कथन में अन्तर्निहित भावना अथवा उद्देश्य क्या है और (३) कथन की पद्धति ने उद्देश्य की

सम्प्राप्ति में कहाँ तक योग दिया है अथवा व्यवधान उपस्थित किया है[1]। इन्हीं तीनों के आधार पर मानस के कथानक की भी परीक्षा हो सकती है। वस्तुत उद्देश्य अथवा उसका कथन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना उसके अभिव्यक्ति की पद्धति। इसीलिए कथानक-गठन प्रणेता की प्रणयन-कला और प्रतिभा की कसौटी होता है, इसी की सफलता पर उसकी सफलता और इसी की विफलता पर उसकी विफलता निर्भर करती है। डब्ल्यू० पी० केर ने लिखा है कि "परन्तु कवि कथानक (frame) का उपयोग उतनी आसानी से नहीं कर सकता है जितनी आसानी से रत्नोइयादार गर्म जाली को ठढा कर सकता है।"[2]

मानसकार ने उद्देश्य विशेष के अनुसार किस प्रकार अति सतर्कता से कथा-चयन, उसमें आवश्यक परिवर्तन-परिवर्द्धन और नूतन प्रसगोद्भावना की, यह तृतीय अध्याय में दिखाया जा चुका है। आरभ में ही कवि ने मानस का जो इतना विशद एव व्यवस्थित रूपक बाँधा है वह स्वय इस बात का प्रमाण है कि—

संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥

ग्रन्थारभ के पूर्व विस्तृत प्रस्तावना की योजना मात्र इसीलिए हुई है कि उद्देश्य के आग्रह के कारण कथा-प्रवाह में न तो कहीं व्यतिरेक ही आ पड़े और न कथानक में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता ही अन्तर्निविष्ट हो सके। यही नहीं, चरित-नायक से सबधित समूची कथा धारा-प्रवाह-रूप में बढ़ती चले, इसके लिए भी कवि ने प्रस्तावना-भाग में आवश्यक भूमिका निर्मित कर दी है। जब जब होय धरम की हानी तब तब मनुज-रूप में सज्जनों की पीड़ा-निवारण के लिए वचनवद्ध भगवान की आवश्यकता एवं तदनुकूल कथा-कार्य की गतिशीलता के लिए ही हेतु-कथाओं की विस्तृत श्रृङ्खला जोड़कर रावणोद्भव एव उसके अत्याचार की

1—S. H. Burton—The Criticism of Poetry—Chap III.

2—W.P. Ker—Form and Style in Poetry. Edited by R W. Chambers,P 96, 1228

वह पूर्वपीठिका भी निर्मित की गई है जिससे संत्रस्त समूचा लोक श्वासावरुद्ध होकर पलक-पाँवड़े बिछाए अपने पालनकर्ता की बाट जोह रहा था। ऐसे ही संक्रान्ति-युग में भगवान की अवतारणा दिखाकर जहाँ एक ओर कवि ने भगवान के स्वागत की आवश्यक भूमिका और कार्य-क्षेत्र की गुरुता प्रदर्शित की है, वहाँ दूसरी ओर 'ऐसहु प्रभु' को न भजनेवालों को धिक्कारने और भक्तों की प्रशंसा करने की भी युक्ति निकाल ली है। इसी योजनानुसार 'बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा' कहकर कवि ने जीवन के आवश्यक, पर उद्देश्य के अनुसार अनावश्यक अंश 'बाल-चरित' को छोड़कर, 'गाधि तनय मन चिंता' की संगति में भगवान राम को कार्य-क्षेत्र में उतार दिया है। यदि यही प्रसंग किसी साधारण कवि के हाथ में पड़ा होता तो 'बाल-लीला' वर्णन के मोह को संवरण न कर सकने के कारण वह कार्य और तदनुकूल नियोजित वातावरण के उस गांभीर्य को विनष्ट कर देता जिसके निर्माण के लिए तुलसीदास ने इतनी सतर्कता दिखाई है। वाल्मीकि ने यदि वीर-रस के प्रतिकूल समझकर इसे त्याज्य समझा तो कोई आश्चर्य नहीं है, पर आश्चर्य तो तब होता है जब भक्त काकभुशुन्डि के मुख से (उत्तरकांड में) स्वयं 'बालक रूप राम' का विशेष महत्व निर्देशित करने वाला कवि मात्र उद्देश्य के सबल आग्रह के कारण इसको छोड़ देता है। यही है कवि-कौशल और नीर-क्षीर-विवेक। मात्र इस एक उदाहरण से कवि की उस प्रवृत्ति की झलक दिखाई जा सकती है जिसका वह आद्यन्त निर्वाह करता रहा और कथानक में अनावश्यक भीड़-भाड़ को रोकता रहा।

पुनरावृत्ति का अभाव—कथात्मक काव्यों में पुनरावृत्ति का विशेष भय रहता है और इसमे कथानक-गठन पर आघात पड़ता है। परन्तु इस क्षेत्र में गोस्वामी जी ने इतनी सतर्कता दिखाई है कि एक बार कही हुई घटना पुनः नहीं कही गई है, अन्यत्र उसका उल्लेख मात्र हुआ है। अशोकवाटिका में सीता के प्रति रावण का दुर्व्यवहार देखकर, सीता का विलाप और उन्हें दिया हुआ त्रिजटा का आश्वासन सुनकर हनुमान ने विचार किया कि अब क्या करूँ? वाल्मीकि ने सुन्दरकाड के ३० वें सर्ग के तैतालिस श्लोकों में उनके उस समय के विचारों का वर्णन किया है, किन्तु गोस्वामी जी ने दोहे के एक चरण मेंही उसे इस प्रकार सूचित कर दिया है—'कपि करि हृदय विचारा'। फिर रामनामांकित

मुद्रिका गिराकर हनुमान ने—'राम नाम गुन बरनै लागा' और 'आदिहु तें सब कथा सुनाई'—के द्वारा सीता के अपहरण के पश्चात उनकी खोज के प्रयत्न तक, राम के कार्यों का जो वर्णन किया है, वह वाल्मीकीय रामायण के ३१ वें सर्ग के आरम्भिक पन्द्रह श्लोकों में वर्णित है। इसी प्रसंग में सीता ने हनुमान से पूछा था कि 'नर बानरहिं सग कहु कैसे' और हनुमान ने इसके उत्तर में वे सब बातें कही थीं जिनका वर्णन मानस के चतुर्थ सोपान में है। यहाँ गोस्वामी जी ने उसकी पुनरावृत्ति न करके, केवल इतना लिखकर काम चला लिया कि—'कही कथा भइ सगति जैसे'। इसी प्रकार भरत के बाण से घायल हनुमान जी ने भरत को समूचा रामचरित इस विधि से सुनाया था —'कपि सब चरित समास बखाने'। ऐसे ही, जब राम ने अयोध्या पहुँचने के पूर्व हनुमान को भरत के पास सूचनार्थ भेजा था तब वहाँ भी भरत के पूछने पर कथा का उल्लेख ही हुआ है—

'तब हनुमान नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥'

मानस में कथा की पुनरावृत्ति केवल एक बार हुई है और वह भी उपसंहार के निमित्त। उत्तरकाड में गरुड़ के पूछने पर काकभुशुण्डि ने जो कथा सुनाई है वही रामचरितमानस की कथा की पुनरावृत्ति है। पर ऐसा कई कारणों से हुआ है—जैसा कि 'मानस का उपसहार' शीर्षक के अन्तर्गत दिखाया जा चुका है। अत यहाँ की यह आवृत्ति गुण ही है, दोष नहीं।

संकेतित-प्रसंग—चरित काव्यों की शैली में लिखा गया पुराण काव्य होने पर भी मानस में न तो पुराणों की भाँति अन्तर्कथाओं को प्रश्रय दिया गया है और न आख्यान काव्यों की कथा के भीतर कथा और उसके भी भीतर उपकथा कहने की प्रवृत्ति को बढावा दिया गया है। अवाछित प्रसगों को निर्मोही माली की भाँति तुलसीदास ने काटछाँट कर एक किनारे रख दिया है। इस ढग की कथाएँ जहाँ आई भी हैं वहाँ कवि ने एक शब्द में सकेत मात्र कर दिया है। जैसे, जनकपुर जाते समय निर्जन स्थान में शिला को देखकर राम ने विश्वामित्र से उसका कारण पूछा और मुनि ने अहल्या की पूरी कथा (जो अध्यात्म रामायण में १८ श्लोकों में वर्णित है) मात्र एक अर्द्धाली में कह दी है—

पूछा मुनहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी॥

इसी प्रकार बहुत से सूच्य प्रसङ्ग मानस में आए हैं, जिनकी अन्य ग्रन्थों में तो पूरी कथा कही गई है पर मानस में उनकी केवल सूचना भर दी गई है—कुछ उदाहरण ये हैं :—

(१) *भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥*

× × ×

(२) *चले राम लछिमन मुनि सङ्गा। गए जहाँ जगपावनि गंगा॥*
गाधि सुवन सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

× × ×

(३) *तापस अन्ध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई॥*

× × ×

चलाऊ वर्णन—गोस्वामी जी ने भलीभाँति पहिचान लिया था कि कहाँ पर वर्णन-विस्तार होना चाहिए और कहाँ पर नहीं। जहाँ एक ओर वर्णन करते हुए तुलसीदास ऊबते तक नहीं वहीं दूसरी ओर समूची कथा को लेकर घोड़े की टाप की गति से भगते हैं। उदाहरणार्थ, चित्रकूट से भरत के और लङ्का से राम के प्रत्यावर्तन के वर्णन को देखा जा सकता है। चित्रकूट जाने की भरत की तैयारी से लेकर चित्रकूट-सभा-वर्णन तक, कवि ने लोक-व्यवहार की एक भी विधि एवं अपने प्रिय चरित्रों की एक भी रेखाओं को उपेक्षित नहीं होने दिया और सबका जमकर वर्णन किया, परन्तु वही भरत जब वहाँ से लौटते हैं तब समूचा वर्णन कुछ ही पङ्क्तियों में समाप्त हो जाता है। राम के लिए सीता का विरह जितना ही बड़ा है, किष्किन्धा से ऋष्यमूक तक की यात्रा उतनी ही छोटी है।[1] इसी प्रकार राम-रावण के युद्ध का वर्णन तो पूरे विस्तार से किया जाता है, किन्तु राम के सीता से मिलने और अयोध्या लौटने का वर्णन बहुत शीघ्र समाप्त हो जाता है। यह प्रवृत्ति अन्य स्थलों पर भी देखी जा सकती है।

रसहीन प्रसंगों से बचाव:—जिन प्रसङ्गों में किसी प्रकार का रस अथवा आकर्षण नहीं है उन्हें कवि ने सूचित मात्र कर दिया है। यथा, अयोध्या

१—तुलसी–रामबहोरी शुक्ल, पृ० सं०, १९५२।

में बारात की साज-सज्जा का तो विस्तृत वर्णन है, किन्तु वहाँ से जनकपुर तक पहुँचने की सूचना मात्र है। फिर जनकपुर में बारात के अभिनन्दन का तो पूरा वर्णन है किन्तु केवल 'गये बीति कछु दिन यहि भाँति'—कहकर कथा आगे बढाई गई है। इसी प्रकार जनक के दिए हुए दायज, राजा दशरथ के दान, जनक के प्रासाद मे हुई ज्योनार आदि का उल्लेख ही है। यदि कवि को अभिप्सित होता तो जायसी एव सूर आदि की भाँति वह भी यहाँ इन कार्यों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत कर सकता था, पर ऐसा करने से कथानक की कड़ी ही टूटती, उसमें कोई नयी विशेषता न जुड़ती।

अवाछित प्रसगों की सूचना मात्रः—मर्यादावादी गोस्वामी जी ने ऐसे प्रसङ्गों की सूचना मात्र दी है। आरम्भ में विवाहोपरान्त शिव और पार्वती के सम्भोग शृङ्गार का वर्णन कवि की मर्यादा के प्रतिकूल था, अत उसने उसे इस प्रकार व्यक्त किया है।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा, गगन समेत बसहि कैलासा ॥
हर गिरजा बिहार नित नयऊ, येहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ॥

इसी भाँति सुमन्त से कही गई लक्ष्मण की 'अनुचित बानी' और लक्ष्मण से कहे गए सीता के मर्म वचन का भी कवि ने ब्योरा नहीं दिया है। उसने मात्र इतना ही लिखा है—(१) 'कही लखन कछु अनुचित बानी'। (२) 'मर्म वचन सीता जब बोला।' अन्य कवियों ने इन प्रसगों पर जमकर लेखनी चलाई है पर गोस्वामी जी ने ऐसे प्रसगों का यथाशक्ति बहिष्कार ही किया है।

सर्वत्र कृपणता की नीति अपनाने वाले गोस्वामी जी की वाग्धारा मार्मिक प्रसगों पर किस प्रकार अप्याहत गति से फूट पडी है—इस पर आगे चलकर विस्तृत विचार किया जायगा। यहाँ उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह भलीभाँति देखा जा सकता है कि गोस्वामी जी ने किसी भी प्रसग को तब तक प्रश्रय नहीं दिया है जब तक वह उनके उद्देश्य के अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ है। यही नहीं उन्होंने किसी भी कथा अथवा प्रसग के उतने ही अश को ग्रहण किया है जितने से उनका काम चलता गया है। तुलसीदास की इस प्रवृत्ति पर विदेशी विद्वान् बरान्निकोव का यह आक्षेप है कि तुलसी की पूरी कथा इस आधार पर उपस्थित होती है कि राम की मौलिक कथा पाठकों तथा श्रोताओं

को ज्ञात है। ऐसा इन पौराणिक ऐतिहासिक कथाओं के समझने में विक्षेप डालता है।[1]

परन्तु जैसा कि कहा जा चुका है कि इसी गुण के कारण 'मानस' का कथानक अधिक सुगठित रह सका है और 'अध्यात्म रामायण' की भाँति पूर्णतः धार्मिक ग्रन्थ होकर भी यह न तो वाल्मीकीय रामायण की तरह इतिहास-पुराण हो सका और न तो अध्यात्म रामायण की भाँति मात्र पुराण अथवा धार्मिक ग्रन्थ ही। हाँ, यह अवश्य है कि कथानक गठन का श्रेय तुलसीदास के कवि रूप को उतना नहीं है जितना कि उनके भक्त रूप को है। आराध्यदेव राम में कवि की चातक-सी एकनिष्ठता ने उसे इतर प्रसगों की ओर जाने ही नहीं दिया और समूचा कथानक राम के चतुर्दिश घड़ी के पेंडुलम की भाँति घूमता रहा। बालकाण्ड के उत्तरार्द्ध और अयोध्याकाण्ड को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी कवि रूप ने अपनी झाँकी नहीं दिखाई है। इसके पश्चात् जो कुछ है, वह सब भक्त और भगवन्त की चर्चा ही है। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उद्देश्यानुसार रामकथा को लेकर जितना सुगठित कथानक गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया उतना अन्य किसी से भी सम्भव नहीं हो सका है।

प्रबंध-कौशल

अब तक तो कथानक-गठन की चर्चा हुई, अब यहाँ उसकी आन्तरिक परीक्षा भी आवश्यक है। जिस प्रकार विचारक का अन्तिम ध्येय श्रोता को अपनी विचार-पद्धति पर लाना होता है उसी प्रकार कवि का ध्येय 'सहृदय' को रस-पद्धति पर लाना। इसके लिए दोनों ही को आवश्यक वातावरण निर्मित करना पड़ता है। कवि का वातावरण घटनाओं का होता है जिसे वह आवश्यकतानुसार काँट-छाँट कर सजाता है। इन्हीं के मध्य अपने पात्रों को रखकर वह उनमें प्राण प्रतिष्ठा करता है। घटनाओं की निश्चित शृखला के अभाव में उन परिस्थितियों का ठीक परिज्ञान नहीं हो सकता जिनके बीच पात्रों को देखकर श्रोता उनके हृदय की अवस्था का अपनी सहृदयता के अनुसार अनुमान

१—बराजिकोव—वही० पृ० ५२–५३।

करते हैं। घटनाओं के इसी संकुचित उल्लेख को इतिवृत्त कहते हैं। इनमें न तो सशलिष्ट वर्णन का ही विधान होता है और न हृदय के मार्मिक भावों की व्यञ्जना का ही। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि उसमें एक-एक ब्योरे पर ध्यान नहीं दिया जाता और न पात्रों के हृदय की झलक दिखाई जाती है। प्रबन्ध-काव्य के भीतर ऐसे स्थल रस-पूर्ण स्थलों की परिस्थितियों की सूचना मात्र देते हैं।[1] उदाहरणार्थ इन चौपाइयों को देखा जा सकता है—

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया॥
तँह रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल-रूप-निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसि जानि जिय सैन बुझाई॥

इन्हीं के आधार पर कवि मार्ग में पड़ने वाले मानव-जीवन के उन मर्मस्पर्शी स्थलों को छूता चलता है जिनसे सारी कथा में रसात्मकता आ जाती है। इन स्थलों की अधिकाधिक पहचान ही कवि-कर्म की सफलता है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि प्रबधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चलता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।[2] इसके लिए इतिवृत्त की गति इस ढग से होनी चाहिए कि मार्ग में भावोद्रेक करने वाली ऐसी बहुत सी दशाएँ पड़ जाँय जिनका सामान्य अनुभव प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः कर सकता हो। गोस्वामी तुलसीदास ने ऐसे स्थल पहचाने ही नहीं है, जहाँ उनकी आवश्यकता हुई है, वहाँ उनका निर्माण भी किया है। मात्र साहित्य की दृष्टि से रसात्मक स्थल बालकाड और अयोध्याकाड में अधिक हैं पर भक्ति की दृष्टि से ऐसे स्थल यत्र तत्र सर्वत्र हैं। इनमें से मुख्य ये हैं—पूर्वराग, स्वयम्वर और विवाह, राम का अयोध्या-त्याग और पथिक के रूप में वनगमन, भरत की आत्म-ग्लानि, राम और भरत का मिलन, राम का अगस्त्य से सवाद, शबरी का आतिथ्य, वसंत वर्णन, वर्षा वर्णन, शरद

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली, तृतीय सस्करण, पृ० ६७।
२—आचार्य शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, सप्तम स० पृ० ७८।

वर्णन और पंपा-सरोवर-वर्णन; लक्ष्मण को प्रबोध, भरत की प्रतीक्षा, विभीषण और सुग्रीवादि की विदाई।

कवि की सर्वाधिक सफलता इसमें भी है कि वह नीरस इतिवृत्त को अपनी रस-योजना के प्रवाह में सरस बना दे। इसी बात को ध्यान में रखकर साहित्य-दर्पणकार ने कहा है कि प्रबंध के रस से नीरस पद्यों में भी रसवत्ता मानी जाती है—'रसवत्पद्यान्तर्गतनीरसपदानामिव पद्यरसेन प्रबंधरसेनैव तेषां रसवत्तांगीकारात्'। भक्ति-क्षेत्र में भगवान की लीला का प्रत्येक वर्णन भक्तों के लिए अनुरंजनकारी होता है। 'अध्यात्म रामायण' भी जिसमें मात्र इतिवृत्त कथन ही है, भक्तों के हृदय में बहुत कुछ रसोद्रेक करता है। मानस में जहाँ भक्ति और काव्य दोनों की अपूर्व छटा बिखरी है, इसका कुछ कहना ही नहीं। भक्तों के लिए कष्ट उठाने वाले भगवान का ऋष्यमूक पर्वत तक पहुँचने का अनुकथन भी भक्ति-रस से सिंचित है। माया सीता के लिए विलाप का स्वांग करने वाले कौतुकी राम का विरह भी भक्तों को नारद की ही भाँति व्यथित करता है—

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥

भक्ति और काव्य के अद्‌भुत सम्मिश्रण के कारण मानस में वर्णित साम्प्रदायिक तत्व, कोरे उपदेश आदि भी अधिक सरल और प्रभावकारी हो गए हैं। इसकी जाँच 'मानस' और 'अध्यात्मरामायण' दोनों को साथ साथ पढ़ने से हो सकती है। शुक्ल जी ने ऐसे स्थलों को काव्य के अन्तर्गत मानने अथवा न मानने की छूट दी है।[1] परन्तु इस छूट का स्पष्ट अर्थ या तो तुलसीदास के उद्देश्य को नकारना है अथवा कवि से असंबंधित आलोचक की पृथक सत्ता घोषित करना है। स्पष्टतः शुक्ल जी जैसे व्यक्ति द्वारा ऐसा, महाकाव्य अथवा प्रबन्धकाव्य और पुराण में समझौता न कर सकने के ही कारण संभव हो सका। उद्देश्य को प्रभावशाली बनाने के लिए तुलसीदास की उपरोक्त योजना, उनके प्रबंध-कौशल की परिचायिका है।

संबंध-निर्वाह

प्रबंध-काव्य में बड़ी भारी बात है संबंध-निर्वाह। परन्तु, तुलसी के संबंध-

१—आचार्य शुक्ल, गो० तु०, पृ० ७१।

निर्वाह पर कुछ भी कहने से पूर्व यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि मानस में 'कथानक' के ढंग का कथानक नहीं है। यह कथानक एक में सटाकर रखी हुई खरबूजे की उन फाँकों की तरह है जो तब तक एक (पूरा खरबूजा) हैं जब तक कोई उन्हें छू न दे। चारों वक्ताओं द्वारा स्थल स्थल पर चार भिन्न प्रकार के सम्बोधनों के प्रयोग से कथा सदैव खडित रूप में सामने आई है। यदि एक ही वक्ता-श्रोता होते तो इस ढग की बात न होते पाती। कथा के इस खड-रूप के ही कारण मानस में महाकाव्यों की भाँति सर्ग-पद्धति नहीं व्यवहृत हुई है। फिर भी ऊपर से कहीं भी कथा खडित नहीं लगती है। इसके मुख्यत दो कारण हैं : (१ , एक तो यह कि मानस की कथा उस राम की कथा है जिसे कम से कम प्रत्येक हिन्दू जानता है और मानस की कथा वस्तु के नाम पर 'मानस' की कथा सामने न आकर रामायण की मुख— परम्परा से चलने वाली राम की ही कथा सामने आती है। ऐसा इसलिए होता है कि रूप-दृष्टि से दोनों प्रायः समान हैं जो कुछ अन्तर है भी वह प्राण-पक्ष का है। सामने प्राण नहीं स्वरूप ही आता है। (२) दूसरा यह कि मानस की कथा केवल राम के चरित्र के चारों ओर सिमटी है, अतः एकरूपता है, यद्यपि राम के लीला चरित में स्वयं निरन्तरता नहीं है। कथानक की इस योजना को कुछ अंश में तुलसी की कला और कुछ अंश में उनका भाग्य कहा जा सकता है।

यहाँ, अब मानस के इतिवृत्त पर विचार कर लेना चाहिए। हमारे आचार्यों ने कथावस्तु दो प्रकार की मानी है—आधिकारिक और प्रासंगिक। अतः सबध-निर्वाह पर विचार करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि प्रासगिक कथाओं का जोड़ आधिकारिक वस्तु के साथ भलीभाँति मिला है अथवा नहीं अर्थात् उनका आधिकारिक वस्तु के साथ ऐसा सबध है या नहीं जिससे उसकी गति में कुछ सहायता पहुँचती हो। मानस में कई प्रासंगिक वृत्त हैं जो मुख्यरूप से प्रस्तावना-भाग और उपसहार-भाग के अन्तर्गत आए हैं। इनके कारण आधि-कारिक कथा वस्तु के स्रोत का मार्ग पूर्ण रूप से निर्धारित हुआ है। मनु-शतरूपा और कश्यप-अदिति तथा नारद-शाप के वृत्त ने मानस-कथा की सम्पूर्ण गतिविधि को प्रभावित किया है और सुनियोजित ढंग पर शापग्रस्त रावणरूपी प्रतापभानु के

उद्धार के लिए सुनिश्चित आधार भी प्रस्तुत कर दिया है। मानस की मूलकथा का जितना सफल संतुलन और नियंत्रण इसकी प्रासंगिक कथाओं द्वारा हुआ है उतना अन्य किसी ग्रन्थ की प्रासंगिक कथाओं द्वारा संभव नहीं हो सका है।

यह तो हुई प्रासंगिक कथा की बात जिसमें प्रधान नायक के अतिरिक्त किसी अन्य का वृत्त रहता है। अब आधिकारिक वस्तु की योजना को देखना चाहिए। प्रबंध-काव्य में मुख्य दृष्टि या तो व्यक्ति पर रहती है अथवा घटना पर। मानस में प्रथम पद्धति का व्यवहार हुआ है। मानस की सम्पूर्ण कथा की धुरी राम पर ही टिकी है। मानस के राम मानव न होते हुए भी ललित नर लीला करते हैं, अतः आधिकारिक वस्तु का वास्तविक जीवन और जगत से गाढा संबंध है।

प्रत्येक प्रबंध-काव्य का एक 'कार्य' होता है जिसके लिए घटनाओं की सारी आयोजना होता है। मानस का कार्य है—भक्तों का अनुरंजन और रामभक्ति की स्थापना। भगवान राम का अवतार भक्तों के हित के लिए ही होता है और नर रूप में अवतरित होकर बाल्यावस्था से ही वे अपने उद्देश्य में रत दिखाई पड़ते हैं। उन्हें कहीं किसी के वरदान की पूर्ति करनी है तो कहीं किसी के शाप का उन्मोचन करना है। मानसकार ने इस कार्य के अनुसार ही घटनाओं की योजना की है। ग्रन्थ के प्राय. सभी पात्र भक्त हैं और सभी भगवान से भक्ति की याचना करते हैं। मेघनाद जैसा अहवादी राक्षस भी अन्त समय में राम का नाम लेता है और जीवन्मुक्त हो जाता है। इस दृष्टि ने 'कार्य' का प्रतिपादन पूर्णत सफल रहा है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मानस का कार्य 'रावण वध' नहीं है। आचार्य शुक्ल जी ने पद्मावत पर विचार करते हुए एक स्थल पर संकेत किया है कि रावण-वध ही रामचरित मानस का 'कार्य' है।[1] परन्तु समझना यह चाहिए कि रावण-वध राम के अवतरित होने के अनेक कारणों में से केवल एक कारण है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से कारण हैं जिनके लिए भगवान राम बहुत पहले से प्रतिश्रुति हैं। अत मात्र रावण-वध को मानस-कथा का 'कार्य' मानना इसे विकलाङ्ग करना ही है। रावण-वध वाल्मीकि रामायण का 'कार्य' अवश्य है किन्तु

१—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ९६।

रामायण और मानस की आत्मा की भिन्नता से दोनों के 'कार्य' की भिन्नता भी समझनी चाहिए।

सम्बन्ध-निर्वाह के ही अन्तर्गत गति के विराम का भी विचार कर लेना उपयोगी है। मानस की कथा केवल राम पर ही केन्द्रित होने के कारण अनावश्यक विवरणों की भीड-भाड़ से बच गई है। रसात्मक विधान करने वाली मार्मिक परिस्थितियों के विवरण और चित्रण के लिए आवश्यक विरामों की तो मानस में कमी नहीं है किन्तु 'पद्मावत' की भाँति पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा जानकारी प्रकट करने वाले स्थलों अथवा कथा-विरामों का इसमें पूर्णत. अभाव है। यहाँ उपदेशों की योजना है पर वह भक्तिरस के प्रवाह में अनपेक्षित न होकर अपेक्षित बन गई है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मानस के घटना-चक्र के भीतर ऐसे स्थलों का ही समुचित सन्निवेश हुआ है जो मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्तियों का उद्बोधन भी करते हैं और साथ ही पाठक को प्रणेता की भावधारा से आप्लावित करने में भी सक्षम हैं। *आगे रस योजना पर विचार किया जायगा।*

रसात्मक विधान

जिस प्रकार इतिवृत्त की सबसे बड़ी सफलता कथा-सूत्र को मार्मिक स्थलों तक पहुँचाने में है ठीक उसी प्रकार रसात्मक विधान की सबसे बड़ी सफलता उस स्थल की रागात्मक वृत्तियों को अधिकाधिक झकझोरने में है। यह सस्पर्श जितना ही सामान्य और जीवन के निकट का होगा साधारणीकरण उतना ही अधिक, और रसोद्रेक उतना ही तीव्र होगा।[1] तभी शुक्ल जी ने कवि की पूर्ण भावुकता के लिए प्रत्येक मानव स्थिति के अनुरूप भाव के अनुभव करने की बात उठाई है।[2] यह अनुभव मात्र मानव-चरित्र से ही नहीं वरन् किसी भी हृदयग्राही वस्तु के संश्लिष्ट वर्णन से सम्बद्ध हो सकता है, चाहे वह प्रकृति की सुषमा का वर्णन हो चाहे नदी-नाले आदि का वर्णन हो। वस्तु-वर्णन अथवा भाव-व्यंजना की इसी आवश्यकता के कारण प्रबन्ध-काव्यों में मन्दगति

१—आचार्य शुक्ल—चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० २२५।

२—आचार्य शुक्ल—गो० तु०, पृ० ८४।

की कथा-वस्तु का विधान है। 'सक्रियता' में विश्वास रखने वाले सी० यम० गेले एव डिक्सन जैसे पश्चिमी व्यक्ति भी कथानक का विकास शान्त और मंथर गति (Leisurely manner) से होना ठीक समझते हैं।[1] भारतवष में रसवादी दृष्टिकोण के कारण ऐसे स्थलों की तो अधिकता होती ही है। रवीन्द्र-नाथ ठाकुर ने लिखा है कि 'वर्णन' तत्व-विचार और अवान्तर प्रसङ्गों से कथा-प्रवाह भले ही पद-पद पर स्खलित हो जाय पर प्रशान्त भारत कभी अधीर होता दिखाई नहीं पड़ा। . भगवद्गीता के माहात्म्य को सभी जानते हैं पर जब कुरुक्षेत्र के ऐसा घमासान युद्ध सिर पर हो तब शान्त होकर समस्त भगवत्-गीता सुनना भारतवर्ष को छोड़ संसार के किसी देश में सम्भव नहीं।[2]

अत तुलसीदास की रस-योजना पर विचार करते समय इन सभी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। काव्य में इस प्रकार के ब्योरेवार वर्णन दो रूपों में मिलते हैं :—

(१) कवि द्वारा वस्तु वर्णन के रूप में।

(२) पात्र द्वारा भाव व्यञ्जना के रूप में।

कवि द्वारा वस्तु-वर्णन

यहाँ इतना जान लेना चाहिए कि गोस्वामी जी ने जायसी की भाँति न तो कहीं वस्तु-वर्णन के नाम पर परिगणन की शैली अपनाई है और न तो अरोचक एवं अनावश्यक वर्णनों में अपनी प्रतिमा का अपव्यय ही किया है। उनके वर्णनों में एक प्रकार की सजीवता है, चाहे वह परवर्ती संस्कृत कवियों की भाँति पूर्ण नवीन भले ही न हो। शरद् एवं वर्षा-ऋतु के वर्णनों में अवश्य परिगणन-शैली व्यवहृत हुई है, परन्तु ऐसा भागवत के प्रभाव के कारण हुआ

१—(अ) Charles Mills Gayley & B. P. Kurtz Method and Materials of Literary Criticism, P. 68.

(ब) W. M. Dixon—English Epic and Heroic Poetry, P. 22.

२—रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्राचीन साहित्य (हि० अनु०) तृ० सं० पृ० ८०।

रामायण और मानस की आत्मा की भिन्नता से दोनों के 'कार्य' की भिन्नता भी समझनी चाहिए।

सम्बन्ध-निर्वाह के ही अन्तर्गत गति के विराम का भी विचार कर लेना उपयोगी है। मानस की कथा केवल राम पर ही केन्द्रित होने के कारण अनावश्यक विवरणों की भीड़-भाड़ से बच गई है। रसात्मक विधान करने वाली मार्मिक परिस्थितियों के विवरण और चित्रण के लिए आवश्यक विरामों की तो मानस में कमी नहीं है किन्तु 'पद्मावत' की भाँति पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा जानकारी प्रकट करने वाले स्थलों अथवा कथा-विरामों का इसमें पूर्णत. अभाव है। यहाँ उपदेशों की योजना है पर वह भक्तिरस के प्रवाह में अनपेक्षित न होकर अपेक्षित बन गई है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मानस के घटना-चक्र के भीतर ऐसे स्थलों का ही समुचित सन्निवेश हुआ है जो मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्तियों का उद्‌बोधन भी करते हैं और साथ ही पाठक को प्रणेता की भावधारा से आप्लावित करने में भी सक्षम हैं। आगे रस योजना पर विचार किया जायगा।

रसात्मक विधान

जिस प्रकार इतिवृत्त की सबसे बड़ी सफलता कथा-सूत्र को मार्मिक स्थलों तक पहुँचाने में है ठीक उसी प्रकार रसात्मक विधान की सबसे बड़ी सफलता उस स्थल की रागात्मक वृत्तियों को अधिकाधिक झकझोरने में है। यह सस्पर्श जितना ही सामान्य और जीवन के निकट का होगा साधारणीकरण उतना ही अधिक, और रसोद्रेक उतना ही तीव्र होगा।[1] तभी शुक्ल जी ने कवि की पूर्ण भावुकता के लिए प्रत्येक मानव स्थिति के अनुरूप भाव के अनुभव करने की बात उठाई है।[2] यह अनुभव मात्र मानव-चरित्र से ही नहीं वरन् किसी भी हृदयग्राही वस्तु के संश्लिष्ट वर्णन से सम्बद्ध हो सकता है, चाहे वह प्रकृति की सुषमा का वर्णन हो चाहे नदी-नाले आदि का वर्णन हो। वस्तु-वर्णन अथवा भाव-व्यजना की इसी आवश्यकता के कारण प्रबन्ध-काव्यों में मन्दगति

१—आचार्य शुक्ल—चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० २२७।

२—आचार्य शुक्ल—गो० तु०, पृ० ८४।

की कथा-वस्तु का विधान है। 'सक्रियता' में विश्वास रखने वाले सी० यम० गैले एवं डिक्सन जैसे पश्चिमी व्यक्ति भी कथानक का विकास शान्त और मंथर गति (Leisurely manner) से होना ठीक समझते हैं।[1] भारतवर्ष में रसवादी दृष्टिकोण के कारण ऐसे स्थलों की तो अधिकता होती ही है। रवीन्द्र-नाथ ठाकुर ने लिखा है कि 'वर्णन' तत्व-विचार और अवान्तर प्रसङ्गों से कथा-प्रवाह भले ही पद-पद पर स्खलित हो जाय पर प्रशान्त भारत कभी अधीर होता दिखाई नहीं पड़ा। ..भगवद्गीता के माहात्म्य को सभी जानते हैं पर जब कुरुक्षेत्र के ऐसा घमासान युद्ध सिर पर हो तब शान्त होकर समस्त भगवत्-गीता सुनना भारतवर्ष को छोड़ संसार के किसी देश में सम्भव नहीं।[2]

अत तुलसीदास की रस-योजना पर विचार करते समय इन सभी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। काव्य में इस प्रकार के ब्योरेवार वर्णन दो रूपों में मिलते हैं —

(१) कवि द्वारा वस्तु वर्णन के रूप में।

(२) पात्र द्वारा भाव व्यञ्जना के रूप में।

कवि द्वारा वस्तु-वर्णन

यहाँ इतना जान लेना चाहिए कि गोस्वामी जी ने जायसी की भाँति न तो कहीं वस्तु-वर्णन के नाम पर परिगणन की शैली अपनाई है और न तो अरोचक एवं अनावश्यक वर्णनों में अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया है। उनके वर्णनों में एक प्रकार की सजीवता है, चाहे वह परवर्ती संस्कृत कवियों की भाँति पूर्ण नवीन भले ही न हो। शरद् एवं वर्षा-ऋतु के वर्णनों में अवश्य परिगणन-शैली व्यवहृत हुई है, परन्तु ऐसा भागवत के प्रभाव के कारण हुआ

१—(अ) Charles Mills Gayley & B. P. Kurtz Method and Materials of Literary Criticism, P. 68

(ब) W. M. Dixon—English Epic and Heroic Poetry, P. 22.

२—रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्राचीन साहित्य (हि० अनु०) तृ० सं० पृ० ७०।

है। अतः मानना पड़ता है कि तुलसीदास ने घटना-चक्र के बीच उपयुक्त स्थलों को चुनने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है और इनके इस प्रकार के विस्तृत वर्णन जीवन के अत्यन्त सन्निकट होने के कारण बहुत ही भावपूर्ण हैं। अब सक्षेप में इन्हीं स्थलों का उल्लेख करके तुलसी के कौशल की परख की जाती है।

रूप-सौंदर्य-वर्णन—मानस में केवल राम के ही रूप-सौंदर्य का वर्णन है। यहाँ 'दोहावली' की चातक-वृत्ति सार्थक हो जाती है कि 'चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर?' मानस में राम के रूप का वर्णन विस्तृत रूप में केवल पाँच बार हुआ है—चार बार बालकाड में और एक बार उत्तरकाड में। इसके अतिरिक्त राम के अन्य रूप-वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त हैं और उनकी नियोजना भक्तों की भावना में तीव्रता भर देने के लिए हुई है, यथा, सुन्दरकाड में विभीषण को प्रथमतः दिखाई पडने वाला राम का रूप और कवि द्वारा उसका वर्णन।

राम-रूप के सभी वर्णनों में एकरूपता है, वही उपमा और लगभग वही उपमान यत्र तत्र सर्वत्र प्रयुक्त हुए हैं। फिर भी, सब में एक प्रकार की नवीनता है जो कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और भिन्न-भिन्न पात्रों के ससर्ग से उत्पन्न है। अत यदि विभिन्न परिस्थितियों का परिचय प्राप्त हो जाय तो उसमें नियोजित चित्र की मार्मिकता स्पष्ट हो जाय। यहाँ अपने कथन की पुष्टि के लिए कौशल्या की गोद में पड़े राम के रूप-वर्णन की विस्तृत झाँकी प्रस्तुत की जा रही है। अन्य रूप-वर्णनों की मार्मिकता की परख के लिए—जो ऊपर से एकरूप लगते हैं—हम उनकी उन विभिन्न परिस्थितियों का परिचय प्रस्तुत करना ही पर्याप्त समझते हैं जिनके परिपार्श्व में वे वर्णन एकरूप होते हुए भी अनेक रूप हो गए हैं और अपने उसी रूप से, प्रसग-भेद से नाना भावों एव रसों की योजना करते चलते हैं।

चौथेपन में पुत्र प्राप्त करने वाली माता का हृदय—जहाँ अपनी सन्तान में कुरूपता दृष्टिगोचर ही नहीं होती—विश्व-रूप-राशि राम को अपनी गोद में निरखकर कितना आह्लादित हुआ होगा, इसका प्रत्यक्ष वर्णन तुलसीदास ने अपनी आँखों से नहीं, अपितु स्वय उस माँ (कौशल्या) की आँखों से देखकर किया है ·

काम कोटि छवि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गंभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। विप्र चरन देखत मन लोभा॥

चरण से कवच तक का यह वर्णन अपने में कितना पूर्ण है, इसे भलीभाँति देखा जा सकता है। इसके पश्चात् एक-एक अंगों का क्रमशः वर्णन करके जब कवि 'चिक्कन कच कुञ्चित गभुआरे' के साथ 'पीत झगुलिया' की संगति बैठा देता है, तब रूप-माधुरी का वर्णन करना सचमुच में 'शेष और श्रुति' के वश की बात नहीं रह जाती है।

यदि पूर्वजन्म में मनु-शतरूपा की इस इच्छा—कि 'देखहिं हम सो रूप भरि लोचन' के अनुकूल भगवान के रूप-दर्शन और साथ ही 'चाहउँ तुम्ह समान सुत' के वरदान के साथ उपरोक्त वर्णन को देखा जाय तो नया ही रंग उभरेगा—अद्भुत भाव-धारा का उद्रेक होगा। यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि यह वर्णन मुख से आरम्भ न होकर चरण से ही आरंभ है।

इस रूप-वर्णन के वैशिष्ट्य तथा रस-प्रतीति में परिस्थितियों के योग के आकलन के लिए यहाँ मनु-शतरूपा द्वारा भावित राम-रूप का वर्णन किया जा रहा है।

मनु-शतरूपा की कृच्छ्रकाय साधना एवं अतुल भक्ति पर प्रसन्न होकर भगवान राम ने उन्हें दर्शन दिया। दम्पत्ति, इस रूप-माधुरी को अपलक निहार रहे हैं। भक्त के हृदय का अनुरंजित करने वाला यह रूप सहज ही आकर्षक और मधुर है। यहाँ भी कवि अपनी आँखों से देखकर नहीं अपितु मनु-शतरूपा की आँखों से देखकर वर्णन कर रहा है, इसी से इसकी रसात्मकता आँकी जा सकती है। वह देखता है कि—

सरद मयंक बदन छवि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुन्दर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥

नव अंबुज अबक छबि नीकी। चितवनि ललित भांवतिजी की ॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥

यद्यपि कि वर्णन में कोई विशेष नवीनता नहीं है, बिम्ब ग्रहण की अपेक्षा 'चारु, सुन्दर, नीक, ललित' आदि अमूर्त विशेषणों के द्वारा परम्परा-पालन ही अधिक है; फिर भी, परिस्थिति विशेष के आग्रह और भक्त की आँखों से अवलोकित होने के कारण यह सजीव और प्रभावकारी है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तब मिलता है जब मात्र एक ही दोहे में पूरा स्वरूप चित्रित हो जाता है

तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि ॥

इसके अतिरिक्त तीन समान उपमानों द्वारा भगवान की तन-शोभा का चित्रण करने के साथ-साथ कवि ने उसमें अन्य प्रकार के अर्थों को भी अन्तर्भुक्त किया है। यथा—

नील सरोरूह नील मणि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥

यह दोहा बिहारी की कला—'गागर में सागर भरना'—की याद दिलाता है। इस दोहे के अनेक अर्थ लगाए जा सकते हैं।

इसी रूप से प्रभावित दम्पत्ति एक टक नयन-पट रोक कर देखते रहे और अन्त में उन्होंने 'प्रभु-समान सुत' की याचना भी की।

राम के रूप-वर्णन की अन्य तीन परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं:— (१) जनकपुर की गलियों में घूमने के लिए उद्यत राम के रूप का वर्णन। इसी रूप पर विमुग्ध होकर पुरवासियों ने सीता के लिए राम ही को योग्य वर अनुमानित किया था। (२) रगभूमि में अन्य राजाओं के सम्मुख राम की शोभा का वर्णन। ऐसा स्वयम्वर के वातावरण को राम के पक्ष में निर्देशित करने के लिए हुआ है और (३) बालक राम के रूप का वर्णन जिसपर काकभुशुण्डि मुग्ध हुए थे। यहाँ प्रथम और अन्तिम वर्णन भक्तों के मनोरजन के लिए है, शेष दो वहाँ के वातावरण में स्वाभाविकता भरने के लिए हैं।

अन्यत्र राम के रूप-वर्णन की आवश्यकता पड़ने पर कवि ने 'कोटि मनोजलजीवन हारे' आदि सदृश उक्तियों का सहारा लिया है। ग्रामवधू-प्रसग में तो दो बार—ते पितु मातु कहहु सखि कैसे, जिन्ह पठए बन बालक ऐसे—कहकर काम चलाया गया है। यहाँ 'ऐसे' शब्द से वही सौंदर्य व्यंजित होता है जो अन्यत्र विस्तृत वर्णनों से हुआ है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है राम के अतिरिक्त अन्य पात्रों के सांश्लिष्ट रूप-वर्णन का मानस में पूर्णत अभाव है। इसके पीछे तुलसीदास की धार्मिक भावना छिपी है। अन्य पात्रों के रूप-वर्णन के प्रसगों को तुलसीदास ने किस कौशल से टाला है और साथ ही यत्र-तत्र उनके रूप-वर्णन के नाम पर उत्खचित दो-चार रेखाओं के माध्यम से उन्होंने अपने मन्तव्य की कितनी सफल परिपूर्ति की है, इसे यहाँ सहज ही देखा जा सकता है।

बालकाड की तीन अर्द्धालियों एव एक दोहे में शिव के सौंदर्य का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन है। उन्हें, 'कुद इदु दर गौर सरीरा, भुज प्रलंब परिघन मुनि चीरा' आदि से विभूषित किया गया है। परन्तु ऐसा रूप-सौंदर्य-वर्णन की दृष्टि से नहीं अपितु पार्वती की शका का समाधान प्रस्तुत करने से पूर्व, 'अशिव वेषधारी' को शिव-रूप में परिवर्तित करने तथा 'दिगम्बर' को 'मुनि-चीर' पहनाकर भक्तों की पक्ति में बैठाने की दृष्टि से हुआ है, द्वितीय अध्याय में इस पर प्रकाश डाला जा चुका है।

जगज्जननी जानकी के रूप-वर्णन में भी कवि मर्यादावाद के आत्यतिक आग्रह के कारण असमर्थ रहा है। दो प्रसग ऐसे आए हैं—रंगभूमि पर आगमन एवं विवाह-मडप में गमन के प्रसग—जहाँ सीता के नख-शिख का वर्णन अपेक्षित था। परन्तु इन दोनों ही स्थानों पर कवि ने—'सिय सुन्दरता बरनि न जाई' कह कर छुट्टी पा ली है। जब इतने से काम नहीं चला है तो उन्होंने उनकी सुन्दरता का ऐन्द्रिय नहीं अपितु भावात्मक चित्र ही प्रस्तुत किया है—यथा;

> जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रुपमय कच्छप सोई॥
> *सोभा रजु मंदर सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥*

एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल,
तदपि सकोच समेत कबि कहहि सीय सम तूल ॥ बाल २४७ ॥

पर्वती के रूप-वर्णन में भी कवि ने यही युक्ति अपनाई है।

विवाह वर्णन :—मानस में शिव-पार्वती और राम-सीता के विवाह का वर्णन हुआ है। परन्तु राम के विवाह का गोस्वामी जी ने जितना विस्तृत, व्यावहारिक और ब्योरेवार वर्णन किया है, उतना हिन्दी साहित्य में कहीं भी नहीं हुआ है। यहाँ इसी का रसास्वादन अधिक उपयुक्त है।

बारात चलने के पूर्व उछाह होता है। इसका एक वर्णन यह है :—

जँह तँह जूथ-जूथ मिलि भामिनी, सजि नवसत सकल दुति दामिनी।

× × ×

गावहिं मगल मजुल बानी, सुनि कलरव कलकठि लजानी।

× × ×

गावहिं सुदरि मगल गीता, लै लै नाम राम अरु सीता।

× × ×

सजी बारात में हाथी घोड़ों आदि का इतना कोलाहल होता है कि किसी की बात सुनना कठिन हो जाता है :—

गरजहिं गजघंटा धुनि घोरा। रथ-रव बाजि हिंस चहुँ ओरा ॥
निदरि घनहिं घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना ॥

वरात निकलने के समय बारात देखने की उत्कटा से भरी स्त्रियों का अटारियों पर जमावड़ा और गीत गाना, भारतवर्ष का बहुत पुराना दृश्य है।

चढी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिए आरती मंगल थारी ॥
गॉवहिं गीत मनोहर नाना। अति आनन्दु न जाइ बखाना ॥

अयोध्या से चली हुई बारात जनकपुर में ही रुकती है, बीच के अनावश्यक वणनों में उलझने की नौबत नहीं आती है। वरात के पहुँचते ही जनकपुर से 'अगवान' आता है। कन्या-पक्ष वालों को आते देख बारात के लोग किस प्रकार से सजग और उत्साहित हो जाते हैं, इसका एक उदाहरण नगाड़ों के बजने से समझा जा सकता है,—

देखि बनाव सहित अगवाना, मुदित बरातिन्ह हने निसाना ॥

दूल्हे से ही बारात की शोभा होती है और दूल्हे के पहुँचने पर बराती किस प्रकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं इसकी एक झलक जनकपुर से राम के बारात में जाने पर प्राप्त होती है:—

रामहि देखि बरात जुडानी, प्रीति कि रीति न जात बखानी ॥

राम, खगराज को भी लज्जित करने वाले घोडे पर सवार होकर 'जनवाने' को चले। बारात को आती हुई जानकर कन्या-पक्ष से भी बाजे बजने लगे और सुहागिन स्त्रियाँ 'परछन' के लिए तैयार होने लगीं —

एहि भाँति जानि बरात आवत बाजते बहु बाजहीं।
रानि सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मगल साजहीं ॥

सुन्दर वर को देखकर 'सासु' को कितनी प्रसन्नता होती है, यह यहाँ स्पष्ट है,—

जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम वर वेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु ॥

मंडप में विवाह किस रीति से होता है, इसकी भी एक झाँकी देखिए:—

(१) कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मगल जल पूरे ॥
निज कर मुदित रायं अरु रानी। धरे राम के आगे आनी।
(२) पढ़हिं वेद मुनि मङ्गल बानी।
(३) वरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥
(४) वर कुअरि करतल जोरि साखोचारू दोउ कुल गुरु करें।
(५) करि लोक वेद बिधानु कन्यादानु नृप भूषण कियो ॥
(६) कुंअरु कुंअरि कल भावरि देहीं।
(७) (अंत में:) राम सिय सिर सेन्दुर देहीं।

स्त्रियों का वर को 'कोहबर' ले जाना और उन्हीं में से कुछ का दूल्हे को और कुछ का दुलही को 'लहकौरि' सिखाना, अत्यन्त मधुर और प्राचीन परम्परा है,—

(१) दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुन्दरी चलीं कोहबर ल्याइ के।
(२) लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं॥

जनक के यहाँ जेवनार का सरस वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने बरातियों को दी जानेवाली गाली को भी याद रक्खा है, यह दृश्य परम्परानुसार बड़ा ही मधुर होता है :—

जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरू नारी॥

विदा के पूर्व कन्या की माता द्वारा कन्या को वर को समर्पित करने का भी पुराना भावपूर्ण दृश्य देखिये :—

परिवार पुरजन मोहि राजहिं प्रानप्रिय सिय जानिकी।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥

इसके पश्चात 'बिदाई' का करुण-दृश्य प्रस्तुत करके गोस्वामी जी ने इस प्रसग को समाप्त कर दिया है। इस प्रसग की मार्मिकता और सरसता का एकमेव कारण यथार्थ-रूप का सजीव चित्रण ही है।

नगर-वर्णन—रामकथा तीन नगरों में चलती है अयोध्या, जनकपुरी, और लंका। अत इन तीनों नगरों का सुन्दर वर्णन मानस में हुआ है। अयोध्या एवं जनकपुर के नगर का वर्णन दो प्रकार का है—इनके प्रकृत रूप का और साज-सज्जायुक्त रूप का। लका के केवल प्रकृत रूप का ही वर्णन हुआ है। यहाँ तीनों के प्रकृत रूप का ही वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

जनकपुर—विश्वामित्र के साथ राम के जनकपुर पहुँचने पर बगीचों, सरोवरों, कुजों, बावलियों, पक्षियों, हाट, गढ, राजद्वार, और हाथी-घोड़ों से युक्त नगर की जिस सुषमा को देखकर राम हर्षित हुए वह यह है :—

वापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहगा॥

सुन्दर बाजार भी लगी है —

चारु बजारु बिचित्र अंबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सुधारी॥
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लैं नाना॥

नगर-हाट की सुख-समृद्धि की भाँति राजद्वार का ऐश्वर्य भी अपूर्व है :-

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला॥

× × ×

पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जँह तँह बिपुल महीपा॥
(बाल० २१२–२१३)

लंका का वर्णन—लंका में प्रवेश करते समय हनुमान जी ने लंका का यही रूप देखा था —

कनक कोट विचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारू पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि सच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।

× × ×

ऐश्वर्य रूपः बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥

भयंकर रूपः कहु माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।

× × ×

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहु दिसि रच्छहीं।
(सुन्दर का० ३)

अवधपुरी वर्णन—रामराज्य की स्थापना के बाद की अयोध्या का वर्णन बड़ा ही सुन्दर हुआ है। यहाँ नगर का वर्णन अपने समष्टि रूप में इतना पूर्ण है कि क्षण भर के लिए लगता है जैसे हम उस नगर के बीच ही में कहीं खड़े हों। मार्के की बात तो यह है कि इस वर्णन को पढ़कर हम नगर का चित्र ही नहीं भावित करते वरन उसी के माध्यम से वहाँ के निवासियों की रुचि-अरुचि, रहन-सहन और उनकी जीवन-दृष्टि की भी झाँकी पाते हैं। वस्तुतः इस प्रकार के वर्णन साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

जात रूप मनि रचित अँटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर। रचे कंगूरा रँग रँग बर॥
नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥

महि बहु रंग रचित गच काँचा । जो बिलोकि मुनिबर मनु नाचा ॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदक ॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहि ॥
मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची ।
मनि खम्भ भीति बिरंचि कनक मनि मरकत खची ॥
सुदर मनोहर मदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाई बहु बज्रन्हि खचे ॥
चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ।
राम चरित जे निरखि मुनि, ते मन लेहि चुराइ ॥

अब तनिक इस अवधपुरी की वाटिकाओं और उनमें विचरनेवाली पक्षियों की छटा देखिए—

सुमन बाटिका सबहि बनाई । बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥
लता ललित बहु जाति सुहाई । फूलहि सदा बसत की नाई ॥
गुञ्जत मधुकर मुखर मनोहर । मारूत त्रिविध सदा वह सुन्दर ॥
नाना खग बालकन्हि जिआए । बोलत मधुर उड़ात सुहाए ॥
मोर हस सारस पारावत । भवनन्हि पर सोभा अति पावत ॥
जहँ तँह देखहिं निज परछाहीं । बहुबिधि कूजहि नृत्य कराहीं ॥
सुक सारिका पढावहिं बालक । कहहु राम रघुपति जन पालक ॥
राज दुआर सकल बिधि चारू । बीथी चौहट रूचिर बजारू ॥

× × ×

सरयू की भी छटा देखिए :—

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर ।
बाधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहि तीर ॥ उ० का० २८ ॥
दूरि फराक रूचिर सों घाटा । जह जल पिवहिं बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ॥

× × ×

तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृन्द बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई ॥

'जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं' दिखाकर कवि ने वर्णन समाप्त कर दिया है।

युद्ध वर्णन—कहा जाता है कि तुलसीदास का युद्ध-वर्णन अधिक उपयुक्त नहीं किन्तु बात ऐसी नहीं है। खरदूषण और राम के युद्ध-वर्णन में मात्र छन्द बदलकर कवि ने अद्भुत प्रभाव की सृष्टि की है —

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल ॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले विसिख निसित निकाम ॥

× × ×

रिपु परम कोपेउ जानि। प्रभु धनुष सर सधानि ॥
छाँडे विपुल नाराच। लगे कटन विकट पिसाच ॥
भट कटत तन सत खड। पुनि उठत करि पापंड ॥
नभ उडत बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड ॥

युद्ध की विभीषिका प्रदर्शित करने के लिए भारतीय काव्यों में अतिप्रयुक्त नाग, शृगाल आदि की उपस्थिति भी है :—

खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल ॥

भीषणतम युद्ध तब होता है जब :—

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत अति माया घनी ॥ अर०१६ ॥

ठीक इसी प्रकार का और इसी छंद में राम और रावण के अंतिम युद्ध का वर्णन हुआ है। स्मरण रखना चाहिए कि युद्ध की भीषणता प्रदर्शित करने के लिए ही 'रावन रथी बिरथ रघुबीरा' की बात उठाई गई है और राम को रावण के शेल-प्रहार से मूर्छित दिखाया गया है। फिर, तुलसी का युद्ध वर्णन अशक्त कैसे।

प्रकृति वर्णन—रामकथा का अधिकांश विकास वनों, पर्वतों और नदियों के सन्निकट हुआ है और वह भी एक दो वर्ष नहीं, चौदह वर्ष। फिर भी मानस में वाल्मीकीय रामायण की भांति विशुद्ध प्रकृति के चित्र नहीं हैं। वस्तुतः तुलसी कवि नहीं, भक्त कवि थे, अत. प्रकृति के चित्र सदैव धर्म-तत्व

से युक्त होकर आए हैं। किष्किन्धाकाण्ड का शरद एव वर्षा-वर्णन तो स्पष्ट रूप से भागवत की पद्धति पर है। यहाँ प्रकृति-वर्णन निम्न रूपों में हैं :—

(१) ऋतु-वर्णन (वर्षा, शरद्, वसन्त)

(२) तड़ाग-वर्णन (पपा सरोवर)

(३) चित्रकूट-वर्णन (नदी, वन)

(४) सूर्योदय-वर्णन (बालकाण्ड में दो बार प्रभाव सृष्टि के लिए)

(५) चन्द्रोदय-वर्णन (बाल० का० में उद्दीपन-रूप में और लका में ऊहापोह के रूप में)

(६) सन्ध्या-वर्णन (बाल० का० में अयोध्या के अगरुधूमाच्छादित सौन्दर्य के लिए)

इनमें से पम्पासरोवर का वर्णन अधिक प्रकृत है। अतः यहाँ इसी की झाँकी दी जा रही है :—

सत हृदय जल निर्मल बारी, बाँधि घाट मनोहर चारी ॥

रूप-चित्र :

जहं तहं पिवहिं बिबिध मृग नीरा, जनु उदार गृहजाचक भीरा।
विकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जल कुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥

× × ×

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ॥

गंध-ग्रहण

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाउ। सतत बहइ मनोहर बाउ ॥

शब्द-ग्रहण

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि हरहीं ॥

यहाँ पर बिम्ब-ग्रहण बड़ा ही सफल हुआ है।

वस्तु-वर्णन का इतना दिग्दर्शन करा कर हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि प्राय प्रत्येक वर्णन किसी न किसी पात्र की आँखों से ही देखा

गया है, अतः आलम्बन-रूप में है और उनके पढ़ने से रसोद्रेक होता है। साथ ही वर्णन में मर्यादा का अत्यन्त ध्यान रक्खा गया है। इसीलिए ग्रन्थ की नायिका सीता तक के रूप का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं हुआ है। इन वर्णनों में धर्म-तत्त्व की अधिकता के कारण उपदेशात्मकता अधिक आ गई है, फिर भी, भक्त के लिए ये विशेष अनुरञ्जनकारी हैं, यही तुलसीदास की सफलता है।

पात्र द्वारा भाव-व्यञ्जनाः—

'स्लेटी कवियों' की भाँति गोस्वामी जी, मनोविकारों के नाम पर बुझौवल बुझाने वाले कवि न थे। उन्हें जीवन और जगत की सच्ची अनुभूति थी। सघात-संकुल जीवन के घात-प्रतिघात से वह परिचित थे। वह भलीभाँति जानते थे कि किस व्यक्ति का मर्मस्थल कहाँ है, उस पर कहाँ आघात हो रहा है और उसमें तद्जनित प्रतिक्रिया कैसी हो रही है। यही कारण है कि विभिन्न परिस्थितियों में पड़े व्यक्तियों की मूक व्यथा, उनके उल्लास, हास और रुदन का जैसा व्यावहारिक परिचय गोस्वामी जी ने 'मानस' में दिया है, वैसा भाषा के किसी अन्य कवि से आज तक सम्भव नहीं हो सका है। 'विकट वेष' वर को देखकर कन्या की माँ की दुश्चिन्तता से लेकर इच्छित वर को प्राप्त करने वाली राजकुमारी की मूक आतुरता, हित की बात कहने पर भी अपनी स्वामिनी द्वारा प्रताड़ित दासी की उदासीनता, प्राण-प्रिय पुत्र को वनवास देने के लिए बाध्य नृप की विवशता, निर्वासित राजकुमार एवं राजकुमारी को देखकर पुरजनों का शोक, कठोर वन-भूमि पर चलने वाले पदत्राण रहित सुकुमार राज-सन्तति को देखकर ग्रामवासियों का क्षोभ, प्राण-प्रिय भाई के निर्वासन का कारण बनने वाले दूसरे भाई की आत्मग्लानि; वन में बसे स्वामी की सेवा के लिए कोलकिरातों की आतुरता आदि का जैसा चित्रण मानस में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

योग्य वर के साथ कन्या के विवाह की चिन्ता माँ को स्वभावतः अधिक होती है। इसीलिए नारद के वचन को न समझ सकने के कारण मैना ने अपने पतिदेव—गिरिराज से कहा था :—

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउँ कुँआरी। कन्त उमा मम प्रान पिआरी॥

उचित वर के साथ कन्या के विवाह के लिए वह पति को प्ररोचना भी देती है —

जौ न मिलहिं बर गिरिजहिं जोगू। गिरि जड़ सहज कहहिं सब लोगू॥

विवाह निश्चित हो जाता है। बारात आती है और उल्लसित हृदय से मैना सखियों के साथ, आरती लेकर मङ्गलगान गाती हुई जाती है। पर देखती किसे है—'बर बौराह बरद असवारा' को।

विकट वेषधारी और वृषभारूढ वर का स्वागत करने के बजाय मैना की भयभीत सखियाँ भागने लगती हैं। उस समय मैना की कैसी अवस्था रही होगी, समझने की चीज है। मुसीबत में पड़ा अपना प्रिय उस समय और भी प्रिय लगने लगता है। आसन्न आपत्ति के लिए एकदम अयोग्य उस प्रिय के रूप, स्वभाव आदि की स्मृति मात्र से दु ख और भी बढ जाता है। यही बात मैना के साथ भी थी।

मैना हृदय भयउ दुख भारी। लीन्हीं बोलि गिरीस कुमारी॥
अधिक सनेह गोंद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहि बिधि तुम्हहि रूप अस दीन्हा। तेहि जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

वह निश्चय करती है :—

तुम्ह सहित गिरितें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं॥
घरु जाउ अपजस होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

किन्तु इस निश्चय में किसी प्रकार की धृष्टता अथवा उच्छृङ्खलता नहीं अपितु अपनी सन्तति के कल्याणार्थ प्राणों की आहुति दे देने का आत्मबल है। इस कार्य के लिए उत्तरदायी नारद के प्रति एक ही साथ वह क्षोभ, उलाहना और अपनी हीनता के स्वर में कहती है कि :—

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥

अत में सतुष्ट होकर यही मैना, शंकर से याचना करती है।

नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु॥
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥

पार्वती को भी समझाती हैं :—

करेहु सदा संकर पद-पूजा। नारि धरमु पतिदेव न दूजा॥

आदि से लेकर अन्त तक मैना के प्रत्येक शब्द मैना के ही नहीं, इस परिस्थिति में पड़ी प्रत्येक कन्या की माँ के हैं, चाहे वह विप्रकुल की हो अथवा शूद्र कुल की।

विवाह के पूर्व सीता की मनोदशाओं का चित्रण भी ठीक इसी प्रकार हुआ है। यहाँ सीता, जगज्जननी के रूप में नहीं वरन् इच्छित पति को प्राप्त करने के लिए आतुर—पर मूक, उस भारतीय कन्या के रूप में है जिसकी इच्छाओं और लालसाओं का अमित वेग झुकी पलकों को उठाने में असमर्थ है, जिसके भीतर का तूफान उमड़ता तो है पर घुटकर भीतर ही रह जाता है। कल्पना कीजिए उस कन्या की, जिसका कल ही स्वयंवर होने वाला है। उसे इच्छित वर प्राप्त होने का वरदान है, पर अब तक कोई नयन-कपाट में बन्द होने लायक मिला ही नहीं। अपने रूप की मोहनी डालने वाला एक राजकुमार पहुँचता है। अतः इस कन्या का उस पुरुष को देखना स्वाभाविक ही है—क्यों? हो सकता है कि इसी के माध्यम से नारद का वचन ही सफल हो जाय :—

सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत॥
चकित बिलोकति सकल दिसि जनुसिसु मृगी सभीत॥

देखना क्या होता है कि वह आँखों में बस भी जाता है। अब प्रश्न है, वह प्राप्त कैसे हो? नारद का वचन तो अवश्य है, पर उसका भरोसा ही क्या! अत वह गौरी के मन्दिर में जाकर इसके लिए प्रार्थना करती है। वरदान भी मिलता है, फिर भी धनुष उठाने के लिए उद्यत राजाओं को देखकर सीता के हृदय की गति कैसी रही होगी, इसे तुलसी भी न वर्णन कर सके। लाख आश्वासन और निश्चय के बावजूद भी अति अभिप्सित वस्तु की सम्प्राप्ति में कितनी आशंका होती है, इसे सभी जानते हैं। फिर सीता ही कैसे बचती! धनुष उठाने में एक-एक करके सभी राजा असफल होते गए। अच्छा हुआ। पर! पिता जनक निराश हो गए, पुरजन परिजन भी! यह क्या!

लक्ष्मण कुपित हुए। ढाढस हुआ। राम धनुष उठाने के लिए बढे। पर राम धनुष उठा ही लेंगे—इसका क्या भरोसा! तब? यहाँ दो ही रास्ता था—या तो अपने प्रिय को प्राप्त करना या आजन्म कुँवारी रहना। प्रश्न टेढा था। सीता का हृदय उद्वेलित हो गया—इसे ही तुलसीदास ने पकड़ने का प्रयत्न किया है। वह किसी एक देवता को स्थिर रूप से मना भी नहीं पाती है, जिसका नाम आ जाता है उसी को मनाने लगती है। यहाँ आशका की पराकाष्ठा है—

तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥

भवानी को भी स्मरण करती है :—

मन ही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥

आज ही वह गणेश की सेवा का भी मूल्य चुका लेना चाहती है। अतः उन्हें स्मरण कराती है कि :—

गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुन मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

अपने प्रिय को वह जितना ही देखती है उतना ही देवताओं को मनाती है। यहाँ उसकी प्रिय विषयक एकनिष्ठता, प्रिय को प्राप्त न करने की आशका परवशता सब कुछ व्यजित है :—

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥

पहले का 'मनाव जेहि तेही' और यहाँ का 'मनाव धरि धीर' कितन मनोवैज्ञानिक है।

पिता के ऊपर खीझ आती है—'अहह तात दारुन हठ ठानी'। मन्त्रि के दब्बूपन पर भी झल्लाती है—'सचिव सभय सिख देइ न कोई' उसे निश्च हो जाता है कि 'सिरिस सुमन किमि बेधिय हीरा'। अन्त में जिससे हानि आशका है उसी पर सब कुछ छोड़ देती है—'सभु चाप गति तोरी'। वह व है, पर आर्त्त में इतनी समझ कहाँ! यही है विह्लता!

अपनी व्याकुलता पर वह स्वय लज्जित हो जाती है। अब क्या व मनौती भी तो समाप्त हो गई। प्रतीति का नया रास्ता सामने आया—

जेहि के जोहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू॥

सीता की ही नहीं, अनिष्ट वस्तु पर विश्वास न करने वाले प्रत्येक प्राणी की यही युक्ति है।

इसीको कहते हैं हृदय का कोना-कोना झाँकना।
अब यहाँ भरत की आत्म-ग्लानि और मथरा का त्रिया चरित्र दिखाकर यह प्रसंग समाप्त कर देना ठीक है। इसीके आधार पर अन्य की भी परीक्षा की जा सकती है।

प्रथमतः मथरा को उसी बात पर प्रताड़ित करने के पश्चात् कैकेयी ने जब उससे पुनः यह पूछा होगा कि :—

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहिं सुनाउ॥

तब उस मंथरा के हृदय में किस प्रकार के भाव उठे होंगे, यहाँ इसे ही देखना है। वह कहती है :—

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोग कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेउ लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥

भलाई करने के लिए किए गए अपने ही कार्य की निन्दा करके प्रतीति उत्पन्न करने की क्या ही नयी युक्ति है! यही नहीं अपने कर्म का दोष दिखा कर अपने प्रति दया उत्पन्न करने और अपनी निश्छलता सिद्ध करने का भी ढङ्ग अनोखा है :—

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी॥

रानी का अनभल न देख सकने की बात उठाकर जहाँ वह सिद्ध करना चाहती है कि कोई महान अनिष्ट होने जा रहा है वहाँ कही हुई बात के लिए क्षमा-याचना करके और अधिक उत्सुकता बढ़ाने की भी चाल चल रही है।

जारै जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिय देबि बड़ि चूक हमारी॥

कही जाने वाली बात के प्रति प्रतीति, अपने प्रति विश्वास और बात सुनने के लिए अत्यत उत्सुकता उत्पन्न करने के बाद तब वह कहती है,—

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥

इसके बाद वह जो कहना चाहती है उसे कहती है और रानी से तदनुकूल करवाती है। ये हैं एक ही समय और एक ही भाव के अन्तर्गत उठी हुई नाना मनोदशाएँ, जिन्हें पकड़ने में मनोविज्ञान के उस्ताद भी फेल हो सकते हैं। त्रिया चरित्र का इससे उत्कृष्ट वर्णन असंभव है। यहाँ तो बस संस्कृत की उस उक्ति की याद आती है कि,—

"स्त्रियश् चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः"।

पिता की मृत्यु और भाई के वनवास का अनजान में कारण बनने वाले भाई की मानसिक अवस्था किस प्रकार की हो सकती है, यदि इसे प्रत्यक्ष रूप में देखना हो तो गोस्वामी जी के भरत को देखा जाय। उनके हृदय में आग लगी है कि,—

को त्रिभुवन मों सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुकुल-केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहिं भयउँ बेनु-बन आगी। दुसह-दाह-दुख-दूषन-भागी॥

'अहं' को तिरस्कृत करके अपने को 'धिग' कहने का भाव शुद्ध सात्विक अन्तःकरण में ही उदय होता है, यही आत्मग्लानि का पहला चरण है। यह मानसिक शैथिल्य या तो अपनी बुराई का अनुभव आप करने से होता है अथवा लोक में अपने को किसी बुरे प्रसंग से अनायास संबधित देखकर हीनता का अनुभव करने से। भरत की आत्मग्लानि दूसरे ढंग की है, अतः अधिक सच्ची और तीव्र है। उनके लिए तो बल्कि यह अच्छा था कि,—

जौं पै कुरुचि रही अति तोहीं। जनमत काहे न मारेसि मोहीं॥

तभी पूत हृदय से वह माता के लिए उन कटु शब्दों का प्रयोग भी कर सकते हैं जो जगत में लोक-धर्म का संस्थापक बन सके।

जब तें कुमति ! कुमत जियँ ठयऊ । खण्ड खण्ड होइ हृदय न गयऊ ॥
बर माँगत मन भई न पीरा । गरी न जीह मुँह परेउ न कीरा ॥

राम की माता कौशल्या के सामने वह जिस निश्छल हृदय से अपनी सफाई देते हैं, वह धन्य है :—

जे अघ मातु, पिता, सुत मारे । गाय-गोठ महिसुर-पुर जारे ॥
जे अघ तिय-बालक बध कीन्हे । मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥
जे पातक उपपातक अहहीं । करम-बचन-मन भव कवि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता । जौं एहु होइ मोर मत माता ॥

शुक्ल जी ने लिखा है कि 'इस सफाई के सामने हजारों वकीलों की सफाई कुछ नहीं है, इन कसमों के सामने लाखों कसमें कुछ नहीं हैं ।'[१]

सबके लाख कहने पर भी वह राज्य लेना इसलिए स्वीकार नहीं करते हैं कि ऐसे पापी के राज्यारोहण से पृथ्वी ही रसातल को चली जायगी,—

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू । चहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं । रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

इसी का परिणाम है कि चित्रकूट जाते समय, रथ छोड़कर पैदल जाना ही उचित नहीं समझते बल्कि उचित तो इसे समझते हैं कि—'सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा' । फिर भी इस पुनीत हृदय में विश्वास है कि, 'आपुन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुबीर भरोस' ।

परन्तु भावों की यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म परख और व्यापक क्षेत्र से इनका चयन ग्रन्थ के पूर्वार्ध—अयोध्याकाण्ड—तक ही है । इसके पश्चात उत्तरार्द्ध में भक्त कवि का ध्यान आराध्य देव राम पर अधिकाधिक एकाग्र होता गया है । अतः भावों के आरोह-अवरोह को देखने के लिए उसके पास पर्याप्त अवकाश न रहा । यहाँ से दो ही प्रकार के पात्र सामने आते हैं—भक्त और दुष्ट । भक्तों की इच्छाएँ, उनके कार्य आदि सब कुछ, प्रकारान्तर से, एक ही प्रकार के हैं—चाहे वह अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य हों, चाहे शबरी, कबंध, हनुमान, सुग्रीव, बालि, विभीषण, शुक-सारण, मन्दोदरी आदि हों । प्रतिनायक

[१]—आचार्य शुक्ल—गो० तु०, पृ० ६८ ।

को उपेक्षित दृष्टि से देखने के कारण उस पक्ष के पात्रों का हृदय टटोलना अनावश्यक ही रहा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उत्तरार्द्ध भाग में हृदय का स्पन्दन ही नहीं है—है, पर भक्ति के मुलम्मे के भीतर वह एक निश्चित परिपाटी पर व्यक्त हुआ है, अतः विशिष्टता कम है। यही भक्ति-भावना की दृढता के लिए उपयोगी भी था।

अब तक तो विभिन्न परिस्थितियों में पड़े अनेकानेक पात्रों में उमड़ने वाले भावों की पकड़ और उन्हें व्यक्त करने के लिए अपेक्षित गोस्वामी जी की सामर्थ्य की जाँच हुई। इसके बाद अब देखना है कि भाव कितने उत्कर्ष तक पहुँचे हैं।

भाव-शोधनः—मानस में दाम्पत्य प्रेम का आदर्श स्वरूप उपस्थित हुआ है। जनकपुर की वाटिका में प्रस्फुटित होने वाला यह उत्कट प्रेम, जीवन की प्रत्येक घड़ी में यथावत बना रहता है, इसमें किसी प्रकार की खोंच नहीं लगने पाती। इसमें कहीं भी हास-विलास की उच्छृखलता अथवा राधा-कृष्ण के प्रेम की-सी ऐकान्तिकता का सन्निवेश नहीं होने पाता। सर्वत्र आदर्श हिन्दू गृहपति और गृहिणी के स्वस्थ प्रेम का प्रवाह प्रवाहित होता है। पति को वनवास हो जाता है, फिर पत्नी ही कैसे महल में रहे, चाहे—'पलग पीठतजि गोद हिंडोरा' उसने कठोर अवनि पर पैर भी न रक्खा हो। पतिदेव उसको समझाते हैं—

पर भारतीय ललना के लिए तो बस—

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे॥

उसके लिए तो जब प्रिय साथ है तो फिर कोई भी कष्ट नहीं है। प्रिय की सेवा में ही उसे चरम सुख है—

मोहि मग चलत न होइहिं हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाय परवारि बैठि तरू छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥
सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहिं सब निसि दासी॥

वस्तुतः सुख एक मानसिक कल्पना ही तो है। तभी फूलों की सेज पर दुए

और कठोर भूमि की शय्या पर सुखोपलब्धि देखी जाती है। सीता को भी जगल में मगल ही होता है—

नाह-नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय-मन राम-चरन-अनुरागा। अवध-सहस-सम वन प्रिय लागा॥

मार्ग में चलते समय कुलवधू सीता के 'ब्रीड़ा' की परीक्षा भी हो जाती है। ग्रामवधुएँ पूछती हैं कि 'ये तुम्हारे कौन हैं?' सीता 'संकोच' में पड़ जाती हैं। पति को मुख खोलकर बताना भी नहीं ठीक और न बताना भी नहीं ठीक। उसने प्रत्येक भारतीय ललना की भाँति एक नई युक्ति ही अपनाई। देखिये—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। ओहि लपन लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन-बिधु अंचल ढाँकी। पिय-तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि॥

यहाँ गृहिणी की मर्यादा की रक्षा और पति विषयक उसके अनुराग का प्रदर्शन दोनों ही हो जाता है। ग्रामवधुओं के बीच में रहने और चेष्टा के 'हाव' न होकर 'अनुभाव' होने से आदर्श की पूर्णतः रक्षा हुई है।

सीता-हरण के पश्चात् प्रेम-परिपाक का उपयुक्त अवसर उपस्थित हो जाता है। किन्तु भक्ति भावना के आधिक्य के कारण, यहाँ जीवन का यथार्थ चित्र कम आ पाया है। राम विलाप करते हैं, पर यहाँ अधिक से अधिक नारद की भाँति इस आधार पर भक्ति-रस की ही निष्पत्ति होती है कि भला भगवान को भक्तों के लिए इतना कष्ट सहना पड़ रहा है! इसे द्वितीय श्रेणी की रस-दशा कह सकते हैं।[1] सीता भी वास्तविक सीता न होकर माया सीता हैं फिर भी वह जीवन के अधिक निकट है; इसीलिए अधिक सजीव है। रावण द्वारा ग्रसित होकर वह कहती है—

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिन जिवि करहि निदाना॥

हनुमान के सामने वह अपने वियोग-जनित दुख की व्यंजना उसी प्रकार से करती है जिस प्रकार से एक माता अपने पुत्र के सामने करती है। वह अकेले राम का नहीं, वरन् अनुज सहित राम का कुशल पूछती है। फिर कहती है—

१—तुलनीय आचार्य शुक्ल, चिन्तामणि, भाग १ पृ०, २३१।

कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि! केहि हेतु धरी निठुराई॥
सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुंक सुरति करत रघुनायक॥

कहा जाता है कि सीता, पत्नी की अपेक्षा दासी अधिक है।" ठीक है, पर यह तो भारतीय नारी का स्वभाव है जिसकी व्यंजना कामायनीकार ने इस प्रकार की है—

इस अर्पण में कुछ और नहीं।
केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।

(कामायनी, लज्जा सर्ग)

'शोक' का चित्रण भी गोस्वामी जी ने अच्छा किया है। मानस में शोक के दो स्थल हैं—एक तो अयोध्या में राम-वनगमन का प्रसंग और दूसरा लक्ष्मण-शक्ति का प्रसंग। अभिषेक के समय वनवास एक हृदयद्रावक घटना है। तभी—

राम चलत अति भयेउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरतनादू॥

यहाँ राम की दुख-दशा का अनुमान करके 'शोक' और बिछुड़ने के कारण 'वियोग', दोनों ही है। 'शोक' की अभिव्यक्ति इन वाक्यों में हुई है।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ॥
ते वन वसहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस सहि छाती॥
राम सुना दुख कान न काऊ। जीवन-तरु जिमि जोगवइ राऊ॥
ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद-मूल-फल फूल अहारी॥

इसी शोक में दशरथ की मृत्यु हो जाती है और करुण रस की वेगवती धारा में सारी अयोध्या डूब जाती है—

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुं कालराति अँधियारी॥
घोर-जन्तु-सम पुरनरनारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥

× × ×

करि विलाप सब रोवहि रानी। महाविपति किमि जाइ बखानी॥

दूसरा करुण दृश्य लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप है। यहाँ

राम के नारायणत्व पर आँच पड़ने के भय से करुण रस का समुचित विस्तार नहीं होने पाया है। वह कहते हैं —

ममहित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता ॥

× × ×

जैहउँ अवध कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई ॥

जिस माता ने राम को हित समझकर लक्ष्मण को सौंपा था, उसे क्या उत्तर दिया जायगा ! विह्वल राम कहते हैं:—

जौ जनतेऊँ वन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ॥

इस शोक में राम की ब्रह्म-लीला की नहीं, ललित नर लीला की विवृत्ति हुई है, अतः रसमय है।

मानस में युद्ध और 'उत्साह' की उपयुक्त योजना सुन्दरकाण्ड एवं लंकाकाण्ड में हुई है, परन्तु उतनी नहीं, जितनी कि वाल्मीकीय रामायण में है। एक वीरकाव्य है जबकि दूसरा भक्तिकाव्य। इसीलिये मानस में कितने ही शुद्ध वीरता के प्रसंग हटा दिए गए हैं—ताड़का सुबाहु-बध, और कितने ही भक्तिरस के साधक वीर भाव के प्रसंग जोड़ लिये गए हैं; यथा भरत को शंकित दृष्टि से देखकर निषाद की युद्ध की तैयारी। ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में विशुद्ध 'उत्साह' की व्यंजना केवल यहीं हुई है। निषाद सोचता है कि;—

जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥

अतः निश्चय करता है,—

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतर न देऊँ ॥

उसे मरने में भी सुख है,—

स्वामि काज करिहउं रन रारी। जस धवलिहउ भुवन दस चारी ॥
तजउं प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहुँ हाथ मुद मोदक मोरें ॥

तभी तो, सभी निषादों को उत्साहित करके उत्साहपूर्वक तैयारी करने लगा :—

सुमिरि राम पद-पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ॥
अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥

उत्साह की पराकाष्ठा तब होती है जब मरने-मारने के लिए उद्यत निषाद-गण कहते हैं;—

जीवत पाउँ न पाछें धरहीं। रुण्ड मुण्डमय मेदिनि करहीं॥

भगवान के लिए भक्त के उत्सर्ग को व्यक्त करने के लिए ही यहाँ गोस्वामी जी ने जमकर लेखनी चलाई है।

रौद्र रस का अत्यंत संक्षेप में एक वर्णन यह है :—

माषे लषन कुटिल भई भौंहें। रद-पट फरकत नयन रिसौहें॥
रघुबंसिन मंह जंह कोउ होऊ। तेहि समाज अस कहै न कोऊ॥

यहाँ 'रिसौहैं' शब्द में 'स्वशब्दवाच्यत्व' दोष देखा जा सकता है, परन्तु यह शब्द विशेषण के ही रूप में प्रयुक्त है, भाव-बोध के निमित्त नहीं। अतः त्रुटि नहीं हैं।

मानस में लक्ष्मण का जनकपुर एवं चित्रकूट दोनों ही स्थलों का 'वीरभाव' न तो शुद्ध रूप से वीर रस के ही अन्तर्गत आता है और न रौद्र रस के ही अन्तर्गत। कारण, वीर रस का मूल भाव 'उत्साह' जहा आनन्द की कोटि में आता है वहाँ रौद्र रस का मूलभाव 'क्रोध' दुख की कोटि में। लक्ष्मण के वचन में कार्य के विरुद्ध क्रोध भी है और रामचन्द्र की हितरक्षा के लिए कुछ भी कर देने का हौसला भी है। अतः दोनों ही प्रसगों में वीर-रस एव रौद्र रस की अन्विति हो गई है।

मानस का कथानक 'हास्य रस' के एकदम युपयुक्त नहीं है, फिर भी जीवन के सभी अङ्गों का स्पर्श करने वाले गोस्वामी जी ने प्रस्तावना-भाग में इसका एक अत्यन्त शिष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। यह नारद का प्रसङ्ग है। वह बन्दर का मुख लेकर राजकुमारी को मुग्ध करने बैठे हैं। उनकी दशा का एक उदाहरण देखिए :—

काहु न लखा सो चरित बिसेखा। सो सरूप नृपकन्या देखा॥
मर्कट वदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हरगन मुसुकाहीं॥

राम में देवत्व स्थापन के कारण अद्भुत रस की सृष्टि पर्याप्त हुई है। कहीं 'इहाँ उहाँ दुइ बालक' की बात है तो कहीं 'देत चापु आपुहिं चढ़ि गयऊ' है।

कवितावली की भाँति मानस में 'भयानक' और 'वीभत्स रस' का विस्तृत वर्णन तो नहीं है किन्तु लङ्काकाण्ड में इसके पर्याप्त छींटे मिलते हैं, देखिए—

भयानक रस—

बोल्लहिं जो जय जय मुण्ड रुण्ड प्रचण्ड सिर बिनु ध्यावहीं ॥
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥

(लंका० ८७)

वीभत्स रस —*काक कंक लै भुजा उड़ाहीं । एक ते छीनि एक लै खाहीं ॥*

× × ×

खैंचहिं गीध आँत तट भए । जनु बंसी खेलत चित दए ॥

(लंका० ८७-१, ३)

'भक्ति रस' मानस का मुख्य रस है। अन्य रस अंगी रूप में आए हैं। मानस की कथा के सभी प्रसंग, सभी पात्र और समूची रस-योजना भक्ति-भावना से नियन्त्रित हैं। देखने में स्वतन्त्र लगने वाले भाव भी—यथा दशरथ की परवशता और मृत्यु, भरत की आत्म-ग्लानि और चित्रकूट-गमन, ग्रामवासियों की परदुःखकातरता और लोचन-लाभ आदि—वस्तुतः स्वतन्त्र न होकर दास्य-भक्ति के पोषक हैं। अतः यहाँ कथा के सरस प्रसंगों पर न उलझ कर केवल उन प्रसगों को देखना है जिन्हें महाकाव्य की दृष्टि से अनावश्यक और नीरस कहा जा सकता है। ऐसे स्थल ३ प्रकार के हैं—(१) कोरे उपदेश (२) भक्तों की रीझ-खीझ और (३) स्तवन। यहाँ इन पर ही विचार करना है।

महापराक्रमी रावण के सम्मुख राम को रथ-विहीन देखकर भक्त विभीषण को चिन्ता होती है। वह राम से विनय करते हैं :—

नाथ न रथ नहिं तन पदत्राना । केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥

उन्हें राम समझाते हैं :—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका । सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥

आदि शक्ति सीता को साधारण मनुष्य-रावण उठा ले, यह कैसे सभव ! तुलसी-दास की इस सतर्कता का पता तब चलता है जब शक्ति लगने पर लक्ष्मण को मेघनाथ उठाता है और उठा नहीं पाता । साथ ही कहियत भिन्न न भिन्न के कारण भी सीताहरण और सीता निर्वासन असभव रहा । माया ब्रह्म से पृथक कैसे ! यदि पृथक हो भी तो ब्रह्म निश्चेष्ट हो जाय । सीता-हरण के पश्चात् भी इसी तथ्य के आग्रह के कारण सती को राम और सीता साथ-साथ दिखाई पड़े हैं और यहाँ भी सीता राम से पृथक नहीं हुई है ।

कथा के आरम में पार्वती द्वारा राम के निज लोक गमन की कथा पूछी जाने पर भी उसका उल्लेख न होना ग्र थ के उद्देश्य की सगति में है [१] । कृष्ण की भाँति राम, अयोध्या, सरजू आदि नित्य हैं, इसका सकेत काकभुशुंडि के मुख से हुआ है ।

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊं । सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊं ॥
(उत्तर० ११३-६, ७)

तब फिर गमन कैसा !

पूर्वजन्म में मनु एव शतरूपा द्वारा भगवान से वात्सल्य भाव की प्रीति का वरदान दशरथ एव कौशल्या के जीवन में सदैव पूरा होता रहा । मरणोपरात रावण-वध के पश्चात् राम के सम्मुख दशरथ की उपस्थिति दिखाकर तथा लका से रामागमन पर कौशल्या द्वारा निम्न शंका प्रकट कराकर कवि ने इसीका सकेत किया है । यह शका इसलिए महत्वपूर्ण है कि मानस के प्रायः प्रत्येक पात्र के लिए राम ब्रह्म हैं पर कौशल्या के लिए तो मात्र राम हैं । तभी—

हृदयं बिचारति बारहिं बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ॥

इसी प्रकार बालकाड के नारद-विवाह के कारण को अरण्यकाण्ड के अंत में राम द्वारा स्पष्ट कराना एव पूर्व मनौती के अनुसार लौटते समय सीता द्वारा गगा की पूजा आदि दिखाना उपरोक्त तथ्य के ही सकेतक हैं ।

१—बहुत से विद्वान इसे तुलसीदास की त्रुटि मानते हैं ।

असंगतियाँ

मानस में असंगतियाँ भी कम नहीं हैं। इन्हें निम्न प्रकार से गिना जा सकता है।

(१) नामी से बढ़कर नाम-माहात्म्य के वर्णन में क्रम-भंग है। 'तापस तिय तारी' के पश्चात् ताड़का की सेना एवं सुबाहु की मृत्यु वर्णित है। रामदास गौड़ ने तो भव-चाप भंजन के पश्चात दंडक वन के प्रसंग के आने पर भी आपत्ति की है।[1] ॥ बाल० का० २३-२, ४॥

(१) पार्वती ने शिव से राम के निजलोक गमन तक प्रसंग पूछा था। पर वह छोड़ दिया गया है जबकि अन्य का वर्णन किया गया है॥ बा० कां० ११०॥

(३) रामावतार के निमित्त आकाशवाणी में कश्यप एवं अदिति के वरदान का उल्लेख है जबकि होना चाहिए मनु एवं शतरूपा के वरदान का। ॥ बा० का० १८६-२॥ कारण यह है कि मानस में मनु-शतरूपा के वरदान की ही विस्तृत विवृत्ति हुई है—कश्यप अदिति के वरदान की तो सूचना मात्र दी गई है।

(४) राजा जनक ने यदि राम को पहचान लिया था। बा० कां० २१५-१-४। तो फिर सभा में वे अनादर-सूचक वचन क्यों बोले?

(५) गंगा-तट पर जानकी ने सुमंत से बहुत कुछ कहा था पर दशरथ के सामने उन्होंने उनके कुछ न कहने और कंठ के अवरुद्ध होने की बात कही है। ॥ अयो० १५२॥

(६) जानकी ने मार्ग में अनेक सेवाएँ करने की बात कहा था—'सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं, मारग जनित सकल स्रम हरिहौं' आदि आदि पर उसमें से एक का भी वर्णन नहीं हुआ है।

(७) निषाद यमुना-तीर से लौट गया था पर भरत यात्रा के समय राम के आवास स्थल का इस प्रकार वर्णन करता है जैसे वह पहले आया हो। (अयो० कां० २३६-१-४) यदि आया था तो कब? इसका उल्लेख नहीं है।

१—रामदास गौड़-रामचरितमानस की भूमिका, पृ० ५१। १९८०।

(८) स्वैरचारिणी शूर्पणखा के मुख से वैष्णवों की भाँति रावण को 'हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा' का उपदेश देना पूर्णत असगत है (अरण्य० २०–४, ५)

(९) गृद्धराज के मुख से रावण द्वारा सीताहरण की बात जानने के बाद भी सीता की खोज का प्रयत्न ठीक नहीं है।

(१०) गृद्धराज परमधाम गया जबकि दशरथ स्वर्गपुर ही गए तब फिर उससे पिता से सदेश न कहने का आग्रह कैसा ? (अरण्य० ३१) क्या रास्ता एक ही है ?

(११) कालनेमि ने यदि मायामय सर बनाया था तो उसमें मकड़ी कैसे आ गई ?

(१२) राम को सर्वदा ईश्वर मानने वाले विभीषण द्वारा राम को विरथी देखकर उनकी विजय पर शका करना जँचता नहीं है।

(१३) राम को परब्रह्म मानकर उनके दर्शन के लिए उद्यत कुम्भकर्ण जब मदिरापान से प्रमत्त होकर उनके विरुद्ध युद्ध करने चला तब उसने विभीषण के कार्य की और राम-भक्ति की प्रशसा क्यों की ? यदि उसमें इतना विवेक था तो फिर उसने युद्ध ही क्यों किया ? इसका उत्तर उसी के मुख से दिलाया गया है कि—"कालवश होने के कारण मुझे अपना-पराया नहीं सूझ रहा है। अत तुम (विभीषण) जाओ।" (लका० ६४) परन्तु इस ढंग की उक्ति तो स्वयं विवेकजन्य लगती है। अत कुम्भकर्ण की कथनी एव करनी में विशेष साम्य नहीं हो पाया है।

(१४) नारद-मोह-प्रसग में शाप विष्णु को दिया गया था। नारद-शाप को सत्य करने के लिए अवतार भी हुआ, फिर राम को क्यों 'विधि हरि शभु नचावन हारे' कहा गया और क्यों उनके एक एक रोम में करोड़ों विष्णुओं का वास बताया गया ? इसक उत्तर प्रसिद्ध-कथा-वाचक जयराम दास 'दीन' ने[1] यह कहकर दिया है कि जहाँ 'हरि' शब्द अकेले आता है वहाँ उसका अर्थ परब्रह्म होता है और जहाँ अन्य देवों के साथ आता है वहाँ उसका अर्थ विष्णु होता है ? परन्तु यह तर्क दूर तक नहीं चलता। इस नारद-प्रसग में 'हरि' ही

१—जयरामदास 'दीन'—मानस–रहस्य पृ० ५२, पष्ट स० ।

नहीं रमारमन, लक्ष्मीपति, क्षीरसागर शयनं, आदि शब्द भी आए हैं जो स्पष्टतः विष्णु के ही वाचक हैं।

फिर भी यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इन थोड़ी सी असंगतियों के कारण कथा की स्वाभाविकता में विशेष व्यवधान नहीं पड़ता है। अधिकांश त्रुटियाँ भक्ति के आवेग अथवा भावों के सहज आग्रह के कारण ही आ गई हैं। अतः यहाँ त्रुटियाँ ही गुण हैं।

मानस का उपसंहार

मानस के आदि और अन्त का भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'बाल का आदि और 'उत्तर का अंत' सतों में विशेष प्रसिद्ध है। प्रस्तावना भाग की ही भाँति मानस का उपसंहार भी विशेष कलात्मक है। एक ओर जहाँ इसमें 'तिर्यक रामायण' की व्यवस्था है वहाँ दूसरी ओर स्वानुभूतिमूलक काक-दर्शन का प्रतिपादन और रामभक्ति का प्रचार भी है।

मानस का उपसंहार स्पष्टतः दोनों ही आधार-ग्रन्थों—रामायण और अध्यात्म-रामायण से भिन्न, शुद्ध पौराणिक शैली के अनुसार है। इसकी प्रणाली इतनी स्वाभाविक एव व्यावहारिक है कि दार्शनिक कथन भी सरल और आकर्षक हो गए हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में शिव जी काकभुशु डि एव गरुड़संवाद के द्वारा गर्वता का समाधान करते हैं। स्वभावत जिज्ञासा उद्बुद्ध होती है कि ज्ञानियों और जीवन्मुक्त प्राणियों के लिए भी दुर्लभ रामभक्ति कौवे को किस प्रकार प्राप्त हो सकी, उसने किस कारण काक-शरीर धारण किया और किस प्रकार इस संवाद को उससे शिव ने सुना? इसीके समाधान के लिए गरुड़-मोह का प्रसंग उठाकर इसका उत्तर स्वय काकभुशु डि के मुख से प्रस्तुत किया गया है। इससे जहाँ एक ओर जिज्ञासा की शांति तथा शंभु द्वारा कही गई कथा पर छाप की 'सही' होती है वहाँ दूसरी ओर इसी माध्यम से कथा की वंछित विवृत्ति भी हो जाती है।

इसके अतिरिक्त दो अन्य उद्देश्यों की भी प्राप्ति होती है—एक है राम का परतत्व सिद्ध करना और दूसरा है भक्त एवं भक्ति का माहात्म्य प्रदर्शित करना। दोनों ही की पूर्ति काकभुशुण्डि के 'निज अनुभव' के आधार पर हुई

है, अत अधिक विश्वसनीय है। गरुड़ की शका का नारद, ब्रह्मा और स्वय शिव द्वारा समाधान न करना भी सोद्देश्य है। नारद और ब्रह्मा के मुख से 'विपुल बार जेहि मोहि नचावा' की उक्ति द्वारा जहाँ भय की अभिव्यक्ति है वहाँ शिव के मुख से 'ताते उमा न मैं समुझावा' की उक्ति में असमर्थता है। इसके विपरीत काकभुशुण्डि को इसका श्रेय देना स्पष्टत भक्त एव भक्ति की पराकाष्ठा दिखाना है। स्वय काक ने भी इसे स्वीकार किया है—

पठइ मोह मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही॥

यही नहीं यहाँ भगवान की उस उक्ति को भी व्यावहारिक रूप प्राप्त हो जाता है जिसमें वे कहते हैं—

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहिं सेवक सम प्रिय कोउनाहीं॥
भगति हीन सिव बिरंचि किन होई। सब जीवहु समप्रिय मोहिं सोई॥
भातिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

(उत्तर० ८५-४४)

राम के मुख-विवर में प्रवेश करके वहाँ कोटि-कोटि ब्रह्माड आदि का दृश्य देखना, कौशल्या के 'इहा उहाँ दुइ बालक' के समय के दृश्य से पूर्णतः साम्य रखता है। अतः इन पद्धतियों के माध्यम से भगवान राम के पूर्व वर्णित चरित्र की पुष्टि होती है, उसकी सगति बैठती है, तथा साथ ही उनके स्वरूप का ज्ञान भी हो जाता है।

मानस के उपसंहार की सर्वाधिक उपयोगिता भक्ति-मत-प्रतिपादन की दृष्टि से है। यहाँ भक्त कवि के धार्मिक दृष्टिकोण की सक्षिप्त विवृत्ति के साथ-साथ—जैसा कि डा० मैक्फी ने सकेत किया है—माया और भक्ति का पूर्व की अपेक्षा अधिक सबल मंडन भी है।[1] भक्ति-महात्म्य दिखाकर और काकभुशुण्डि के जीवन चरित के रूप में इसका प्रमाण प्रस्तुत करके ग्रन्थकार ने भक्तिवाद का स्पष्ट विजयघोष किया है। गरुड़ के ज्ञान और भक्ति का अन्तर पूछने पर काक

1—The Ramayan of Tulsidas, J. H. Macafie,
or
The Bible of Northern India. P 161.

द्वारा दोनों को ही क्लेशहारी बताते हुए भी जिस प्रकार से, एक ओर ज्ञान-दीप को जलाने की और उसके प्रकाश में माया-ग्रन्थि को छोड़ने की प्रक्रिया का वर्णन हुआ है, और उसके अनुपात में दूसरी ओर भक्ति-चिन्तामणि की प्राप्ति को जिस प्रकार अत्यन्त सरल और उसका फल अत्यन्त महान घोषित किया गया है, वह उद्देश्य-सिद्धि में अप्रतिम है। ज्ञान से भक्ति को उपर सिद्ध करने का दूसरा तर्क माया और भक्ति दोनों को ही नारि वर्ग का मानकर 'मोह न नारि नारि के रूपा' का है। तीसरा तर्क प्रत्येक युग की पृथक-पृथक साधना पद्धतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है जिसमें कलियुग में भक्ति को ही सर्व श्रेष्ठ बताया गया है। सक्षेप में, भक्ति-मार्ग के महत्त्व-प्रदर्शन के लिए दो पद्धतियाँ प्रयुक्त हैं—(१) स्वयं भगवान राम भक्ति को श्रेष्ठ ठहराते हैं और (२) स्वय काक का चरित ही प्रामाण्य बनता है।

इस उपसंहार भाग में गरुड़ को काकभुशुण्डि द्वारा सुनाई गई राम-कथा द्वारा सम्पूर्ण मानस-कथा की सक्षिप्त विवृत्ति भी हो जाती है। इसीलिए इसे मानस कथा की सूची भी कहते हैं। वक्ताओं-श्रोताओं के संवादों का भी समुचित रूप पर अन्त हो जाता है। इस प्रकार मानस का उपसंहार-भाग अपने में अत्यन्त पूर्ण और प्रभावकारी है।

———

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

यह भक्तवत्सल भी ऐसे हैं कि भक्त के कर्तव्याकर्तव्य पर ध्यान ही नहीं देते। यह तो मात्र भक्त का प्रेम चाहते हैं, और चाहते हैं उसकी भावतन्मयता। 'रीझत राम सनेह निसोतें', ही इनकी बान है। निषाद जाति में उत्पन्न निषादराज और भील-कुल-जन्मा शबरी के भाव-वृन्त पर अपने को उत्सर्ग कर देने वाले और बन्दर (सुग्रीव) तथा राक्षस (विभीषण) को परमसखा और मंत्री बनाने वाले भगवान की सहज रीझ देखी जा सकती है। राम की स्पष्ट घोषणा भी है कि—

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। सेवक सम कोउ मम प्रिय नाहीं॥

राम कभी भी अपने भक्तों की चूक पर ध्यान नहीं देते, तभी तो—'रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की।' राम की यह रीझ इतनी प्रबल हो जाती है कि उन पर—यदि कोई चाहे, तो भक्तों के साथ पक्षपात करने का आरोप भी लगा सकता है। वे उसी अपराध के लिए वालि का बध भी कर सकते हैं और सुग्रीव को क्षमा भी कर सकते हैं। माता-पिता की भाँति वे अपने भक्तों की सदैव देख-रेख भी करते रहते हैं। यह है आलम्बनत्व!

भक्तवत्सल ही नहीं, राम, शरणागतवत्सल भी कम नहीं हैं। शरणागत विभीषण को आश्रय न देने के लिए सुग्रीव की उक्ति सुनकर वह कहते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएं सरन तजउँ नहि ताहू॥

विभीषण ने भी प्रथमतः रावण को ऐसा ही समझाया था—

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥

राम की तीसरी सबसे बड़ी विशेषता है, लोक-धर्म के पालन एवं रक्षण की। इनका अवतार भी इसीलिए होता है। शिव जी कहते हैं—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।

मानस में मर्यादावाद की जैसी दिव्य झलक मिलती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। राम जगतपिता, जगद्गुरु आदि सब कुछ हैं, पर माता, पिता, गुरु, बंधु-

बांधव के साथ उनका संबंध लोक-रीति के अनुसार ही होता है। यहाँ आदर्श समाज और आदर्श व्यक्ति के लिए राम एवं मानस के कतिपय अन्य पात्रों का चरित्र अनुकरणीय है।

इतना ही नहीं, बल्कि राम करुणापुञ्ज, कारण रहित दयालु आदि भी हैं। जटायु को परमपद प्रदान करने में जहाँ इनकी करुणा बहती है वहाँ अहल्या के उद्धार में कारण रहित दयालुता भी टपकती है।

मानस के राम में जिस कोटि का भाव-सौंदर्य है, उसी कोटि का रूप-सौंदर्य भी है। इनके 'कोटि मनोज लजावन हारे' रूप से अभिभूत हुए बिना मानस का कोई भी पात्र नहीं बचा है।

सौंदर्य की ही कोटि का इनमें शक्ति-शील भी है। वस्तुतः यहाँ यह भागवत के कृष्ण से पीछे नहीं हैं।[1] किन्तु राम की यह शक्ति शील और सौन्दर्य—जैसा कि शुक्ल जी ने निर्देशित किया है[2]—मानवीय न होकर अति-मानवीय ही है, यही ग्रन्थकार का उद्देश्य भी था। इस प्रकार उपरोक्त गुणों से समन्वित राम का जो स्वरूप निर्मित होता है, वह स्वतः इतना पूर्ण और आकर्षक है कि बिना उससे प्रभावित हुए कोई हाड़-माँस का व्यक्ति रह ही नहीं सकता। यही कारण है कि मानस में भक्तों का इतना विशाल जमघट आयोजित हो सका और भक्ति रस की अविरल धारा प्रवाहित हो सकी।

वस्तुतः तुलसी के राम में भक्ति के लिए पूर्ण आलम्बन बनने की वे समस्त विशेषताएँ सन्निविष्ट हैं जिनका भावन करके कोई भी भक्ति-वेदिका पर अपने हृदय-निर्माल्य को चढ़ा सकता है। तभी शिव जी ने उमा से कहा है कि—

अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमन्द ते परम अभागी॥

भक्ति के लिए इस प्रकार के आलम्बन को देकर तुलसी ने भी अनन्य विश्वास के साथ अपील की है—

जनकसुता समेत रघुबीरहिं। कस न भजहु भंजन भव भीरहिं॥

यही है आलम्बनत्व और तुलसी के राम की पूर्णता।

में वाल्मीकि रामायण के भरत को रख दिया गया होता तो यह संगति ठीक वैसी ही बैठती जैसी रेशम की धोती में गाढे के पेवन्द की।

लक्ष्मण

मानस के लक्ष्मण में आज्ञाकारिता स्वय सजीव हो उठी है। जहाँ एक ओर स्वामी के हितों पर आघात होते देखकर इस पात्र में प्रिय से भी प्रिय व्यक्ति के विरुद्ध फड़क उठने की शक्ति है, वहाँ दूसरी ओर व्यक्तित्व शून्य होकर स्वामी की चरण-सेवा में सलग्न रहने की साधना भी है। वाल्मीकि के लक्ष्मण की आलोचना करते हुए श्री श्री निवास शास्त्री ने लक्ष्मण में 'आज्ञाकारी कुत्ते और दास के गुणों को सन्निविष्ट बताया है'[1] —किन्तु यदि मर्यादा का उल्लंघन न हो तो इन गुणों का सन्निवेश असंदिग्ध रूप से मानस के लक्ष्मण में ही देखा जा सकता है न कि वाल्मीकि के लक्ष्मण में। वाल्मीकि के लक्ष्मण तो आमरण अनशन की धमकी भी देते हैं, पर मानस के इस सेवक से यह कहाँ संभव। वास्तव में लक्ष्मण मानस का सबसे अधिक सजीव और ठीक उसी अनुपात में सबसे अधिक निर्जीव पात्र है। यह भी भरत की भाँति भाई नहीं सेवक ही है।

सीता

ब्रह्म और माया के बीच स्थापित संबंधों की जैसी कल्पना भक्तों ने की है उसकी स्पष्ट झाकी देखनी हो तो मानस के राम और सीता में देखी जाय। यह सीता सर्वभावेन राम की छाया है, चाहे इसे माया कहा जाय और चाहे पत्नी। माया के विषय में गोस्वामी जी का निम्नाकित सिद्धांत सीता पर पूर्णत. लागू होता है—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू विलास रघुराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

यही कारण है कि यह सीता न तो अग्नि में निवास करने की और न तो अग्नि में खड़ी होकर परीक्षा देने की आज्ञा का किसी प्रकार का प्रतिरोध

---

[1] डॉ० एम० श्रीनिवास शास्त्री : लेक्चर्स मानन्द रामायण, पृ० ३३।

करती है। वस्तुत. सीता के चित्रण में गोस्वामी जी का दार्शनिक सिद्धांत सदैव सम्मुख रहा है, तभी न तो वास्तविक सीता का अपहरण होता है और न निर्वासन ही, क्योंकि यहाँ तो 'कहियत भिन्न न भिन्न' का सिद्धात है। अतः मानस जैसे भक्ति ग्रन्थ में मानवी न होने पर भी सीता का चरित्र अत्यन्त पूर्ण है।

फिर भी, पूर्वराग के प्रसग से लेकर चित्रकूट-सभा के प्रसग तक सीता एक नहीं अनेक बार मानवीय हृदय के स्पन्दनों के साथ हमारे सामने आती है—इस पर पीछे विस्तृत विचार हो चुका है। सीता का चरित्र ब्रह्म की माया और पुरुष की पत्नी इन दोनों ही रूपों में आदर्श और अपरूप है।

दशरथ

यह वात्सल्य भाव से उपासना करने वाले भक्त हैं। कश्यप-अदिति के रूप में इन्हें जो वरदान प्राप्त हुआ उसका मानस में आद्यत निर्वाह हुआ है। वात्सल्य भक्ति के अनुसार मानस के दशरथ में मर्यादावाद भी है—इसीलिए वे कभी भी रामायण अथवा अध्यात्म रामायण के दशरथ की भांति अमर्यादित बात नहीं कहते हैं।

माताएँ

माताएँ भी प्राकारान्तर से भक्त हैं। सुमित्रा की तो स्पष्ट धारणा है कि:—

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित हानि॥

पूर्व जन्म के वरदान के कारण कौशल्या में भक्तिरस तो कम है पर उसकी [illegible]ति वात्सल्य रस से हो गई हैं। कैकेयी को भी राम प्राण से अधिक प्यारे हैं। [illegible]म के बन-गमन का वरदान तो देवताओं के षड्यन्त्र का परिणाम है। सब [illegible]मनाकर इन माताओं में स्नेह, मर्यादा और विवेक अधिक है।

हनुमान

शक्ति और सेवा के क्षेत्र में हनुमान विश्व-साहित्य में अप्रतिम हैं। नारद-भक्ति-सूत्र की भाषा में इनकी भावना को 'अनन्य भक्ति' के नाम से

सभी एक प्रकार के हैं, किन्तु यदि भरत इनमें महान है तो मात्र इसलिए उनकी भक्ति में अनन्यता अधिक है। राक्षसों में यह मात्रा कम है, इसी वे हेय है। राम की ही भाँति तुलसीदास ने भी सर्वत्र भक्तों का पक्षपात राक्षसों की भर्त्सना की है।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् अब यहाँ केवल दो बातें देखनी शेष प्रथम तो यह कि इन पात्रों द्वारा कथा सचालन किस प्रकार से हुआ है द्वितीय यह कि घटना-प्रवाह में पात्रों का चरित्र कहाँ तक स्वाभाविक बन सका है।

पात्रों द्वारा कथा-संचालन

मानस में जिस ढग के पात्रों का जमघट हुआ है और ग्रन्थ की प्रस्त में जिस प्रकार का कार्य-क्षेत्र प्रस्तुत किया गया है उससे कोई सहज ही अन लगा सकता है कि कथा का विकास किन-किन सूत्रों से हुआ होगा। भक्तव भगवान ने भक्त-मनरजन के लिए अवतार लिया है तो उन्हें कर्मक्षे प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। एतदर्थ विश्वामित्र द्वारा मार्ग भी निर्धारित दिया जाता है। ताड़का सुबाहु का वध और अहल्या का उद्धार होता फिर विवाह होता है पर अभी तो शताश कार्य भी पूरा न हो पाया था। भगवान को पुन॰ वन जाना पड़ता है। राम के वन जाने पर भक्तों में प्रकार के भाव का उदय हो सकता है, यही तो अयोध्याकाड की कथा है। में पहुँचने पर भगवान के सहज स्वभाव के अनुसार उद्धार-कार्य आरम्भ जाता है। रावण का भी उद्धार करना आवश्यक है, अतः शूर्पणखा विरूपीकरण और सीता का हरण] होता है। नारद शाप की पूर्ति के सब कुछ हो रहा है, तब फिर वानरों की सहायता से ही क्यों वचित जाय? सहायता भी प्राप्त होती है, वालि का वध भी होता और हनुमान सेवक द्वारा सीता की खोज भी हो जाती है। बीच में वही सब कुछ हुआ। राम और रामदूत के साथ होना चाहिए। रावण-वध होता है और तत्पश नाना प्रकार से भक्तों का मनरजन होता है। काकभुशुण्डि के मुख इस कथा का उपसंहार भी हो जाता है।

राम की छत्र-छाया में अन्य पात्रों द्वारा भी कथा का संचालन और संगठन होता है। यहाँ पहले उन तीन व्यक्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना है जिन्होंने मानस की समूची मूल कथा को रोककर एक निश्चित दिशा में प्रत्यावर्तित कर दिया है। ये व्यक्ति हैं (१) विश्वामित्र (२) अगस्त्य और (३) विभीषण।

ताड़कावध से लेकर चित्रकूट तक की कथा विश्वामित्र के साथ सम्बद्ध है। यदि विश्वामित्र न होते तो बहुत कुछ संभव है कि कथानक का रूप-रंग दूसरा ही होता। राम लक्ष्मण को साथ ले जाकर मुनि ने उनके कार्य की रूपरेखा स्पष्ट कर दी है और साथ ही भगवान के अवतार की निश्चयात्मक प्रतीति भी उत्पन्न कर दी है जिसका प्रकाशन ताड़का और सुबाहु के वध, मारीच के प्रक्षेपण, अहल्या के उद्धार, शिव के धनुभंग और परशुराम के मानभंग में हो जाता है। राम का विवाह होता है, अत वृद्ध दशरथ के लिए आवश्यक हो जाता है कि राम का राज्याभिषेक आयोजित करें। राज्याभिषेक कारण बनता है राम के वनगमन का, राम का वन-गमन कारण बनता है दशरथ के मरण का और दशरथ का मरण कारण बनता है भरत के आगमन और चित्रकूट-गमन का। यहाँ पर कथा का सूत्र अगस्त्य के हाथ में आ जाता है। चित्रकूट को छोड़कर राम वन में घूमते हैं, अगस्त्य मुनि से निवास-स्थान पूछते हैं और इसके लिए मुनि पंचवटी को उपयुक्त स्थान बताते हैं। राम का पंचवटी में आना कारण है राक्षसों के सम्पर्क में आने का और शूर्पणखा के विरूपीकरण का, विरूपीकरण कारण है खर-दूषण के वध का और खरदूषण-वध कारण है रावण की चिन्ता, मारीच के छल, माया-सीता के निर्माण और सीताहरण का। फिर सीताहरण हेतु बनता है सुग्रीव-मैत्री, सीता की खोज और विभीषण की शरण-याचना का। यहां से कथा-सूत्र विभीषण के हाथ में चला जाता है और प्रत्येक योजना में उसका हाथ रहता है। उसी के कारण रावण-वध सम्भव होता है और राम सकुशल अयोध्या लौट आते हैं।

ठीक इसी प्रकार कथा केन्द्रित हो रही है तीन नारियों पर—(१) ताड़का, (२) मन्थरा और (३) शूर्पणखा। 'गाधि तनय मन चिन्ता' से लेकर राम-सीता विवाह तक की कथा के मूल में ताड़का का हाथ है। 'नाथ राम करिअहिं जुबराजू' से लेकर अरण्यकाण्ड के पूर्वार्द्ध की कथा मंथरा द्वारा संचालित होती है

और विवाह-प्रस्ताव से लेकर रावण-वध तथा रामराज्याभिषेक तक की कथा शूर्पणखा द्वारा गतिशील बनाई जाती है।

इस समूची कथा में स्थूलरूप से तीन मुख्य घटनाएँ हैं–(१) सीता-विवाह (२) वनगमन और (३) सीताहरण। इन तीनों घटनाओं की पूर्णता का उत्तरदायित्व उपरोक्त तीनों नारियों को ही है। इन तीनों नारियों के माध्यम से कथा का एक आध्यात्मिक अर्थ भी लगाया जा सकता है ताड़का प्रतीक है क्रोध की, मथरा लोभ की और शूर्पणखा काम की। क्रोध, लोभ और काम की इस अन्विति से जिस प्रकार की अशान्ति उत्पन्न हो सकती है, वह मानस में द्रष्टव्य है। इन तीनों का लय होता है रावणरूपी मोह में और रावण के नाश के साथ पुन शाति और भक्ति का साम्राज्य विस्तृत हो जाता है।

इसी प्रकार कथा में गति उत्पन्न करनेवाले अन्य पात्रों को भी देखा जा सकता है। मानस में एक भी पात्र ऐसा नहीं है जो भरती का हो। कुछ ऐसे पात्र अवश्य हैं जिनका कथा-विकास में कोई योग तो नहीं है फिर भी वे अपनी भक्ति-भावना के कारण राम से सम्बद्ध हैं और राम के चरित्र की कोई न कोई रेखा पुष्ट करते रहते हैं। इन पात्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान है, कारण, "मानस घटना प्रधान नहीं चरित्र-प्रधान ग्रन्थ है और इसमें पात्र-चित्रण सबसे प्रधान है[1]।" मानस का मूल उद्देश्य रावण वध और तदनुकूल नियोजित घटनावली नहीं अपितु भक्तों का अनुरंजन और भक्ति-पथ-मडन है। इसीलिए कहीं भी घटना की ओर प्रणेता का अधिक झुकाव नहीं है। अरण्यकाड से लेकर लका काड तक रावण के रगमच पर आने पर भी कथा भक्तों के पास से ही गुजरती है और जहाँ भी भक्त और भक्ति का प्रसग आ जाता है, वहीं कथा स्वत. रुक जाती है। यदि रामदास गौड़ द्वारा प्रकाशित श्री रामचरित पुष्पाजलि की तिथि तालिका सत्य है तो असन्दिग्ध रूप से कहना पड़ेगा कि मानस के राम का सर्वाधिक समय ऋषियों-मुनियों तथा अन्य भक्तों को दर्शन देने में ही व्यतीत हुआ है[2]। अत ग्रन्थ की मूल आत्मा के अनुसार जिन पात्रों का राम से

१—डा० रामकमार वर्मा : हि० सा० आ० इतिहास, पृ० ४२८।

२—बाबू रामदास गौड़ की 'श्रीरामचरित पुष्पांजली' से भगवान राम का पंचवटी में १२ वर्ष रहना सिद्ध होता है।

सम्बन्ध रहा है—चाहे घटना में उनका कोई योगदान हो अथवा नहीं—वे पात्र स्वत: महत्त्वपूर्ण और कथानक के लिए आवश्यक हैं। यही 'रामायण' और 'मानस' के कथानक का अन्तर है।

यदि प्रधान नायक राम और मानस के कथानक के साथ पात्रों के संबंध पर विचार किया जाय तो तीन प्रकार के पात्र दिखाई पड़ेंगे—(१) वे पात्र जो मात्र भक्त हैं और जिनका कथानक विकास में कोई भी योगदान नहीं है। इनसे आराध्य देव राम के गुणों पर प्रकाश पड़ता है; यथा, अयोध्यावासी, जनकपुर वासी, तटवासी, निषाद, तापस, भरद्वाज, अत्रि-अनुसूया, शरभंग, सुतीक्ष्ण, विराध, कबन्ध आदि। इनमें से विराध, कबन्ध आदि प्रच्छन्न भक्त हैं। (२) दूसरे प्रकार के वे पात्र हैं जो मात्र कथानक को प्रभावित करते हैं। इनमें तीनों ही नारीपात्र हैं यथा ताड़का, मंथरा और शूर्पणखा। (३) तीसरे प्रकार के वे पात्र हैं जो प्रच्छन्न अथवा अप्रच्छन्न रूप से भक्त भी हैं और कथानक को गति भी देते हैं। उपरोक्त उभय प्रकार के पात्रों के अतिरिक्त शेष सभी पात्र इसी वर्ग के अन्तर्गत हैं। कुछ चरित्र पूर्णत निरपेक्ष हैं—यथा सुनैना—किन्तु ऐसे चरित्रों का मानस में विशेष विवरण नहीं मिलता है।

कथा में चरित्र की स्वाभाविकता

अब यहाँ दूसरे प्रश्न पर विचार करके यह देखना है कि कथा-प्रवाह में चरित्र कहाँ तक स्वाभाविक रह सके हैं। मानस के मुख्य-मुख्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन पहले किया जा चुका है। उसी के आधार पर उनके व्यक्तित्व का आद्यन्त निर्वाह देखा जा सकता है। यहाँ चरित्रगत कतिपय उन अस्वाभाविकताओं पर ही ध्यान दिया जायगा। जिनके कारण कथा-प्रवाह के बीच पात्रों का पूर्वापर संबंध पूर्णत नहीं निभ पाया है।

मानस के वे पात्र जो अपने व्यक्तित्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं अथवा नकल देते हैं, मुख्य रूप से ६ हैं—(१) दशरथ (२) राम (३) लक्ष्मण (४) शूर्पणखा (५) अंगद और (६) रावण। एक-एक करके इन्हें ही देखना है।

मानस के दशरथ ने अपने वृद्धावस्था सूचक श्वेत बालों को देखकर राम